सुत्तनिपात

[बुद्धवचनामृत]

मूलपालि तथा हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

भिक्षु धर्मरत्न एम० ए०

तपोमूर्ति पूज्यपाद गुरुवर

श्री देवानन्द महास्थविर

के करकमलों

में सादर

भेंट

संक्षेप और संकेत

अ० नि०	=	अङ्गुत्तर-निकाय
क० ओ० सी०	=	कलकटा ओरियेण्टल सीरीस्
ज० पा० टे० सो०	=	जर्नल आफ पालिटेक्सट् सोसाइटी
पा० टे० सो०	=	पालिटेक्सट् सोसाइटी
बो० ओ० सी०	=	बाम्बे ओरियेण्टल सीरीस्
स० हे० बि०	=	सइमन् हेवावितारण बिक्वेसट् सीरीस्

भूमिका

सुत्तनिपात खुद्दक निकाय के पन्द्रह ग्रन्थों में से एक है। यह संख्याक्रम से ग्यारहवाँ है। यह पाँच वर्गों और बहत्तर सूत्रों में विभक्त है।

सुत्तनिपात की प्राचीनता

सुत्तनिपात त्रिपिटक के अन्तर्गत प्राचीन ग्रन्थों में से एक है। भाषा, भाव, शैली इत्यादि बातों के आधार पर विद्वानों द्वारा इसकी प्राचीनता सिद्ध की गई है। डा० बापट के मतानुसार यह पालि त्रिपिटक का प्रथम गाथा-संग्रह है। धम्मपद, खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, थेरगाथा, थेरीगाथा, बुद्धवंश, चरियापिटक तथा अपदान जैसे ग्रन्थ बाद के हैं[1]।

प्रो० रिस्डेविड्स के शब्दों में सुत्तनिपात किसी एक समय किसी एक व्यक्ति द्वारा किया गया संग्रह नहीं है, अपितु समय-समय पर संघ द्वारा किये गये सामूहिक प्रयत्न का फल है[2]। इस बात को ध्यान में रखते हुए डा० विक्रमसिंह ने सुत्तनिपात के वर्गों और चुने हुए कुछ सूत्रों की आपेक्षिक प्राचीनता को निश्चित करने का प्रयत्न किया है[3]।

अनेक सूत्रों से इस बात के प्रमाण मिल जाते हैं कि प्रारम्भ में अट्ठक तथा पारायण वर्गों का स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है। शेष तीन वर्गों के स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रमाण कहीं नहीं मिलता। लेकिन उनमें संग्रहीत बहुत से सूत्रों के पृथक् अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इसलिए जहाँ तक वर्गों का सम्बन्ध है, हम कह सकते हैं कि अन्तिम दो वर्ग—अट्ठक तथा पारायण—सबसे प्राचीन हैं और शेष वर्ग बाद के हैं।

विषयवस्तु को ध्यान में रखते हुए सूत्रों की आपेक्षिक प्राचीनता के विषय में कुछ कह सकते हैं। अन्तिम दो वर्गों की प्राचीनता तो सिद्ध ही है। उनके अतिरिक्त शेष तीन वर्गों में जो सूत्र मुनिजीवन के आदर्श के विषय में हैं, वे सबसे प्राचीन मालूम होते हैं। आचार सम्बन्धी सूत्र उनसे कम प्राचीन नहीं हैं। संवादात्मक सूत्र और महावग्ग के अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के जीवन सम्बन्धी सूत्र

---

१ सुत्तनिपात की भूमिका, पृ० ७।

२ प्राचीन बौद्धधर्म का इतिहास तथा साहित्य, पृ० ५३।

३ युनिवर्सिटि आफ सिलोन् रिवीव्, १९४८, पृ० २२९-२५७।

भी उसी समय के जान पड़ते हैं। पुनर्, लोकप्रिय जैसे सूत्रों का रचनाकाल कुछ बाद का मान सकते हैं। रतन विषय तथा इतिवृत्तपरम्परा सूत्र सम्भवतः उसके बाद के हैं। कतिपय सूत्रों की वस्तु-गाथायें सुत्तनिपात के संग्राहकों की अपनी देन है। यह बात अट्ठकथाओं[1] से भी सिद्ध है। सुत्तनिपात का उल्लेख पहले-पहल मिलिन्दप्रश्न[2] में मिलता है। इसलिए हम इतना तो निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इसका अस्तित्व प्रथम शताब्दी से पहले रहा है।

सुत्तनिपात का उल्लेख मिलिन्दप्रश्न से पहले और कहीं न मिलने से कुछ विद्वान् इससे पहले उसके अस्तित्वको माननेको तैयार नहीं हैं। हम उनसे सहमत नहीं हो सकते। किसी ग्रन्थका नाम न देकर उसमें संग्रहीत किसी सूत्र या गाथाका उल्लेख करनेकी परिपाटी बहुत पुरानी है। लोकप्रिय विषयों के सम्बन्ध में यह बात और भी सत्य है। आज भी मेत्त, मङ्गल रतन इत्यादि लोकप्रिय सूत्रों को साधारण जनता उनके नामों से जानती हैं न कि उन ग्रन्थों के नामों से जिनमें कि वे संग्रहीत हैं। किसी विषय के विद्वान् और विद्यार्थी ही ग्रन्थों के नामों से परिचय रखते हैं। उदाहरणार्थ हम अशोक शिला-लेखों को ले सकते हैं। भाब्रू शिला-लेख में जिन कतिपय सूत्रों का उल्लेख आया है, उनमें से अधिकांश अट्ठकवग्ग तथा पारायणवग्ग के हैं। इन दोनों वर्गों की प्राचीनता सभी सूत्रोंसे सिद्ध है। लेकिन अशोक के शिला-लेख में केवल सूत्रों के नाम हैं न कि वर्गों के। इसका कारण यह है कि साधारण जनताको उन्हें जानने की आवश्यकता नहीं थी। इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि अशोक के पहले इन दोनों वर्गों का अलग अस्तित्व ही नहीं था। इसलिए कुछ विद्वानों का उपरोक्त मत युक्तिसंगत नहीं है।

सुत्तनिपात तथा अन्य ग्रन्थों की समानतायें

सुत्तनिपात में संग्रहीत अनेक सूत्र गाथायें तथा पाठ त्रिपिटक तथा अनुपिटक के ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। रतन मङ्गल और मेत्त खुद्दकपाठ में—सभियविमान अपदान में—सेल और वासेट्ठ मज्झिमनिकाय में—सुन्दरिकभारद्वाज आळवक, कसिभारद्वाज और सुभासित सुत्त संयुत्तनिकाय में आये हैं। सुत्तनिपात के अन्तर्गत कितनी ही गाथायें थेरगाथा थेरीगाथा उदान और इतिवुत्तक में भी मिलती हैं। ये समानतायें केवल पालिग्रन्थों में ही नहीं अपितु महावस्तु, ललितविस्तर, दिव्यावदान जैसे बौद्ध संस्कृत-ग्रन्थों में भी पायी जाती

---

१. परमत्थजोतिका सं० है़ लि पृ ४६४। २. मिलिन्दपञ्हो, पा है ती पृ ४११, ४२१।

हैं। खग्गविसाण, पब्बज्जा, पधान, नालक और सभिय सुत्त, कहीं-कहीं उसी रूप में महावस्तु तथा ललितविस्तर में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त बौद्ध चीनी-ग्रन्थों में भी अनेक सूत्र और गाथाएँ मिलती हैं। माघ और कोकालिय सुत्त चीनी संयुत्तनिकाय में आये हैं। अट्ठकवग्ग तथा पारायणवग्ग का अलग-अलग अनुवाद चीनी में मिलता है। इनसे लिये गये अनेक उद्धरण संयुत्तनिकाय, *योगाचारभूमि, अभिधर्मकोश, महाविभाषा, प्रज्ञापारमिता* इत्यादि ग्रन्थों में मिलते हैं। सुत्तनिपात के अन्तर्गत कतिपय सूत्रों का उल्लेख अशोक के भाब्रू शिला-लेख में भी आया है। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि उधृत वर्गों और सूत्रों का अस्तित्व उक्त ग्रन्थों और शिला-लेख से पहले रहा है।

सुत्तनिपात का नामकरण

यहाँ पर सुत्तनिपात के नाम पर विचार करना उपयुक्त है। यह सामासिक पद सुत्त और निपात—इन दो शब्दों से बना है। निपात का प्रयोग किसी ग्रन्थ के सबसे बड़े विभाजन के लिए हुआ है, जिसे हम परिच्छेद कह सकते हैं। कई सूत्रों का एक वर्ग होता है और कई वर्गों का एक निपात। अङ्गुत्तरनिकाय, जातक, थेरगाथा, थेरीगाथा इत्यादि ग्रन्थों में यह प्रयोग मिलता है।

निपात शब्द का प्रयोग इस अर्थ में मूल-पालि में कहीं नहीं आया है। ऐसा मालूम होता है कि त्रिपिटक के विभाजन के बाद ही इस शब्द को प्रयोग में लाया गया है। त्रिपिटक में सन्निपात शब्द आया है, जिसका अर्थ है एकत्रित होना। सन्निपात और निपात एक ही धातु से बने हैं। अन्तर है केवल उपसर्ग का। यह ठीक है कि कहीं-कहीं उपसर्ग से धातु का अर्थ बदल जाता है। लेकिन यह भी देखा जाता है कि उपसर्ग के होते हुए भी धातु का अर्थ ज्यों का त्यों रह जाता है। उदाहरणार्थ संयोग और योग को ले सकते हैं। इन दोनों का प्रयोग बन्धन के अर्थ में हुआ है। इसी प्रकार हम निपात को सन्निपात के अर्थ में ले सकते हैं। डा० विक्रमसिंह ने इस अर्थ पर आपत्ति की है। उनका मत है कि जब निपात शब्द का प्रयोग इस अर्थ में त्रिपिटक में कहीं नहीं हुआ है तो उसे हम इस अर्थ में नहीं ले सकते। पूर्व-प्रयोग के अनुसार ही किसी शब्द को समझना आवश्यक नहीं है। जब शाब्दिक के सामने समान उदाहरण विद्यमान हैं तो वह उनके अनुसार और शब्दों को प्रयोग में ला सकता है। जैसे कि ऊपर देखा जा चुका है संयोग तथा योग की तरह सन्निपात तथा निपात को भी समान अर्थ में लेना असंगत नहीं है।

निपात शब्द का प्रयोग, जैसे कि ऊपर दिखाया गया है, एक परिच्छेद के

लिए हुआ है। लेकिन इसके विपरीत यहाँ निपात का प्रयोग एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के लिए हुआ है। हो सकता है कि किसी समय यह खुद्दकनिकाय का एक निपात मात्र माना गया हो और बाद में स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप दिया गया हो।

अब हम सुत्त शब्द पर विचार करें। बुद्ध-वचन का सर्व प्रथम वर्गीकरण नौ अङ्गों का मालूम होता है। इस वर्गीकरण में सुत्त का प्रयोग एक विशेष अर्थ में गद्य में दिये गये भगवान् के उपदेशों के लिए हुआ है। विनय पिटक तथा सुत्त-पिटक में समहीत भगवान् के अनेक उपदेश इस अङ्ग के अन्तर्गत हैं। सुत्तनिपात, कुछ निदानों को छोड़, गाथाओं का ही संग्रह है। इसलिए यह विचारणीय है कि सुत्त की परिभाषा इसके लिए कहाँ तक उपयुक्त हो सकती है। अट्ठकथा[१] के अनुसार सुत्तनिपात में नवाङ्गों में से सुत्त, गेय्य तथा गाथा—इन तीनों का समावेश है। इस व्याख्या के अनुसार पारिभाषिक अर्थ में सुत्त का प्रयोग सुत्तनिपात के लिए कुछ हद तक उपयुक्त है। लेकिन पूरे ग्रन्थ के लिए इस शब्द के प्रयोग की उपयुक्तता को दूसरे अर्थ में समझना चाहिए। विस्तृत अर्थ में सुत्त शब्द का प्रयोग त्रिपिटक के अन्तर्गत सभी उपदेशों के लिए हुआ है। उदाहरणार्थ हम सुत्तपिटक को ही ले सकते हैं। इसमें नवों अङ्ग पाये जाते हैं, और वे सब विस्तृत अर्थ में सुत्त कहलाते हैं। इसी तरह यद्यपि सुत्तनिपात में तीन ही अङ्गों का समावेश है, जिनमे सुत्त एक अङ्ग मात्र है, तथापि विस्तृत अर्थ में वे सभी सुत्त हैं। अतः सुत्तनिपात का अर्थ सुत्तों का संग्रह है। इस तरह हम इस नामकरण को समझ सकते हैं।

वर्गों का नामकरण

सुत्तनिपातमें पाँच वर्ग हैं—उरग, चूळ, महा अट्ठक तथा पारायण। पहले वर्गका नामकरण वर्ग के पहले सुत्त के अनुसार किया गया है। दूसरे वर्ग में अधिकांश छोटे-छोटे सुत्त समहीत हैं और परिमाणमें भी यह वर्ग सबसे छोटा है। इसलिए इसका नाम चूळवर्ग रखा गया है। इसके विपरीत तीसरे वर्गमें अधिकांश बड़े बड़े सुत्त समहीत हैं और परिमाणमें भी यह सबसे बड़ा है। इसलिए इसका नाम महावर्ग पड़ा है। चौथे वर्गमें कई एक अट्ठक समहीत हैं। इसलिए इस वर्ग का नाम उनके अनुसार ही रखा गया है। पाँचवें वर्गका नामकरण निदान ही से साफ है।

सुत्तों का नामकरण

सुत्तों के नाम कई एक दृष्टियों से रखे गये हैं। पब्बज्जा, पधान, कसिभ,

---

१ अट्ठकथा पी० टी० एस० पृ १६, ११।

पराभव, विजय, मुनि तथा ब्राह्मणधम्मिक जैसे सूत्रों के नाम उनके विषयों के अनुसार रखे गये हैं। धनिय, सेल, नालक तथा सभिय जैसे सूत्रों के नाम उनसे सम्बन्धित मुख्य व्यक्तियों के नामों के अनुसार रखे गये है। इसी तरह उरग, खग्गविसाण, नावा तथा पसूर जैसे सूत्रों का नामकरण उनमें आगत किसी उपमा के अनुसार हुआ है। हिरि तथा किंसील जैसे सूत्रों के नाम उनके अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक शब्दों के अनुसार पड़े हैं। कुछ सूत्र ऐसे भी है जिनके दो-दो नाम हैं। विजय, नावा, सुन्दरिकभारद्वाज, धम्मचरिय तथा सम्मापरिब्बाजनिय सुत्त अट्ठकथामें क्रमश कामविच्छिन्दिक[1], धम्म[2], पूरलास[3], कपिल[4] तथा महा-समय[5] के नामों से भी विदित हैं।

सुत्तनिपात का विषय-वस्तु

सुत्तनिपात ७२ सुत्तों का सग्रह है, जिनके विषय अनेक हैं। सुत्तों का वर्गीकरण भी विषयों के अनुसार नहीं हुआ है। प्रत्येक वर्ग में अनेक विषय सम्बन्धी सुत्त हैं। लेकिन फिर भी हम अनेक सुत्तोंमें विषय की समानता पा सकते हैं।

अधिकाश सुत्त सत्य की गवेषणा में रत एकान्तवासी मुनि या भिक्षु की जीवन-चर्याके विषय में हैं। उरग, धनिय, खग्गविसाण, चुन्द, मुनि, धम्मचरिय, किंसील, राहुल, सम्मापरिब्बाजनिय, सारिपुत्त, जरा, तिस्समेत्तेय्य, तुवटक इत्यादि सुत्तों का मुख्य विषय यही है। जहाँ एक ओर इन सुत्तोंमें निर्वाणप्राप्ति मे तत्पर गृहत्यागी के लिए उपदेश हैं वहाँ दूसरी ओर पराभव, मङ्गल, हिरि, धम्मिक इत्यादि सूत्रोंमें सासारिक गृहस्थ के लिए सदुपदेश हैं। कसीभारद्वाज, हेमवत, आलवक इत्यादि सुत्त विशुद्ध आचरणके सम्बन्ध में हैं।

पब्बज्जा, पधान, नालक तथा अत्तदण्ड सुत्तों में भगवान् की जीवनी की कई एक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन मिलता है। अत्तदण्ड सुत्तसे यह प्रकट होता है कि लोगोंके बीच होनेवाले अनेक सघर्ष भी उनके वैराग्य का एक मुख्य कारण रहा है।

वसल तथा वासेट्ठ सुत्तों में जातिभेद सम्बन्धी और पुण्णकमाणवपुच्छा तथा सुन्दरिकभारद्वाज आदि सुत्तों में यागहोम सम्बन्धी भगवान् के विचार स्पष्ट हैं।

मेत्त, विजय, सल्ल तथा जरा सुत्त मैत्री, अशुभ, मरणानुस्मृति तथा अनित्यता सम्बन्धी भावनाओं के विषय में हैं। सुचिलोम, काम तथा गुहट्ठक सुत्त तृष्णाके दुष्परिणामों के विषय में हैं।

---

१. परमत्थजोतिका, म० हे० वि०, पृ० १७७। २. वही, पृ० २८७। ३. वही, पृ० ३३७। ४. वही, पृ० २७२। ५. वही, पृ० ३०६।

ब्राह्मणधम्मिकसुत्त में उस समय तथा उससे पहले के ब्राह्मणों के दो विभिन्न चित्र मिलते हैं। इसमें यह दिखाया गया है कि यज्ञ में पशुबलि का आरम्भ किस प्रकार हुआ था और पुरोहितों ने उसके समर्थन में किस प्रकार मन्त्र रच डाले थे। इसमें अत्यन्तोपयोगी गौ पर भगवान् के वचन महत्त्वपूर्ण हैं।

पारायणवग्ग में कोशल नरेश के पुरोहित बावरी द्वारा दक्षिणापथ में आकर गोदावरी नदी के तट पर आश्रम बनाकर रहने की बात आयी है। भगवान् के दर्शनार्थ उनके शिष्य किस मार्ग से राजगृह आये थे, उसका भी पूरा वर्णन मिलता है। उस समय का प्रसिद्ध व्यापार-मार्ग भी यही रहा है। इससे दक्षिणापथ के विषय में अच्छी जानकारी हो जाती है।

द्वयतानुपस्सना सुत्त में अनुलोम तथा प्रतिलोम विधि से प्रतीत्यसमुत्पाद दिया गया है। रतनसुत्त में त्रिरत्न का गुणानुवाद है। नावा सुत्त में अच्छे गुरु का परिचय है। उट्ठानसुत्त में अप्रमाद पर जोर दिया गया है। माघसुत्त दान तथा दक्षिणाओं के विषय में है। कोकालियसुत्त में नरकों का वर्णन है। सुभासितसुत्त सुभाषण के विषय में है। इसी तरह कई एक सुत्तों के विषय अलग-अलग हैं।

सुत्तों में बुद्ध, धर्म, संघ तथा दर्शन पर प्रचुर सामग्री मिलती है। दृष्टिवाद का जबर्दस्त खण्डन भगवान् बुद्ध ने क्यों किया था इसका उत्तर अट्ठकवग्ग तथा पारायणवग्ग के अधिकांश सुत्तों में मिलता है। आगे चलकर शून्यवादियों में और विशेष रूप से नागार्जुन ने दृष्टिवाद का जो खण्डन किया था उसके मूलबीज हमें यहीं मिलते हैं। उस समय कोरे मतवाद का बोलबाला था। पसूर सुत्त के शब्दों में राजभोजन से पुष्ट पहलवानों की तरह कुछ लोग दृष्टियों के खंडन और मंडन में व्यस्त रहते थे। इस प्रकार दृष्टिवाद के कोलाहल का जो रूप इन सुत्तों में अंकित है उससे हमें यूनान के सोफिस्ट्स अर्थात् वितण्डावादियों का स्मरण आता है। यही कारण है कि भगवान् बुद्ध ने मतवाद के भूलभुलैये में न पड़कर शील, समाधि तथा प्रज्ञा द्वारा परम शान्ति प्राप्त करने का मार्ग बताया है। आत्मबोध द्वारा प्राप्य निर्वाण की अनिर्वचनीयता उपसीवमाणवपुच्छा की इस गाथा से स्पष्ट है :—

> अत्थङ्गतस्स न पमाणमत्थि—येन नं वज्जु तं तस्स नत्थि।
> सब्बेसु धम्मेसु समूहतेसु—समूहता वादपथा पि सब्बे॥

अट्ठकवग्ग तथा पारायणवग्ग

ऊपर यह संकेत किया गया है कि अट्ठकवग्ग तथा पारायणवग्ग अतिप्राचीन हैं। सुत्तनिपात तथा उसके अन्तर्गत शेष तीन वर्गों के पहले इन दोनों वर्गों का

स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है। यह बात चूलनिद्देस तथा महानिद्देस की अट्ठकथाओं से भी सिद्ध हो जाती है। चूलनिद्देस अट्ठकवग्ग की अट्ठकथा है। महानिद्देस पारायणवग्ग तथा खग्गविसाण सुत्त की अट्ठकथा है। ये दोनों अट्ठकथाएँ खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत हैं। इनके विशेष महत्त्व तथा प्राचीनता के कारण ही ये त्रिपिटक के ग्रन्थ माने गये हैं। इससे यह बात भी प्रमाणित हो जाती है कि ये दोनों अट्ठकथाएँ भी सुत्तनिपात से पुरानी हैं। इनमें सुत्तनिपात का उल्लेख कहीं नहीं आया है, लेकिन उस में सग्रहीत सुत्तों का उल्लेख जहाँ-तहाँ आया है। इस महत्त्व को देखते हुए अट्ठकवग्ग तथा पारायणवग्ग पर अलग-अलग विचार करने की आवश्यकता है।

अट्ठकवग्ग

अट्ठकवग्ग का उल्लेख पहलेपहल विनय[1] उदान[2] तथा सयुत्तनिकाय[3] मे आया है। विनय में सोण कोटिकण्ण द्वारा उसके पारायण की बात इस प्रकार आयी है—आयस्मा सोणो 'सब्बानेव अट्ठकवग्गानि सरेन अभासि। उदान में उट्ठकवग्ग के सूत्रों की सख्या का भी उल्लेख आया है। धम्मपद की अट्ठकथा[4], उदान की अट्ठकथा[5], अङ्गुत्तरनिकाय की अट्ठकथा[6] तथा थेरगाथा की अट्ठकथा[7] में भी यह उल्लेख और कुछ विस्तार के साथ आया है।

पालिग्रन्थों के अतिरिक्त बौद्ध सस्कृत ग्रन्थों में भी अट्ठकवग्ग का उल्लेख आया है। कोटिकर्णावदान में अष्ठकवर्ग का यह उल्लेख मिलता है—अथायष्मा श्रोणो अर्थवर्गीयानि च सूत्राणि विस्तरेण स्वरेण स्वाध्यायं करोति[8]। यह पाठ मूलसर्वास्तिवादी विनय से लिया गया है।

पूर्णावदान[9] में यह बताया गया है कि जो व्यापारी विदेश यात्रा के लिए पूर्ण के साथ जहाज पर सवार थे, उन्होंने उदान, पारायण, सत्यदृष्ट, स्थविर-गाथा, शैलगाथा, मुनिगाथा और अर्थवर्गीय सूत्रों का पाठ किया था।

सर्वास्तिवादियों के विनय में, जिसका चीनी अनुवाद[10] उपलब्ध है, श्रोण द्वारा पारायण तथा सत्यदृष्ट के पाठ करने की और भगवान् बुद्ध द्वारा उसके अवन्ति-स्वर की प्रशसा करने की बात आयी है।

---

१ विनय, जिल्द—१, पा० टे० सो०, पृ० १९६। २ उदान, पा० टे० सो०, पृ० ५९। ३ जिल्द—३, पा० टे० सो०, पृ० १२। ४ जिल्द—५, पा० टे० सो०, पृ० १०२। ५ पा० टे० सो०, पृ० ३१२। ६ जिल्द—१, पा० टे० सो०, पृ० २४१। ७ जिल्द—१, पा० टे० सो०, पृ० ४५९। ८ दिव्यावदान, पृ० २०। ९ दिव्यावदान, पृ० ३४-३५। १० टोक० XVI ४५६ अ। चीनी अनुवाद के उल्लेख सिल्वन लेवी के निबन्ध से लिए गये हैं।

महीशासक विनय में आगत रूपान्तर, जिसका अनुवाद चीनी में उपलब्ध[1] है पालि रूपान्तर के समान है। भेद इतना ही है कि उदान की तरह इसमें भी सूत्रों की संख्या दी गयी है।

धर्मगुप्त विनय का रूपान्तर पालि तथा महीशासक विनयों के रूपान्तरों से *मिलता-जुलता है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ*[2] कोटिकर्ण द्वारा, *बिना कुछ* घटाये-बढ़ाये सोलह सूत्रों के पारायण का उल्लेख आया है।

महासांघिक विनय[3] के अनुसार श्रोण अट्ठकवर्ग का पाठ कर रहा है और भगवान् पदों तथा अर्थों के विषय में उससे प्रश्न करते हैं।

इतना ही नहीं, कई ग्रन्थों में कई स्थलों पर अट्ठकवग्ग के अंश उद्धृत किये गये हैं। वसुबन्धु अपने अभिधर्मकोश-भाष्य में अट्ठकवर्ग का उल्लेख करते हुए इस श्लोक को उद्धृत करते हैं: तथा ह्यर्थवर्गीयेषूक्तम्—

तस्य चेत्कामयानस्य छन्दजातस्य देहिनः।
ते कामा न समृध्यन्ति शल्यविद्ध इव रूप्यते॥

यह पालि अट्ठकवग्ग की दूसरी गाथा है। यशोमित्र अपनी अभिधर्मकोश व्याख्या में इस पर इस प्रकार टिप्पणी करते हैं—तथा ह्यर्थवर्गीयेषूक्तमिति अर्थवर्गीयाणि सूत्राणि यानि क्षुद्रके पठ्यन्ते[4]।

बोधिसत्त्वभूमि[5] में भी क्षान्ति शब्द की व्याख्या के सिलसिले में अट्ठकवग्ग का उल्लेख इस प्रकार आया है—उक्तं च भगवता अर्थवर्गीयेषु या काश्चन संवृतयो हि लोके—सर्वे हि ता मुनिर् नोपैति। अनुपगो ह्यसौ केन उपादवीत—दृष्टश्रुते क्षान्तिम् असम्प्रकुर्वन्॥

इनके अतिरिक्त अट्ठकवर्ग के कितने ही पाठ पालि के अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं। बौरा फाम्स[6] तथा हेयर[7] महोदयों ने विस्तार पूर्वक इनका विवेचन किया है।

अट्ठक-वग्ग का चीनी अनुवाद

चीनी भाषा में अट्ठकवग्ग का पूरा अनुवाद[8] उपलब्ध है जो कि अर्थपाद के नाम से ज्ञात है। विनयवस्तु के स्पष्टीकरण के लिए उसमें कई एक कथायें

१ तैश० XXII १ १ का० २. तैश० XI ५.५१ व अध्याय ११। ३ तैश० XX ५.४१ व अध्याय ११। ४ अभिधर्मकोशव्याख्या जिल्द—१ १ … ५ बोधिसत्त्वभूमि पृ ४८। ६. Die Suttanipata Gathas mit ihren Parallelen, Z D M G. 1902-1912. ७ Woven Cadences. ८ डा० बापट ने अर्थपद सूत्र के नाम से चीनी अनुवाद का अंग्रेजी में भाषान्तर किया है।

भी दी गयी है। प्रो० अनेसाकि ने अपने तत्सम्बन्धी अध्ययन[1] में यह दिखाया है कि चीनी त्रिपिटक में सुत्तनिपात का उल्लेख कहीं नहीं आया है। अट्ठकवग्ग का चीनी अनुवाद तीसरी शताब्दी का है और वह ताईशू त्रिपिटक स० १९८ के अन्तर्गत है।

यहाँ पर इस वर्ग का नामकरण भी विचारणीय है। सारे वर्ग में केवल चार अट्ठक हैं। शेष सूत्र भिन्न भिन्न छन्दों में हैं। इसलिए पूरे वर्ग का नाम अट्ठक क्यों रखा गया है ? हो सकता है कि औरों की अपेक्षा अट्ठकों की संख्या अधिक होने से यह नाम रखा गया हो। इस सिलसिले में यह उल्लेखनीय है कि चीनी अनुवादों में इस वर्ग का नाम अर्थवर्गीय आया है। एक महासांघिक विनय में अट्ठकवर्गीय मिलता है। लेकिन वहाँ भी भगवान् द्वारा श्रोण से पदों के अर्थ पूछने का उल्लेख आया है। इसलिए अट्ठकवर्गीय की अपेक्षा अर्थवर्गीय अधिक सार्थक मालूम होता है।

पारायणवग्ग

अट्ठकवग्ग की तरह पारायणवग्ग भी अति प्राचीन है। आरम्भ में वत्थु-गाथा नाम से इस वर्ग का निदान है। उसके बाद सोलह पुच्छाएँ हैं। अन्त में पारायण सुत्त में, जो कि इस वर्ग का पर्यवसान है, पारायण का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"पारङ्गमनीया इमे धम्मा ति तस्मा इमस्स धम्मपरियायस्स पारायण त्वेव अधिवचन" अर्थात् ये धर्म पार ले जानेवाले हैं। इसलिए इस प्रसङ्ग का नाम पारायण पड़ा है। छठी तथा सातवीं गाथाओं का आशय भी यही है।

पारायणवग्ग का उल्लेख संयुत्तनिकाय तथा अङ्गुत्तरनिकाय में कई बार आया है। उदयमाणवपुच्छा की पाँचवीं गाथा देवतासंयुत्त[3] में आयी है। दूसरे स्थल[4] पर भी यही गाथा आयी है। यहाँ गाथा के प्रथम पाद में नन्दी-संयोजनो लोको की जगह पर नन्दी सम्बन्धनो लोको का पाठ है। लेकिन यहाँ पर पारायण वर्ग का उल्लेख नहीं आया है। इसी निकाय में जहाँ[5] पर अजित-माणवपुच्छा की सातवीं गाथा आयी है वहाँ पुच्छा का उल्लेख भी हुआ है। फिर एक और स्थल पर यही गाथा एक लम्बे उपदेश का शीर्षक बन गयी है।

---

१ जर्नल आफ पालि टेक्स्ट सोसायटी, १९०६-१९०७। २ डा० विक्रम सिंह ने चीनी तथा पालि रूपान्तरों की समानताएँ दिखाई हैं। देखो—ए क्रिटिकल् अनलिसिस् आफ़ सुत्तनिपात।

३ संयुत्तनिकाय, जिल्द—१, पा० टे० सो०, पृ० ३९।

४ ,, ,, ,, ,, ,, ४०।

५ ,, ,, २ ,, ,, ,,

अङ्गुत्तरनिकाय में कम से-कम छ बार पारायण का उल्लेख आया है। तिक-निपात[1] में पुण्णकमाणवपुच्छा का उल्लेख आया है, और इसी पुच्छा की चौथी गाथा भी उद्धृत की गई है। एकक निपात[2] में यही गाथा इस टिप्पणी के साथ दी गई है—इमा खो भिक्खवे चतस्सो समाधिभावना, इदं पन एत सन्धाय भासितं पारायणे पुण्णकपञ्हे। तिक-निपात[3] में उदयमाणवपुच्छा का उल्लेख है और इस वर्ग की दूसरी तथा तीसरी गाथायें उद्धृत की गई हैं। चतुक्क-निपात[4] में तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा की तीसरी गाथा प्रथम पाद में कुछ परिवर्तन के साथ, दी गई है और पुच्छा का उल्लेख भी है। छक्क-निपात[5] में एक स्थल पर इस बात का उल्लेख आया है कि एक बार जब उपासिका नन्दमाता मधुर स्वर से पारायण का पाठ कर रही थी तो वैश्रवण उसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। धोतकमाणवपुच्छा की चौथी गाथा कथावत्थु[6] में आई है। मोघराजमाणवपुच्छा की दूसरी तीसरी तथा चौथी गाथायें अपदान[7] में आई हैं। इस पुच्छा की चौथी गाथा विसुद्धिमग्ग[8] तथा कथावत्थु[9] में भी आई है। इनके अतिरिक्त अट्ठकथाओं में भी पारायण से अनेक उद्धरण दिये गये हैं। नेत्तिप्पकरण[10] में पारायण की कई एक गाथाओं की व्याख्या की गई है।

बाद संस्कृत ग्रन्थों में पारायण का कम उल्लेख नहीं हुआ है। अट्ठकवग्ग के सिलसिले में जहाँ तहाँ इनका उल्लेख किया गया है। दिव्यावदान[11] में पारायण का नाम और कई एक सुत्तों के नामों के साथ दिया गया है जिनका पाठ श्रोण तथा व्यापारियों ने किया था। सुत्ता में भी श्रोण की कथा में इसका उल्लेख आया है। सर्वास्तिवादी विनय[12] में श्रोण द्वारा अन्य सुत्तों के साथ पो को येन (पारायण) के पाठ का उल्लेख आया है और १८ 'महान् सुत्तों' में इसकी भी गिनती की गई है। इन १८ सुत्तों में पारायण का १६ वाँ स्थान है और अट्ठक-वग्ग का १७ वाँ स्थान है। शेष सब सुत्त दीघनिकाय के अन्तर्गत हैं। महासांघिक विनय[13] के अनुसार भिक्खुओं तथा भिक्खुनियों द्वारा स्मरणीय कतिपय

---

१ अङ्गुत्तर निकाय जिल्द—१ पा टे० सो पृ १३३।
२ ,, ,, ,, ,, ४५ वाँ।
३ अङ्गुत्तरनिकाय जिल्द— पा टे सो पृ १३४। ४ अ नि जिल्द—२ पा० टे सो पृ १९९। ५ अ० नि जिल्द—४ पा टे सो पृ ६१। ६ कथावत्थु पा टे सो पृ० ५४। ७ अपदान पा० टे सो पृ ४२७। ८ विसुद्धिमग्ग पा टे सो पृ ६०६। ९ कथावत्थु पा टे सो पृ ६४। १० हार्डि मेर का सिंहली संस्करण पृ १०-१७। ११ दिव्यावदान पृ ३ ३४। १२ बौद्ध ग्रन्थ ४ ५६ व ११ बौद्ध ग्र ८ १९।

सूत्रो की तालिका में अट्टक तथा पारायण वग्गों के नाम सबसे पहले दिये गये हैं। धर्मगुप्त विनय (परिच्छेद ५४) में भी इसका उल्लेख है। अभिधर्ममहाविभाषा (परिच्छेद ४) में यह उल्लेख आया है कि कनिष्क के तत्वावधान में सम्पन्न ५०० अर्हन्तो की सङ्गीति मे पारायण का भी सङ्गायन हुआ था। उस ग्रन्थ में उधृत गाथाओं मे पोसालमाणवपुच्छा की दूसरी गाथा और कलहविवाद सुत्त की तेरहवीं गाथा महत्त्वपूर्ण है। महाप्रज्ञापारमिता के दूसरे परिच्छेद में अट्टकवग्ग के अन्तर्गत मागन्दिय के प्रश्न और तीसरे परिच्छेद मे पारायण के अन्तर्गत अजित के प्रश्न उधृत है। अश्वघोष के बुद्धचरित में पारायण से सम्बन्धित ब्राह्मणों के नाम दिये गये हैं। सूत्रालङ्कार (सर्ग ४३) मे भी इसका उल्लेख आया है। गिलगित में प्राप्त एक ग्रन्थ में दूसरे रूप से दी गई बावरी की कथा का उल्लेख[1] डा० ई० जे० थोमस ने किया है। प्रो० अनेसाकि ने अपने अध्ययन[2] में यह दिखाया है कि बौद्ध सस्कृत ग्रन्थों मे इसका उल्लेख कम-से कम तेरह स्थलो पर हुआ है।

उपरोक्त उल्लेखों से, विशेष रूप से पालि-पिटक ग्रन्थों मे आये हुए उल्लेखो से, जो कि सस्कृत ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक पुराने हैं, पारायणवग्ग की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। इन ग्रन्थों में कहीं सुत्तनिपात का उल्लेख नहीं आया है। इससे सुत्तनिपात के पहले अट्टकवग्ग की तरह परायणवग्ग के भी स्वतन्त्र अस्तित्व की बात सिद्ध हो जाती है।

इन ग्रन्थों में जहाँ-जहाँ पारायण का उल्लेख आया है, पुच्छा की जगह पर पञ्ह का प्रगोग हुआ है। निद्देस में भी पहली तथा तीसरी पुच्छा के लिए सुत्त शब्द का प्रयोग हुआ है और शेष के लिए पञ्ह शब्द का।

सुत्तनिपात की भाषा

सुत्तनिपात की प्राचीनता विषयवस्तु से ही नहीं अपितु भाषा तथा शैली से भी सिद्ध हो जाती है। फसबाल महोदय ने अपने विवेचन[3] में यह दिखाया है कि सुत्तनिपातमें अनेक वैदिक शब्दरूप पाये जाते हैं यथा—सज्ञारूप . चुतासे अवीततण्हासे, सितासे, पटिच्छितासे, पञ्हावीमसकासे, पण्डितासे, पवादियासे, उपट्ठितासे, सङ्खतधम्मासे, समणब्राह्मणासे, अनासवासे, पच्चयासे, क्रियारूप—चरामसे, अस्मसे, सिक्खिस्सामसे, लघु शब्दरूप—लक्खणा (= लक्खणानि),

१ बुद्ध की जीवनी, पृ० २७४। २ ज० पा० टे० सो०, १९०६ १९०७, पृ० ५७।
३ सुत्तनिपात की भूमिका।

विनिच्छमा (= विनिच्छयानि) तृतीया एकवचन रूप—मन्त्रा (= मन्त्राय), परिञ्ञा (= परिञ्ञाय), असमकम्मा (= असमकम्माय) निमित्तार्थक क्रियारूप—विप्पहातवे, सम्पयातवे, उन्नमेतवे सामान्य वर्तमान में न्ते की जगह पर रे का प्रयोग—पटिजानरे, पियिस्सरे, मिय्यरे, सिक्खरे सोचरे, सक्षिप्त प्रकीर्णक शब्दरूप—सन्त्वा (= सन्तिया), जत्वा (= जातिया), दुग्गत्या (= दुग्गतिया), सम्मुच्चा (= सम्मुतिया) तित्या (= तितिक्खा), मित्वो (= इत्थियो), परिहीरति (= परिहरीयति), जात्वा (= जातिया) विस्तृत शब्दरूप—आनुमान (= अमान), सुणामि (= सामि) सुवाना (= सोना) भविष्यमिश्र रूप—सम्पति (= सक्खिस्सति) पावा (= पवति), पवेच्छे (= पवेसेय्य) सुस (= सुसिस्सामि), दट्ठु (= दिस्वा), परिवसमानो (= परिवसमानो); छन्द के लिए मात्राओं का लोप—तद (= तदा), अनोसा (अनेसा), यद (= यदा) सिथिला (= सिथिलत्ता) अप्रचलित रूप—विगुण, एकपुण कुप्पटिच्छन्न उन्नमसुभी विसम्भसुभी, विभूतसुभी। इन जैसे शब्द रूपों से सुत्तनिपात की *भाषा* पर वैदिक *भाषा* का *प्रभाव* और उसकी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है।

शैली

सुत्तनिपात किसी एक शैली में नहीं है। इसमें शैलियों की अनेकता है। विषय के अनुसार भाषा में भी सरलता और जटिलता पाई जाती है। धनिय, हेमवत जैसे सुत्त संवादों के रूप में हैं। इन संवादों के भी दो रूप हैं। एक में कोई व्यक्ति एक-एक करके प्रश्न पूछता जाता है और भगवान् अलग-अलग उनका उत्तर देते जाते हैं। दूसरे में कोई व्यक्ति एक ही प्रश्न पूछता है और भगवान् विस्तार पूर्वक उसका उत्तर देते हैं। पब्बज्जा पधान, और नालक सुत्तों तथा पारायणवग्ग की वत्थुगाथायें आख्यानों के रूप में हैं। द्वयतानुपस्सना जैसे सुत्त परिप्रश्नात्मक हैं। अधिकांश सुत्तों को उपदेशात्मक कह सकते हैं। कितने ही सुत्तों की शैली में नाटकीय प्रवृत्ति है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय भारत में इस साहित्य का प्रचार था, कथा के रूप में जनसाधारण के बीच इन सुत्तों का पाठ होता रहा होगा। वर्तमान समय में सिंहल इत्यादि बौद्ध देशों में *मिलिन्दप्रश्न* वेस्सन्तर सुत्त जातक इत्यादि की कथा होती है जिसमें उपदेशक तथा अन्य पात्र भाग लेते हैं। यह बात हम सुत्तनिपात के सरल तथा लोकप्रिय विषयों के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं।

खग्गविसाण जैसे कुछ सूत्रों की गाथाओं के अन्तिम पाद की आवृत्ति हुई है। यह सदा से लोकप्रिय गीतों का एक आवश्यक अङ्ग रही है। यह आवृत्ति श्रोताओं या पाठकों को विषय का स्मरण दिलाती रहती है। इस प्रकार सुत्त-निपात की रचनाओं मे विषय तथा भाषा की तरह शैली की भी अनेकता दिखाई देती है।

छन्द

सुत्तनिपात में मुख्य रूप मे निम्नलिखित छन्द पाये जाते हैं—अनुष्टुभ, त्रिष्टुभ, जागती, अतिजागती, वैतालीय, औपच्छन्दसिक, वेगवती तथा आर्या। हेल्मर स्मिथ् महोदय ने सुत्तनिपात के छन्दो का विस्तार के साथ अध्ययन किया है[1]। उन्होंने यह दिखाया है कि लगभग ६१६ गाथाएँ अनुष्टुभ छन्द में हैं। इनमें से ५६२ गाथाएँ शुद्ध अनुष्टुभ में हैं और शेष ५४ गाथाएँ मिश्रित अनुष्टुभ में। ३७४ गाथाएँ त्रिष्टुभ छन्द में है और २९ गाथाएँ आर्या छन्द में हैं। ११७ गाथाएँ वैतालीय, औपच्छन्दसिक तथा वेगवती छन्दो में हैं। इन ११७ गाथाओं में से केवल १५ शुद्ध वैतालीय में हैं, ४१ औपच्छन्दसिक में हैं और १५ वेगवती में हैं। शेष ४५ गाथाएँ अर्धसम तथा विषम छन्दों में हैं। कुछ गाथाएँ पाँच, छ. या सात पादों की भी हैं, जो कि 'गाथा' छन्द में हैं।

सुत्तनिपात की गाथाओं की रचना में वर्णो की अपेक्षा मात्राओं तथा गणों का खयाल किया गया है। उस ममय काव्य-शास्त्र के नियम निश्चित और बँधे नहीं थे। इसलिए काव्य-रचना मे पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। इस काम में सरलता और गीतात्मकता पर अधिक ध्यान दिया जाता था। यह बात वेद, उपनिषद् जैसे प्राचीन साहित्यों से भी सिद्ध हो जाती है। ऋग्वेद तथा उपनिषदों के श्लोक मुख्यतया त्रिष्टुभ तथा अनुष्टुभ छन्दों में हैं। सुत्तनिपात में भी इन्हीं दोनों छन्दों का बाहुल्य है। वस्तुतः ८६ प्रतिशत गाथाएँ इन दोनों छन्दों में हैं और १४ प्रतिशत शेष छन्दों में। इसलिए वैदिक भाषा की तरह त्रिपिटक की भाषा भी काव्यशास्त्र के आडम्बरों से मुक्त हैं। भाषा की वह सरलता और स्वतन्त्रता सस्कृत भाषा में नहीं पाई जाती। सस्कृत काव्य तथा नाटक काव्य-शास्त्र के नियमों से बद्ध हैं। अनुपिटक की रचनाएँ भी इससे प्रभावित हैं।

त्रिपिटक में भी भाषा की दृष्टि से कई स्तर विद्यमान् हैं। विद्वान् इस निकर्ष पर पहुँचे हैं कि जिन रचनाओं में सरल भाषा और छन्दों का प्रयोग हुआ है,

१ देखो परमत्थजोतिका का प्राक्कथन, रोमन सस्करण।

थे अधिक प्राचीन हैं, और जिनमें अलङ्कारिक भाषा का प्रयोग हुआ है, वे कुछ बाद की हैं। यह बात सुत्तनिपात के विषय में भी सत्य है।

सुत्तनिपात तथा अशोक के धर्म-लेख

सम्राट् अशोक ने भाब्रू शिला-लेख में स्मरणीय सात धम्मपलियायों (धम्म-परियायों) का उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं—१ विनय-समुकसे, २. अलिय-वसानि, ३ अनागतभयानि, ४ मुनिगाथा, ५ मोनेय्य-सूते, ६ उपतिसे पसिने, और ७ लाघुलोवादे-मुसावादं अधिगिच्य। इन धम्मपरियायों को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। लेकिन चारों धम्म-परियायों का सन्तोषजनक समीकरण हुआ है। बहुमत के अनुसार इनमें से चार धम्मपरियाय—स १, ४ ५ तथा ६—सुत्तनिपात के अन्तर्गत हैं।

१ विनय-समुकसे का समीकरण एड्मण्ड्स् महोदय ने (ज रो ए सो १९११, पृ १८७ में) सामुक्कंसिका धम्मदेसना[1] और डा बी एम बडुआ ने (ज रो ए सो १९१५ पृ ८ ९ में) सिगालोवाद सुत्त[2] से किया है। बी एस एन मित्र ने (इण्डियन् एन्टिक्वेरि १९१९, पृ ८११ में) उसे तुवटक सुत्त[3] माना है और अपने मत के समर्थन में सुत्तागत 'विनयवर' तथा 'समुक्कंसेथ' शब्दों का उल्लेख किया है। डा भण्डारकर ने (अशोक पृ ८७-८८ में) इसका समीकरण सुत्तनिपात के तुवटक सुत्त से किया है। इस सिलसिले में उन्होंने यह दिखाया है कि यह सुत्त बुद्धघोषाचार्य द्वारा और तीन सुत्तों के साथ एक ऐसी तालिका में समवीत है, जिसके तीन सुत्त अशोक के धम्मपलियायों से मिलते-जुलते हैं। आगे उन्होंने सुत्तागत विषयों—पातिमोक्ख, पटिपदा तथा समाधि—का उल्लेख किया है। उनके दिये गये प्रमाणों के आधार पर अधिकतर विद्वानों ने भण्डारकरके मत को माना है।

४ डा रिस डेविड्सने (ज पा टे सो १८९६ पृ ९५ में) मुनि गाथा का समीकरण मुनि-सुत्त से किया है। उन्होंने प्रमाणित किया है कि जब हम थेर-गाथा से (दिव्यावदान १५) सेल-सुत्त समझ सकते हैं तो मुनि-गाथा से मुनि-सुत्त को समझना युक्तियुक्त है।

५ डा मुकर्जी (अशोक पृ ११८) भा धर्मानन्द कोशाम्बी (इ ए १९१२, पृ ४०) तथा डा बडुआने (अशोक और उनके शिलालेख में)

---

१ दीघनिकाय जिल्द—१ पा टे सो पृ ११; मज्झिम निकाय जिल्द—१ पा टे सो पृ १८। २ दीघनिकाय जिल्द-३ पा टे सो पृ १८ १९४। ३ मज्झिमनिकाय जिल्द १ पा टे सो, पृ० ४०-४५।

मोनेय्य का समीकरण सुत्तनिपात के अन्तर्गत नालक-सुत्त से किया है। मोनेय्य शब्द नालक सुत्त के प्रारम्भ में आया है और यह सुत्त इस नाम से भी ज्ञात है। महावस्तु (जिल्द—३, पृ० ३८७) में इस सूत्र का जो रूपान्तर है, उसका नाम भी मोनेय ही है। इन बातों के अतिरिक्त सुत्त का विशेष महत्त्व भी है। श्रीमती रिस डेविड्स् ने इतिवुत्तक[१] में आगत मोनेय्यानि के पक्ष में अपना विचार प्रकट किया है और डा० विण्टरनिट्स ने (भारतीय साहित्य का इतिहास, जिल्द—२, पृ० ६०७ में) इसे स्वीकार किया है। लेकिन शब्द की साम्यता होते हुए भी इस सूत्र में कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है जिससे कि यह कुछ चुने हुए धम्मपरियायों के अन्तर्गत किया जाय। इसलिए अधिकांश विद्वानों को यह मत मान्य नहीं है।

६. आल्डनबर्ग तथा डा० रिस डेविड्स् ने उपतिसे पसिने का समीकरण विनय के एक स्थल[२] से करने का प्रयत्न किया है। यहाँ अस्सजि द्वारा सारिपुत्त को धर्मोपदेश देने की कथा आई है। रिस् डेविड्स् ने (ज० रो० ए० सो० १८९३, पृ० ६९३ और ज० पा० टे० सो० १८९६, पृ० ९६-९७ में) विस्तार-पूर्वक इस विषय में लिखा है। लेकिन धर्मानन्द कौशाम्बी ने पर्याप्त प्रमाणों के साथ उसका समीकरण सुत्तनिपात के सारिपुत्त सुत्त से किया है। इस सूत्र के पक्ष में कई बातें हैं। जिन धम्मपरियायोंका अशोक ने उल्लेख किया है, वे परिमाण में छोटे हैं। लोगों को सम्राट् का यह आदेश था कि वे उनका अध्ययन और मनन करें। एक बात यह भी है कि गद्यों की अपेक्षा पद्यों को स्मरण करना आसान है। इन कारणों से सारिपुत्त सुत्त अधिकांश विद्वानों को मान्य है।

इस प्रकार भाब्रू शिला-लेख में जिन सात धम्मपलियायों का उल्लेख हुआ है, उनमें से चार सुत्तनिपात के अन्तर्गत हैं। इससे भी सुत्तनिपात की प्राचीनता तथा महत्त्व की सिद्धि हो जाती है।

धार्मिक अवस्था

सुत्तनिपात के कई एक सूत्रों से उस समय की धार्मिक अवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। श्रमणों तथा ब्राह्मणों में विभक्त—आजीवक, परिव्राजक, जटिल निगण्ठ इत्यादि उस समय के धार्मिक सम्प्रदायों का उल्लेख आया है। भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यों की गिनती श्रमणों में होती थी। सभिय सुत्त में उस समय के बौद्धेतर नामी छ: तिर्थायतनों का उल्लेख आया है। ब्राह्मण, जैसे कि सेल

---

१ पा० टे० सो० संस्करण, पृ० ६७। २. महावग्ग, पा० टे० सो०, पृ० ३९-४४।

सुत्त में आया है, अपने आश्रमों में वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन अध्यापन का काम करते थे। त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों की तरह सुत्तनिपात में भी वेद शब्द से प्रथम तीन वेद ही अभिप्रेत हैं। तुवटक सुत्त में अथर्व वेद का उल्लेख 'आथब्बण'[1] के नाम से आया है, जिसका अध्ययन बुरा समझा जाता था। कुछ श्रमण तथा ब्राह्मण ज्योतिष मन्त्र, तन्त्र इत्यादि धन्धों से अपना जीविकोपार्जन करते थे। भगवान् बुद्ध ने उनकी कड़ी आलोचना की है। धार्मिक कार्यों में यज्ञों और होमों का महत्त्व था। लोग चन्द्र, सूर्य इत्यादि नक्षत्रों की भी पूजा करते थे। इन बातों का उल्लेख त्रिपिटक के और ग्रन्थों में भी स्थान-स्थान पर कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार में आया है। लेकिन सुत्तनिपात में, विशेष रूप से अट्ठक तथा पारायण वर्गों में, दृष्टिवाद की निरर्थकता की जो आलोचना की गई है, वह और ग्रन्थों में बहुत कम मिलती है।

सामाजिक व्यवस्था

कई एक सूत्रों में सामाजिक व्यवस्था का भी उल्लेख आया है। वर्णव्यवस्था समाज की आधारशिला थी। जन्मागत उच्च-नीचता का भगवान् ने जिस तत्परता के साथ वासेट्ठ-सुत्त में खण्डन किया है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। इस सूत्र में उस समय प्रचलित कृषि, वाणिज्य शिल्प इत्यादि पेशों के नाम आये हैं। धनिय सुत्त से यह मालूम हो जाता है कि मनुष्य के लिए गोसम्पत्ति का क्या मूल्य था। ब्राह्मणधम्मिक सुत्त से कई महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मण किसी समय पैंतालीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। विवाह में स्त्रियों के बेचने और खरीदने की प्रथा का भी उल्लेख आया है। एक बात यह भी प्रकट हो जाती है कि तब भी लोग आमोद-प्रमोद से जीवन बिताते थे।

भिक्षु-संघ

सुत्तनिपात में निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील एकान्तवासी भिक्षु का चित्र मिलता है। बड़े-बड़े विहारों तथा संघारामों का उल्लेख कहीं नहीं आया है। धम्मचरिय-सुत्त में बुरे लोगों को संघ से निकाल कर अच्छे लोगों को संयमित हो तदर्थ के लिए प्रयत्न करने का उपदेश दिया गया है।

प्रस्तुत-आवृत्ति

सुत्तनिपात के इस दूसरी आवृत्ति को पाठकों के सामने रखते हुए हमें

---

१ [illegible] पृ० १८५; [illegible] पृ० ५६५; भा० [illegible] सुत्तनिपात-भूमिका, पृ० १५।

प्रसन्नता हो रही है। पहली आवृत्ति की अपेक्षा इस आवृत्ति में कुछ वृद्धि की गई है। इसमें वर्मा, स्वामी इत्यादि अन्य संस्करणों के पाठभेद दिये गये हैं। विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्राक्कथन को समालोचनात्मक तथा विस्तृत किया गया है। इस कार्य में अन्य विद्वानों के अनुसन्धानों का उपयोग किया गया है। इस प्रसङ्ग में निम्नलिखित विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—डा० फग्यूसन, डा० वापट, डा० रिस् डेविड्स, डा० विक्रमसिंह तथा हेल्मर स्मिथ। हम इन विद्वानों के आभारी हैं। प्रस्तुत आवृत्ति में प्रथम आवृत्ति की बहुत कुछ अशुद्धियों का संशोधन किया गया है।

सुत्त-सूची

१. उरग-वग्ग

२. चूल-वग्ग

३ महा-वग्ग

४ अट्ठक-वग्ग

५. पारायण-वग्ग

सुत्तनिपातो

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

सुत्तनिपातो

उरगवग्गो

उरग-सुत्तं

यो उप्पतितं विनेति कोधं, विसटं[1] सप्पविसं'व ओसधेहि[2] ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं[3] पुराणं ॥ १ ॥
यो रागमुदच्छिदा असेसं भिसपुप्फं'व सरोरुहं[4] विगय्ह ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ २ ॥
यो तण्हमुदच्छिदा असेसं, सरितं सीघसरं विसोसयित्वा ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तच पुराणं ॥ ३ ॥
यो मानमुदब्बधी असेसं, नळसेतुं'व सुदुब्बलं महोघो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ४ ॥
यो नाज्झगमा भवेसु सारं, विचिनं पुप्फमिव उदुम्बरेसु ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ५ ॥
यस्स'न्तरतो न सन्ति कोपा इति भवाभवतं च वीतिवत्तो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ६ ॥
यस्स वितक्का विधूपिता अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ७ ॥
यो नाच्चसारी न पच्चसारी सब्बं अच्चगमा इमं पपञ्चं ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ८ ॥
यो नाच्चसारी न पच्चसारी सब्बं वितथमिदं'ति ञत्वा[5] लोके ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ९ ॥
यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं'ति वीतलोभो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१०॥

---

१ विसटं—म० । २ ओसधेभि—म । ३ जिण्णमिवत्तच—म । ४ सरेरुहं—म । ५ ञत्वा—म ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

सुत्तनिपात

उरगवर्ग

१—उरग-सुत्त

[इस सूत्र में निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है ।]

जो, फैलते सर्प विष को औषधि की तरह, चढे क्रोध को शात कर देता है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥१॥

जो, तालाब मे उतरकर कमल पुष्प तोड देने की तरह, नि शेष राग को नष्ट कर देता है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, सॉप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ २ ॥

जो शीघ्रगामी तृष्णा रूपी सरिता को सुखा कर उसका नाश कर देता है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, सॉप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥३॥

जो, सरकडों का बना दुर्बल पुल को बहा ले जानेवाली बाढ की तरह, नि शेष मान का नाश करता है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, सॉप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ४ ॥

जो, गूलर मे फूल खोजने की तरह, ससार मे कुछ सार नही देखता, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, सॉप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥५॥

जिसके अन्दर कोप नही है और जो पुण्य तथा पाप से परे है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ६ ॥

जिसके वितर्क नष्ट हो गये है और जिसका चित्त पूर्णतया सयत है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, सॉप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥७॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जिसने सभी प्रपञ्चों को पार कर लिया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ८ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जिसने ससारकी असारता को समझ लिया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ९ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सबको असार जान कर लोभ रहित हो गया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १० ॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं ति वीतरागो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥११॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं ति वीतदोसो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१२॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं ति वीतमोहो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१३॥

यस्सानुसया न सन्ति केचि, मूला[1] अकुसला समूहतासे ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१४॥

यस्स दरथजा न सन्ति केचि, ओरं आगमनाय पच्चयासे ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१५॥

यस्स वनथजा न सन्ति केचि, विनिबन्धाय भवाय हेतुकप्पा ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१६॥

यो नीवरणे पहाय पञ्च, अनिघो तिण्णकथंकथो विसल्लो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१७॥

उरगसुत्तं निट्ठितं ।

२—धनिय-सुत्तं

पक्कोदनो दुद्धखीरो' हमस्मि[2] (इति धनियो गोपो) अनुतीरेमहियासमानवासो
छन्ना कुटि आहितो गिनि, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ १ ॥

अक्कोधनो विगतखिलो हमस्मि (इति भगवा) अनुतीरेमहियेकरत्तिवासो ।
विवटा कुटि निब्बुतो गिनि, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ २ ॥

अन्धकमकसा न विज्जरे (इति धनियो गोपो), कच्छे रूळ्हतिणे चरन्ति गावो ।
वुट्ठिं पि सहेय्युं आगतं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ३ ॥

---

१ मूला च—म । २ विगतखिलो हमस्मि—म ।

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सब को असार जान कर राग-रहित हो गया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ११ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सबको असार जानकर द्वेषरहित हो गया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १२ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सबको असार जान कर मोह-रहित हो गया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १३ ॥

जिसमे किसी प्रकार का बुरा सस्कार नहीं, जिसकी बुराइयों की जड उखाड दी गई है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १४ ॥

जिसमे भवसागर में पडने की प्रत्ययभूत किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥१५॥

जिसमें भव-बन्धन के हेतुभूत किसी प्रकार की तृष्णा नहीं है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १६ ॥

जो पाँच नीवरणों को नष्टकर निष्पाप, नि शङ्क और मुक्त हो गया है, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोडता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥१७॥

उरगसुत्त समाप्त ।

२—धनिय-सुत्त

[स्त्री, बच्चे, घर, गौवें तथा गार्हस्थ्य के सारे उपकरणों के साथ **धनिय** गोप अत्यन्त सन्तुष्ट हो प्रीति के शब्द कह रहा है । वहीं **मही** नदी के तट पर खुले आकाश में सर्वत्यागी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अपनी अलौकिक मुक्ति तथा निर्वाण से प्रीति युक्त हो उदान* के वाक्य कह रहे हैं । अन्त में **धनिय** गोप बुद्ध की महानता को समझ त्रिरत्न की शरण ग्रहण करता है ।]

धनिय गोपः—भात मेरा पक चुका । दूध दुह लिया । **मही** नदी के तीर पर स्वजनों के साथ वास करता हूँ । कुटी छा ली है, आग सुलगा ली है । अब, हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ १ ॥

बुद्धः—मैं क्रोध और राग से रहित हूँ, एक रात के लिए **मही** नदी के तीर पर ठहरा हूँ, मेरी कुटी खुली है और (अन्दर की) आग बुझ चुकी है । अब, हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ २ ॥

धनिय गोपः—मक्खी और मच्छड यहाँ पर नहीं हैं । कच्छार में उगी घास को गौवें चरती हैं । पानी भी पडे तो उसे वे सह लें । अब, हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ३ ॥

बद्धा हि भिसी सुसंखता (इति भगवा), तिण्णो पारगतो[1] विनेय्य ओघं ।
अत्थो भिसिया न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ४ ॥
गोपी मम अस्सवा अलोला (इति धनियो गोपो), दीघरत्तं संवासिया मनापा ।
तस्सा न सुणामि किञ्चि पापं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ५ ॥
चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं (इति भगवा), दीघरत्तं परिभावितं सुदन्तं ।
पापं पन मे न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ६ ॥
अत्तवेतनभतो'हमस्मि (इति धनियो गोपो), पुत्ता च मे समानिया अरोगा ।
तेसं न सुणामि किञ्चि पापं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ७ ॥
नाहं भतको'स्मि कस्सचि (इति भगवा), निब्बिट्ठेन चरामि सब्बलोके ।
अत्थो भतिया न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ८ ॥
अत्थि वसा अत्थि धेनुपा (इति धनियो गोपो),
गोधरणियो पवेणियो'पि अत्थि ।
उसभो'पि गवम्पती च अत्थि, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ९ ॥
नत्थि वसा नत्थि धेनुपा (इति भगवा) गोधरणियो पवेणियो पि नत्थि ।
उसभो'पि गवम्पती'ध नत्थि, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ १० ॥
खीला निखाता असंपवेधी (इति धनियो गोपो),
दामा मुञ्जमया नवा सुसंठाना ।
नहि सक्खिन्ति धेनुपा'पि छेत्तुं[2] अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ११ ॥
उसभोरिव छेत्वा[3] बंधनानि (इति भगवा) नागो पूतिलतं'व दालयित्वा[4] ।
नाहं पुन उपेस्सं[5] गब्भसेय्यं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ १२ ॥
निन्नं च थलं च पूरयन्तो महामेघो पवस्सि तावदेव ।
सुत्वा देवस्स वस्सतो, इममत्थं धनियो अभासथ ॥ १३ ॥
लाभा[6] वत नो अनप्पका[7] ये मयं भगवन्तं अद्दसाम ।
सरणं तमुपेम चक्खुम, सत्था नो होहि तुवं महामुनि ॥ १४ ॥
गोपी च अहं च अस्सवा, ब्रह्मचरियं सुगते चरामसे ।
जातिमरणस्स पारगा[8], दुक्खस्सन्तकरा भवामसे ॥ १५ ॥
नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा (इति मारो पापिमा), गोमिको गोहि तथेव नन्दति ।
उपधीहि नरस्स नन्दना नहि सो नन्दति यो निरूपधि[9] ॥ १६ ॥
सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा (इति भगवा) गोमिको गोहि तथेव सोचति ।
उपधीहि नरस्स सोचना, नहि सो सोचति यो निरूपधीति ॥ १७ ॥

धनियसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. पारगामी—स्या । २. छेत्तुं—स्या० क । ३. छेत्व—म० । ४ पूतिलतं दालयित्वा—स्या क । ५. पुनपेस्सं—म । ६. लाभो—सी । ७. अनप्पको—सी । ८. पारगू—म । ९. निरुपधी—म ।

बुद्धः—मैंने एक अच्छी तरणी बना ली है। भवसागर को तरकर पार चला आया। अब तरणी की आवश्यकता नहीं। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥४॥

धनिय गोपः—मेरी ग्वालिन आज्ञाकारिणी और अलोला है। वह चिरकाल की प्रिय संगिनी है। उसके विषय में कोई पाप भी नहीं सुनता। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥ ५ ॥

बुद्धः—मेरा मन वशीभूत और विमुक्त है, चिरकाल से परिभावित और दान्त है। मुझ में कोई पाप नहीं। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥ ६ ॥

धनिय गोपः—मैं आप अपनी ही मजदूरी करता हूँ। मेरी सन्तान अनुकूल और नीरोग है। उनके विषय में कोई पाप भी नही सुनता। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥ ७ ॥

बुद्धः—मैं किसी का चाकर नहीं, स्वच्छन्द सारे संसार में विचरण करता हूँ। मुझे चाकरी से मतलब नहीं। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥ ८ ॥

धनिय गोपः—मेरे तरुण बैल हैं और बछड़े हैं, गाभिन गायें हैं और तरुण गायें भी हैं, और सबके बीच वृषभराज भी हैं। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥९॥

बुद्ध —मेरे न तरुण बैल हैं और न बछडे, न गाभिन गाये हैं और न तरुण गायें, और सबके बीच वृषभराज भी नहीं। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥१०॥

धनिय गोपः—खूँटे मजबूत गड़े हैं, मूंज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे हैं, बैल भी उन्हें नहीं तोड सकते। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥ ११ ॥

बुद्धः—वृषभ जैसे बन्धनों को तोड, हाथी जैसे पूतिलता को छिन्न-भिन्न कर मैं फिर जन्म ग्रहण नहीं करूँगा। अब, हे देव! चाहो तो खूब बरसो ॥ १२ ॥

उसी समय ऊँची नीची भूमि को भरती हुई जोरों की बारिस हुई। बरसते हुए बादलों के गर्जन को सुन धनिय ने यह कहा ॥ १३ ॥

हमारा बडा लाभ हुआ कि हमने भगवान् के दर्शन पाये। हे चक्षुमान्! हम आप की शरण आते हैं, महामुनि! आप हमारे गुरु हों ॥ १४ ॥

गोपी और हम बुद्ध की आज्ञा में रह उनके धर्म का पालन करेंगे, फिर जन्म-मृत्यु को पार कर दुःख का अन्त करेंगे ॥ १५ ॥

मारः—पुत्रवाला पुत्रों से आनन्द मनाता है, उसी तरह गौवाला गौवो से। विषय-भोग ही मनुष्य के आनन्द के कारण हैं। जिन्हें विषय-भोग नहीं उन्हें आनन्द भी नहीं ॥ १६ ॥

बुद्धः—पुत्रवाला पुत्रों के कारण चिन्तित रहता है। उसी तरह गौवाला गौवों के कारण। विषय-भोग मनुष्य की चिन्ता के कारण हैं। जो विषय-रहित हैं, वे चिन्तारहित हैं ॥ १७ ॥

धनियसुत्त समाप्त।

३—खग्गविसाण-सुत्तं

सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, अविहेठयं अञ्ञतरं पि तेसं ।
न पुत्तमिच्छेय्य कुतो सहायं, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ १ ॥

संसग्गजातस्स भवन्ति स्नेहा, स्नेहन्वयं दुक्खमिदं पहोति ।
आदीनवं स्नेहजं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ २ ॥

मित्ते सुहज्जे अनुकम्पमानो, हापेति अत्थं पटिबद्धचित्तो ।
एतं भयं सन्थवे[1] पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ३ ॥

वंसो विसालो'व यथा विसत्तो, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा[2] ।
वंसक्कळीरो'व[3] असज्जमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ४ ॥

मिगो अरञ्ञम्हि यथा अबद्धो[4], येनिच्छकं गच्छति गोचराय ।
विञ्ञू नरो सेरितं पेक्खमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ५ ॥

आमन्तना होति सहायमज्झे वासे ठाने गमने चारिकाय ।
अनभिज्झितं सेरितं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ६ ॥

खिड्डा रती होति सहायमज्झे, पुत्तेसु च विपुलं होति पेमं ।
पियविप्पयोगं विजिगुच्छमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ७ ॥

चातुद्दिसो अप्पटिघो च होति, सन्तुस्समानो इतरीतरेन ।
परिस्सयानं सहिता अछम्भी, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ८ ॥

दुस्सङ्गहा पब्बजिता'पि एके, अथो गहट्ठा घरमावसन्ता ।
अप्पोस्सुक्को परपुत्तेसु हुत्वा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ९ ॥

ओरोपयित्वा गिहिव्यञ्जनानि[5], संसीनपत्तो[6] यथा कोविळारो ।
छेत्वान वीरो गिहिबन्धनानि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१०॥

सचे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं ।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि चरेय्य तेन'त्तमनो सतीमा ॥११॥

नो चे लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं ।
राजा'व रट्ठं विजितं पहाय, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१२॥

---

१. सन्थवे—म । २ अपेखा—सी । ३ वंसक्कळीरोव—म । वंसाकळीरो—स्या ब रो । ४ अबद्धो—स्या० ब । ५. गिहिब्यञ्जनानि—स्या ब रो । ६. संछिन्नपत्तो—म स्या ।

३—खग्गविसाण-सुत्त

[इस सूत्र में एकान्तवास का गुणगान है ।]

सभी प्राणियों के प्रति दण्ड का त्याग कर, उनमें किसी को भी न सतावे । पुत्र की इच्छा न करे, साथी की बात तो दूर । अकेला विचरे, खड्गविषाण (=गेंडे) की तरह ॥ १ ॥

संसर्ग में रहनेवाले को स्नेह उत्पन्न होता है, और स्नेह से उत्पन्न होता है यह दुःख । स्नेह के दुष्परिणाम को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह॥२॥

मित्रों तथा सुहृदों पर अनुकम्पा करते हुए आसक्त-चित्तवाला अपने अर्थ को खो देता है । मेल जोल में इस भय को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥३॥

उलझी हुई बाँस की बड़ी झाड़ की तरह (गहन) वह आसक्ति है जो पुत्रदाराओं में है । बाँस के करीर की तरह बिना लगे बझे अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ४ ॥

जिस प्रकार अरण्य में स्वच्छन्द मृग जिधर चाहे मनमाना चरता है, उसी प्रकार विज्ञ नर स्वच्छन्दता की कामना करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह॥५॥

कहीं रहते, टिकते, चलते या चारिका करते मित्रों के बीच तरह तरह की बातें उठती हैं । इसलिए अनपेक्ष्य-भाव और स्वच्छन्दता की कामना करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ६ ॥

मित्रों के बीच क्रीडा और रति होती है, तथा पुत्रों के प्रति विपुल प्रेम । प्रियों के वियोग की जुगुप्सा करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ७ ॥

जिस किसी से भी सन्तुष्ट रहनेवाला चारों दिशाओं में द्वेष रहित होता है । बाधाओं का सामना करते और उनसे न डरते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ८ ॥

कोई कोई प्रव्रजित भी मुश्किल से तृप्त होते हैं और वैसे ही हैं घर में रहनेवाले कोई कोई गृहस्थ भी । दूसरों के पुत्रों में अनासक्त हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ९ ॥

गार्हस्थ्य लक्षणों को हटाकर, पत्रहीन **कोविलार** वृक्ष की भाँति धीर गृह-बन्धनों को तोड़ अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १० ॥

यदि अनुकूल, धीर और बुद्धिमान् साथी मिले तो सब बाधाओं को दूरकर सन्तुष्ट, स्मृतिमान् उसके साथ विचरण करे ॥ ११ ॥

यदि अनुकूल, धीर और बुद्धिमान् साथी न मिले तो विजित राष्ट्र को त्यागनेवाले राजा की तरह अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १२ ॥

अद्धा पसंसाम सहायसम्पदं, सेट्ठा समा सेवितब्बा सहाया ।
एते अलद्धा अनवज्जभोजी, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१३॥

दिस्वा सुवण्णस्स पभस्सरानि, कम्मारपुत्तेन सुनिट्ठितानि ।
सङ्घट्टमानानि दुवे भुजस्मि, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१४॥

एवं दुतियेन[1] सहा ममस्स, वाचाभिलापो अभिसज्जना वा ।
एतं भयं आयतिं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१५॥

कामा हि चित्रा मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेन मथेन्ति चित्तं ।
आदीनवं कामगुणेसु दिस्वा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१६॥

ईती च गण्डो च उपद्दवो च, रोगो च सल्लं च भयं च मेतं ।
एतं भयं कामगुणेसु दिस्वा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१७॥

सीतं च उण्हं च खुदं पिपासं, वातातपे डंससिरिंसपे[2] च ।
सब्बानि पेतानि अभिसम्भवित्वा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१८॥

नागोव यूथानि विवज्जयित्वा, संजातखन्धो पदुमी उळारो ।
यथाभिरन्तं विहरं[3] अरञ्ञे, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१९॥

अट्ठान तं संगणिकारतस्स, यं फस्सयं[4] सामयिकं विमुत्ति ।
आदिच्चबन्धुस्स वचो निसम्म, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२०॥

दिट्ठिविसूकानि उपातिवत्तो, पत्तो नियामं पटिलद्धमग्गो ।
उप्पन्नञाणोम्हि अनञ्ञनेय्यो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२१॥

निल्लोलुपो निक्कुहो निप्पिपासो, निम्मक्खो निद्धन्तकसावमोहो ।
निरासयो सब्बलोके भवित्वा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२२॥

पापं सहायं परिवज्जयेथ अनत्थदस्सिं विसमे निविट्ठं ।
सयं न सेवे पसुतं पमत्तं एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२३॥

बहुस्सुतं धम्मधरं भजेथ, मित्तं उळारं पटिभानवन्तं ।
अञ्ञाय अत्थानि विनेय्य कंखं, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२४॥

खिड्डं रतिं कामसुखं च लोके अनलंकरित्वा अनपेक्खमानो ।
विभूसनट्ठाना विरतो सच्चवादी, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२५॥

पुत्तं च दारं पितरं च मातरं धनानि धञ्ञानि च बन्धवानि ।
हित्वान कामानि यथोधिकानि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२६॥

१. दुतीयेन—म । २. डंससिरिंसपे—म । ३. विहरं—म स्या । ४. फुस्सये—स्या ।

मित्र-लाभ की प्रशसा हम अवश्य करते है। श्रेष्ठ और समान मित्रो की सगति करनी ही चाहिए। इनके न मिलने पर निर्दोष आजीविकावाला अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १३ ॥

सुवर्णकार से सुनिष्ठित, सुनहरी और चमकीली दो कंकणियो को एक हाथ में घर्षित होते देख अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १४ ॥

इस प्रकार दूसरे के साथ मेरे रहने से प्रलाप या आसक्ति होती है। इस भय को आगे भी देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १५ ॥

काम विचित्र, मधुर और मनोरम है। वे अनेक प्रकार से मन को विचलित करते हैं। कामगुणों के दुष्परिणाम को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १६ ॥

यह विपत्ति है, फोडा है, उपद्रव है, रोग है, विष है और भय है—इस प्रकार काम गुणो मे भय देख अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १७ ॥

सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास, हवा और धूप, डँस मक्खी और साँप, इन सबका सामना कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १८ ॥

जिस प्रकार अपने दल को छोड पद्‌मी जाति मे उत्पन्न विशाल गजराज इच्छानुसार वन में विहरता है, उसी प्रकार अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १९ ॥

'सगति में रत मनुष्य को सामयिक विमुक्ति भी असम्भव है' आदित्यबन्धु के इस वचन का ख्याल कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २० ॥

मैं मिथ्या-दृष्टियों से परे हूँ। सम्यक् मार्ग पर चलकर लक्ष्य पर पहुँचा हूँ। विना दूसरे की सहायता के मैंने ज्ञान लाभ किया है। अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २१ ॥

लोलुपता, ढोंग, विषय-पिपास, डाह, चित्त-मल और मोह से रहित हो, ससार में किसी की आकाक्षा न करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २२ ॥

अनर्थ को ग्रहण करनेवाले, विषमाचार में मग्न पाप-मित्र का परिवर्जन करे। आल्सी और प्रमत्तों का साथ न देते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह॥२३॥

उदार, प्रतिभाशील, बहुश्रुत तथा धर्मधर मित्र की सगति करे। फिर अर्थ को जान, शका का समाधान कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २४ ॥

ससार में क्रीडा, रति और कामसुख में आसक्त न हो, उनकी अपेक्षा न कर, शृगार से विरत हो, सत्यवादी बन अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २५ ॥

स्त्री, पुत्र, माता, पिता, धन, धान्य और बान्धव, इन सबका पूर्णत त्याग कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २६ ॥

संगो एसो परित्तमेत्थ सोख्यं, अप्प'स्सादो दुक्खमेत्थ भिय्यो ।
गळो एसो इति मत्वा मुतीमा[1], एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२७॥

सन्दालयित्वा[2] संयोजनानि, जालं'व भेत्वा सलिलम्बुचारी ।
अग्गी'व दड्ढं अनिवत्तमाना, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२८॥

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो, गुत्तिन्द्रियो रक्खितमानसाना ।
अनवस्सुतो अपरिडय्हमाना, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२९॥

ओहारयित्वा गिहिब्यञ्जनानि, सञ्छिन्नपत्तो[3] यथा पारिछत्तो ।
कासायवत्थो अभिनिक्खमित्वा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३०॥

रसेसु गेधं अकरं अलोलो, अनञ्ञपोसी सपदानचारी ।
कुले कुले अप्पटिबद्धचित्तो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३१॥

पहाय पंचावरणानि चेतसो, उपक्किलेसे ब्यपनुज्ज सब्बे ।
अनिस्सितो छेत्वा[5] सिनेहदोसं, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३२॥

विपिट्ठिकत्वान सुखं दुखं च, पुब्बे'व च सोमनस्सदोमनस्सं ।
लद्धानुपेक्खं समथं विसुद्धं, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३३॥

आरद्धविरियो परमत्थपत्तिया अलीनचित्तो अकुसीतवुत्ति ।
दळ्हनिक्कमो थामबलूपपन्नो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३४॥

पटिसल्लानं झानमरिञ्चमानो धम्मेसु निच्चं अनुधम्मचारी ।
आदीनवं सम्मसिता भवेसु एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३५॥

तण्हक्खयं पत्थयं अप्पमत्तो, अनेळमूगो[6] सुतवा सतीमा ।
संखातधम्मो नियतो पधानवा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३६॥

सीहो'व सद्देसु असन्तसन्तो, वातो'व जालम्हि असज्जमानो ।
पदुमं'व तोयेन अलिप्पमानो[7] एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३७॥

सीहो यथा दाठबली पसय्ह, राजा मिगानं अभिभुय्यचारी ।
सेवेथ पन्तानि सेनासनानि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३८॥

मेत्तं उपेक्खं करुणं विमुत्तिं आसेवमानो मुदितं च काले ।
सब्बेन लोकेन अविरुज्झमानो, एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३९॥

---

१ मतीमा—म० स्या । २ पदालयित्वा—स्या क । ३ सच्छिन्नपत्तो—क । ४ अप्पटिबद्धचित्तो—क । ५ छेत्व—म० । ६ अनेळमूगो—स्या रो क । ७ अलिम्पमानो—सी स्या क ।

यह बन्धन है, इसमें थोडा ही सुख है, स्वाद थोडा है, इसमे दुःख बहुत है और यह फोडा सा है। बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार जान अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २७ ॥

जाल का भेदन करनेवाली मछली की भाँति, और जले स्थान को न लौटनेवाली आग की भाँति, सभी बन्धनों को काट अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥२८॥

आँखों को नीचे कर, घुमक्कड न हो, इन्द्रियों को काबू मे रख, मन को सयत कर और तृष्णा तथा काम-दाह से रहित हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २९ ॥

गृहस्थवेष का त्याग कर, पत्रहीन पारिछत्र वृक्ष की भाँति काषायवस्त्रधारी हो, घर से निकल अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३० ॥

रस-तृष्णा न कर, लोलुपता से रहित हो, दूसरों को पोसनेवाला न हो, घर-घर भिक्षाटन करते और किसी भी कुल में आसक्त न हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३१ ॥

पाँच प्रकार के मानसिक आवरणों को हटा कर, सब छोटे चित्तमलो को भी दूर कर, कहीं आसक्त न हो, स्नेह और द्वेष का छेदन कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३२ ॥

सुख और दुःख का त्याग कर, प्रसन्नता और अप्रसन्नता का प्रहाण कर, उपेक्षावाले विशुद्ध ध्यान का लाभ कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥३३॥

परमार्थ की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील हो, जागरूक हो, आलस्य रहित हो, दृढ सकल्प, स्थैर्य और बल से युक्त हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥३४॥

ध्येय में तल्लीन हो, ध्यान में रत हो, धर्म के अनुकूल नित्य आचरण करते तथा भवके कुपरिणाम पर मनन करते अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥३५॥

तृष्णा-क्षय की प्राप्ति के लिए अप्रमत्त, निपुण, श्रुतिमान् और स्मृतिमान् बन, धर्म पर मनन करते हुए, सयमी तथा पराक्रमी हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३६ ॥

शब्द से कम्पित न होनेवाले सिंह, जाल में न फँसनेवाली वायु तथा जलमें लिप्त न होनेवाले पद्म के समान बन अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥३७॥

जिस प्रकार दाठाबली मृगराज सिंह दूसरे जानवरों का दमन कर रहता है, उसी प्रकार एकान्त स्थानों में रहे और अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥३८॥

मैत्री, उपेक्षा, करुणा, विमुक्ति और मुदिता का समय-समय पर आसेवन करते हुए, सारे ससार में कहीं भी विरोधभाव न रख अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३९ ॥

रागं च दोसं च पहाय मोहं, संदालयित्वा संयोजनानि।
असन्तसं जीवितसंखयम्हि, एको चरे खग्गविसाणकप्पो॥४०॥
भजन्ति सेवन्ति च कारणत्था, निक्कारणा दुल्लभा अज्ज मित्ता।
अत्तट्ठपञ्ञा असुची मनुस्सा, एको चरे खग्गविसाणकप्पो॥४१॥

खग्गविसाणसुत्तं निट्ठितं।

४–कसिभारद्वाज-सुत्त

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति दक्खिणागिरिस्मिं[1] एकनाळायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पञ्चमत्तानि नङ्गलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पकाले। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो तेनुपसंकमि। तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसना वत्तति। अथ खो भगवा येन परिवेसना तेनुपसंकमि, उपसंकमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय ठितं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोच– 'अहं, खो समण! कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामि त्वं'पि समण! कसस्सु च वपस्सु च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जस्सू''ति।

"अहं'पि खो ब्राह्मण! कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामी'ति।

"न खो पन मयं पस्साम भोतो गोतमस्स युगं वा नंगलं वा फालं वा पाचनं वा बलिवद्दे[2] वा अथ च पन भवं गोतमो एवं आह "अहं'पि खो, ब्राह्मण! कसामि च वपामि च, कसित्वा च 'वपित्वा च भुञ्जामी'ति।

अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"कस्सको पटिजानासि, न च पस्साम ते कसिं।
कसिं नो पुच्छितो ब्रूहि यथा जानेमु ते कसिं"॥ १॥
"सद्धा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्ञा मे युगनंगलं।
हिरि ईसा मनो योत्तं सति मे फालपाचनं॥ २॥
कायगुत्तो वचीगुत्तो, आहारे उदरे यतो।
सच्चं करोमि निद्दानं, सोरच्चं मे पमोचनं॥ ३॥

---

१ दक्खिणागिरिस्मि—म। २ बलिवद्दे—म।

राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण कर, बन्धनों का भेदन कर, मृत्यु से भी न डरते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ४० ॥

मित्र स्वार्थ ही के कारण साथ देते हैं। आज कल निःस्वार्थी मित्र दुर्लभ हैं। अनेक मनुष्य अपना स्वार्थ ही देखते हैं। (इसलिए) अकेला विचरे खड्गविषाण की तरह ॥ ४१ ॥

खग्गविसाणसुत्त समाप्त।

४—कसिभारद्वाज सुत्त

ऐसा मैंने सुना —

एक समय भगवान् मगध के दक्षिणागिरि में, एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार करते थे। उस समय कसीभारद्वाज ब्राह्मण पाँच सौ हलों को ले जोताई के काम में लगा था। एक दिन भगवान् दोपहर के वक्त पहन, पात्र-चीवर लेकर कसीभारद्वाज ब्राह्मण के कर्मस्थान पर पहुँचे। उस समय ब्राह्मण भोजन परोस रहा था। भगवान् वहाँ गये, जाकर एक ओर खड़े हो गये। कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने भिक्षा के लिए खड़े हुए भगवान् को देखा, देखकर भगवान् से यह कहा—"श्रमण! मैं जोतता बोता हूँ, जोताई बोआई कर खाता हूँ। श्रमण! तुम भी जोतो और बोओ, जोताई बोआई कर खाओ।"

बुद्धः—"ब्राह्मण मैं भी जोताई बोआई करता हूँ, जोताई बोआई कर खाता हूँ।"

ब्राह्मण —"मैं तो आप गौतम का युग, नङ्गल, फाल या छकुनी को नहीं देखता, फिर भी आप गौतम ने ऐसा कहा—"ब्राह्मण! मैं भी जोताई बोआई करता हूँ, जोताई बोआई कर खाता हूँ।"

तब फिर कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से यह गाथा कही—

"आप अपने को कृषक बताते हैं, लेकिन हम आपकी कृषि को नहीं देखते। हम पूछते हैं, (कृपया) बतावें जिससे हम आपकी कृषि को जान सकें" ॥ १ ॥

बुद्धः—"श्रद्धा मेरा बीज है, तप वृष्टि है, प्रज्ञा मेरा युग और नङ्गल है, लज्जा नङ्गल-दण्ड है, स्मृति मेरी फाल और छकुनी है ॥ २ ॥

"काया से संयत हूँ, वचन से संयत हूँ, आहार के विषय में संयत हूँ, सत्य से निराई करता हूँ, निर्वाण-रति मेरा प्रमोचन है ॥ ३ ॥

"भिरियं मे धुरधोरय्ह, योगक्खेमाधिवाहनं ।
गच्छति अनिवत्तन्तं, यत्थ गन्त्वा न सोचति ॥ ४ ॥
"एवमेसा कसी कट्ठा, सा होति अमतप्फला ।
एत कसिं कसित्वान, सब्बदुक्खा पमुच्चती"ति ॥ ५ ॥

अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो महतिया कंसपातिया पायासं वड्ढेत्वा भगवतो उपनामेसि—"भुञ्जतु भवं गोतमो पायासं, कस्सको भवं, यं हि भवं गोतमो अमतफलं कसिं कसती"ति—

"गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, संपस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो ।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा ॥ ६ ॥
"अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं ।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती"ति ॥ ७ ॥

'अथ कस्स चाहं, भो गोतम ! इमं पायासं दम्मी"ति । "न ख्वाहं तं, ब्राह्मण ! पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्स सो पायासो भुत्तो सम्मा परिणामं गच्छेय्य, अञ्ञत्र तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा, तेन हि त्वं, ब्राह्मण ! तं पायासं अप्पहरिते वा छड्डेहि, अप्पाणके वा उदके ओपिलापेही"ति । अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो तं पायासं अप्पाणके उदके ओपिलापेसि । अथ खो सो पायासो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति । सेय्यथापि नाम फालो दिवससन्तत्तो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति एवमेव सो पायासो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति । अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहट्ठजातो येन भगवा तेनुपसंकमि उपसंकमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—'अभिक्कन्तं भो गोतम अभिक्कन्तं भो गोतम, सेय्यथापि भो गोतम निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य पटिच्छन्नं वा विवरेय्य मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्तीति' एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो । एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसंघं च । लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं लभेय्यं उपसम्पदं"ति । अलत्थ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ

१ पायासं—क० । २ अमनापर—ख । ३ दक्खन्तीति—ख ।

"निर्वाण की ओर ले जानेवाला वीर्य मेरे जोते हुए बैल हैं। वह निरन्तर उस ओर जा रहा है, जहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता ॥ ४ ॥

"यह मेरी खेती इस प्रकार की गई है। यह अमृत फल देनेवाली है, ऐसी खेती करके मनुष्य सब दुःख से मुक्त हो जाता है" ॥ ५ ॥

तब कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने एक स्वर्ण थाली में खीर लाकर भगवान् के सामने रखते हुए कहा —

"आप गौतम! खीर को खायें। अमृतफल देनेवाली कृषि करने के कारण आप गौतम कृषक हैं"।

बुद्ध.—"धर्मोपदेश करने से प्राप्त भोजन मेरे योग्य नहीं। ब्राह्मण! सम्यक् दर्शकों का यह धर्म नहीं है। धर्मोपदेश से प्राप्त भोजन को बुद्ध इनकार करते हैं। ब्राह्मण! धर्म के विद्यमान रहते यही रीति रहती है ॥ ६ ॥

"केवली, क्षीणाश्रव, चञ्चलता-रहित महर्षि की सेवा दूसरे अन्न और पान से करो, यह पुण्यापेक्षी का क्षेत्र है" ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः— "गौतम! यह खीर मैं किसे दूँ?"

बुद्धः—"ब्राह्मण! देव, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण अन्तर्गत इस सारे लोक में, तथागत तथा तथागत-श्रावक को छोड कर किसी ऐसे प्राणी को मैं नहीं देखता जिसे इस भोजन से कोई कल्याण हो। इसलिए, ब्राह्मण! या तो इसे हरित तृणरहित स्थान पर छोड दो या प्राणीरहित जल मे डाल दो।"

तब कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने उस खीर को प्राणीरहित जल मे डाल दिया। पानी में पडते ही वह खीर चिच्चिट, चिटिचिट की आवाज करने और भाप फेंकने लगी। जिस प्रकार दिन भर तप्त फाल पानी में डालते ही चिच्चिट, चिटिच्चिट की आवाज करता और भाप फेंकता है, उसी प्रकार वह खीर पानी मे पडते ही चिच्चिट, चिटिचिट की आवाज करने तथा भाप फेंकने लगी।

तब कसीभारद्वाज ब्राह्मण संविग्न और रोमाञ्च हो जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान् के पादों में नतमस्त हो बोला—"आश्चर्य है! गौतम!! आश्चर्य है! गौतम!! जिस प्रकार कोई उलटे को पलट दे, ढँके को खोल दे, भूले भटके को मार्ग बता दे, या अन्धकार में प्रदीप धारण करे जिससे कि आँखवाले रूप देख लें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया। इसलिये मैं आप गौतम की शरण जाता हूँ, धर्म तथा भिक्षु-सङ्घ की भी। मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा* पाऊँ।"

उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा भारद्वाजो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसंपज्ज विहासि; खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तायाति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च खो पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसीति।

कसिभारद्वाजसुत्तं निट्ठितं।

५—चुन्द-सुत्तं

पुच्छामि मुनिं पहूतपञ्ञं (इति चुन्दो कम्मारपुत्तो), बुद्धं धम्मस्सामिं वीततण्हं।

दिपदुत्तमं[1] सारथीनं पवरं, कति लोके समणा तदिंघ ब्रूहि॥ १॥

चतुरो समणा न पञ्चमत्थि (चुन्दाति भगवा), ते ते आविकरोमि सक्खिपुट्ठो।

मग्गजिनो मग्गदेसको च, मग्गे जीवति यो च मग्गदूसी॥ २॥

कं मग्गजिनं वदन्ति बुद्धा (इति चुन्दो कम्मारपुत्तो), मग्गक्खायी कथं अतुल्या होति।

मग्गे जीवति मे ब्रूहि पुट्ठो, अथ मे आविकरोहि मग्गदूसिं[2]॥ ३॥

यो तिण्णकथंकथो विसल्लो, निब्बाणाभिरतो अनानुगिद्धो[3]।

लोकस्स सदेवकस्स नेता, तादिं मग्गजिनं वदन्ति बुद्धा॥ ४॥

परमं परमं'ति यो'ध ञत्वा, अक्खाति विभजति इधेव धम्मं।

तं कंखच्छिदं मुनिं अनेजं, दुतियं भिक्खुनमाहु मग्गदेसिं॥ ५॥

यो धम्मपदे सुदेसिते, मग्गे जीवति सञ्ञतो सतीमा।

अनवज्जपदानि सेवमानो, ततियं भिक्खुनमाहु मग्गजीविं॥ ६॥

छदनं कत्वान सुब्बतानं, पक्खन्दि कुलदूसको पगब्भो।

मायावी असञ्ञतो पलापो, पतिरूपेन चरं स मग्गदूसी॥ ७॥

एते च पटिविज्झि यो गहट्ठो, सुतवा अरियसावको सपञ्ञो।

सब्बे नेतादिसा'ति ञत्वा, इति दिस्वा न हापेति तस्स सद्धा।

कथं हि दुट्ठेन असम्पदुट्ठं सुद्धं असुद्धेन समं करेय्याति॥ ८॥

चुन्दसुत्तं निट्ठितं।

---

१ दिपदुत्तम—म। २ मग्गदूसी—क। ३ अनानुगिद्धो—सी।

कसिभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। कुछ ही दिनों के बाद आयुष्मान् भारद्वाज एकान्त में अप्रमत्त, उद्योगी तथा तत्पर हो, जिस अर्थ के लिए कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से घर से बेघर हो विहरता है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यावसान को इस जीवन में स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरने लगा। उसने जान लिया—"जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, कृतकृत्य हो गया और पुनर्जन्म रुक गया।" आयुष्मान् भारद्वाज अरहन्तों में से एक हुए।

कसिभारद्वाजसुत्त समाप्त।

५—चुन्द-सुत्त

[यहाँ चुन्द भिन्न-भिन्न श्रमणों के विषय में पूछता है और भगवान् उसको उत्तर देते हैं।]

चुन्दः—बहुप्रज्ञ मुनि, धर्मस्वामी, तृष्णा-रहित, द्विपदों में उत्तम और सारथियों में श्रेष्ठ बुद्ध से पूछता हूँ—संसार में कितने प्रकार के श्रमण हैं? कृपया यह बतावें ॥१॥

बुद्धः—चुन्द! चार प्रकार के श्रमण हैं, कोई पाँचवाँ प्रकार नहीं। मुझसे पूछनेवाले तुम्हें मैं उनके विषय में बताता हूँ। वे हैं—मार्ग-जिन, मार्ग-देशक, मार्ग जीवी तथा मार्ग-दूषक ॥ २ ॥

चुन्दः—बुद्ध किसे मार्गजिन बताते हैं? मार्ग-देशक किस प्रकार अतुल्य होता है? मार्गजीवी कौन है? फिर मुझे मार्ग-दूषक के विषय में बतावें ॥३॥

बुद्ध—जो शङ्काओं से रहित, दुःख मुक्त, निर्वाण में अभिरत, लालसा से रहित और देवों तथा मनुष्यों का नेता हो, बुद्ध उसे मार्गजिन बताते हैं ॥४॥

जो मुनि इस संसार में परमार्थ को परमार्थ जानकर यहाँ उस धर्म का उपदेश देता है और व्याख्या करता है, रागरहित, शङ्काओं को दूर करनेवाला वह दूसरा भिक्षु मार्ग-देशक कहा गया है ॥ ५ ॥

जो सुदेशित धर्मपद के अनुसार संयमित और स्मृतिमान् हो मार्ग पर जीता है, अनवद्य-पथ पर चलनेवाला वह तृतीय भिक्षु मार्गजीवी है ॥ ६ ॥

जो सुव्रतों का वेष धारण कर मौका की ताक में रहता है, जो कुल-दूषक, प्रगल्भी, मायावी, असंयमी और प्रलापी हो साधुओं के भेष में विचरण करता है, वह मार्ग-दूषक है ॥ ७ ॥

जो प्रज्ञावान् गृहस्थ-आर्यश्रावक इन बातों को सुनकर जान गया है, उसकी श्रद्धा कम नहीं होती, क्योंकि वह जानता है कि सब वैसे नहीं होते। दुष्ट की समता किस प्रकार अदुष्ट से हो सकती है और शुद्ध की अशुद्ध से ॥ ८ ॥

चुन्दसुत्त समाप्त।

६—पराभव-सुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-पिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा यन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

पराभवन्तं पुरिसं, मयं पुच्छाम गोतमं[१]।
भगवन्तं[२] पुट्ठुमागम्म, किं पराभवतो मुखं॥ १॥

सुविजानो भवं होति सुविजानो[३] पराभवो।
धम्मकामो भवं होति, धम्मदेस्सी पराभवो॥ २॥

इति हेतं विजानाम, पठमो सो पराभवो।
दुतियं भगवा ब्रूहि, किं पराभवतो मुखं॥ ३॥

असन्तस्स पिया होन्ति, सन्ते न कुरुते पियं।
असतं धम्मं रोचेति, तं पराभवतो मुखं॥ ४॥

इति हेतं विजानाम, दुतियो सो पराभवो।
ततियं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं॥ ५॥

निद्दासीली सभासीली अनुट्ठाता च यो नरो।
अलसो कोधपञ्ञाणो[४] तं पराभवतो मुखं॥ ६॥

इति हेतं विजानाम ततियो सो पराभवो।
चतुत्थं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं॥ ७॥

यो मातरं वा पितरं वा, जिण्णकं गतयोब्बनं।
पहु सन्तो न भरति, तं पराभवतो मुखं॥ ८॥

इति हेतं विजानाम चतुत्थो सो पराभवो।
पञ्चमं भगवा ब्रूहि, किं पराभवतो मुखं॥ ९॥

यो ब्राह्मणं वा समणं वा अञ्ञं वा'पि वनिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति, तं पराभवतो मुखं॥ १०॥

इति हेतं विजानाम, पञ्चमो सो पराभवो।
छट्ठमं भगवा ब्रूहि, किं पराभवतो मुखं॥ ११॥

---

१ गोतम—म। २. भगवं—स्या क। ३ दुविजानो—स्या क। ४ कोधपञ्ञाणो—स्या। ५ यो मातरं—म। ६ यो ब्राह्मणं—म।

६—पराभव सुत्त

ऐसा मैंने सुना —

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय एक देवता रात बीतने पर उज्ज्वल प्रकाश से सारे जेतवन को आलोकित करते हुए जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो उस देवता ने भगवान् से यह गाथा कही —

भगवान् के पास आकर हम पतनोन्मुख पुरुष के विषय में पूछते हैं। पतन का कारण क्या है? ॥ १ ॥

बुद्ध :—उन्नत मनुष्य आसानी से जाना जा सकता है। पतनोन्मुख मनुष्य भी आसानी से जाना जा सकता है। धर्म-प्रेमी उन्नति को प्राप्त होता है और धर्म-द्वेषी अवनति को ॥ २ ॥

देवता :—अवनति के इस पहले कारण को हमने इस प्रकार जान लिया। अब भगवान् अवनति के दूसरे कारण को बतावें ॥ ३ ॥

बुद्ध :—जिसे असत्पुरुष प्रिय हैं, सत्पुरुष प्रिय नहीं और जो असत्पुरुषों के धर्म को चाहता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ ४ ॥

देवता :—अवनति के इस दूसरे कारण को हमने इस प्रकार जान लिया। भगवान्! अवनति के तीसरे कारण को बतावें ॥ ५ ॥

बुद्ध :—जो नर निद्रालु, बहुतों से सम्पर्क रखनेवाला, अनुद्योगी, आलसी और क्रोधी है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ ६ ॥

देवता :—अवनति के इस तीसरे कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के चौथे कारण को बतावें ॥ ७ ॥

बुद्ध :—जो समर्थ होने पर भी, दुबले और बूढ़े माता-पिता का पोषण नहीं करता, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ ८ ॥

देवता :—अवनति के इस चौथे कारण को हमने ऐसा जान लिया। भगवान्! अवनति के पाँचवें कारण को बतावें ॥ ९ ॥

बुद्ध :—जो, ब्राह्मण, श्रमण अथवा किसी दूसरे याचक को मिथ्या भाषण से धोखा देता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १० ॥

देवता :—अवनति के इस पाँचवें कारण को हमने ऐसा जान लिया। भगवान्! अवनति के छठें कारण को बतावें ॥ ११ ॥

बहुतवित्तो पुरिसो, सहिरञ्ञो सभोजनो ।
एको भुञ्जति सादूनि, तं परामवतो मुखं ॥ १२ ॥
इति हेतं विजानाम, छट्ठमो सो परामवो ।
सत्तमं भगवा ब्रूहि, किं परामवतो मुखं ॥ १३ ॥
जातित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो ।
सञ्ञातिं अतिमञ्ञेति, तं परामवतो मुखं ॥ १४ ॥
इति हेतं विजानाम, सत्तमो सो परामवो ।
अट्ठमं भगवा ब्रूहि, किं परामवतो मुखं ॥ १५ ॥
इत्थिधुत्तो सुराधुत्तो, अक्खधुत्तो च यो नरो ।
लद्धं लद्धं विनासेति, तं परामवतो मुखं ॥ १६ ॥
इति हेतं विजानाम, अट्ठमो सो परामवो ।
नवमं भगवा ब्रूहि, किं परामवतो मुखं ॥ १७ ॥
सेहि दारेहि असन्तुट्ठो वेसियासु पदिस्सति[1] ।
दिस्सति[2] परदारेसु, तं परामवतो मुखं ॥ १८ ॥
इति हेतं विजानाम नवमो सो परामवो ।
दसमं भगवा ब्रूहि, किं परामवतो मुखं ॥ १९ ॥
अतीतयोब्बनो पोसो, आनेति तिम्बरुत्थनिं ।
तस्सा इस्सा न सुपति तं परामवतो मुखं ॥ २० ॥
इति हेतं विजानाम, दसमो सो परामवो ।
एकादसमं भगवा ब्रूहि, किं परामवतो मुखं ॥ २१ ॥
इत्थिसोण्डिं विकिरणिं पुरिसं वा'पि तादिसं ।
इस्सरियस्मिं ठपेति, तं परामवतो मुखं ॥ २२ ॥
इति हेतं विजानाम एकादसमो सो परामवो ।
द्वादसमं भगवा ब्रूहि, किं परामवतो मुखं ॥ २३ ॥
अप्पभोगो महातण्हो खत्तिये जायते कुले ।
सो'च रज्जं पत्थयति तं परामवतो मुखं ॥ २४ ॥
एते परामवे लोके, पण्डितो समवेक्खिय ।
अरियो दस्सनसम्पन्नो स लोकं भजते सिवं'ति ॥ २५ ॥

परामवसुत्तं निट्ठितं ।

---

१ दारेहसन्तुट्ठो—क । २. पदुस्सति—म स्या क । ३ दुस्सति—म स्या० क । ४ ठपेति—म० स्या । थपेति—क ।

बुद्धः—सोना, भोजन इत्यादि प्रचुरसम्पत्तिवाला पुरुष अकेला स्वादिष्ट भोजन करे तो वह उसकी अवनति का कारण होता है ॥१२॥

देवताः—अवनति के इस छठे कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के सातवें कारण को बतावें ॥ १३ ॥

बुद्धः—जो नर जाति, धन तथा गोत्र का गर्व करता है, और अपने बन्धुओं का अपमान करता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १४ ॥

देवता:—अवनति के इस सातवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अब अवनति के आठवें कारण को बतावें ॥ १५ ॥

बुद्धः—जो स्त्रियों के पीछे पडा रहता है, जो शराबी और जुआरी है, जो अपनी कमाई को नष्ट कर देता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १६ ॥

देवताः—अवनति के इस आठवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के नवें कारण को बतावें ॥ १७ ॥

बुद्धः—जो अपनी स्त्री से असन्तुष्ट हो वेश्याओं और परस्त्रियों के साथ रहता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १८ ॥

देवता:—अवनति के इस नवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के दसवें कारण को बतावें ॥ १९ ॥

बुद्धः—विगत यौवनवाला पुरुष किसी नई युवती को ब्याह लाये तो उसकी ईर्ष्या के कारण वह नहीं सो सकता, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ २० ॥

देवता:—अवनति के इस दसवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के ग्यारहवें कारण को बतावें ॥ २१ ॥

बुद्धः—लालची या सम्पत्ति को बर्बाद करनेवाली किसी स्त्री या पुरुष को मुख्य स्थान पर नियुक्त किया जाय तो वह उसकी अवनति का कारण होता है ॥२२॥

देवता:—अवनति के इस ग्यारहवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के बारहवें कारण को बतावें ॥ २३ ॥

बुद्धः—क्षत्रिय कुल में उत्पन्न अल्प सम्पत्तिवाला और महा लालची पुरुष राज्य की इच्छा करे तो वह उसकी अवनति का कारण होता है ॥ २४ ॥

दर्शन से युक्त, पण्डित, आर्य-पुरुष अवनति के इन कारणों को अच्छी तरह जान सुखपूर्वक संसार में रहता है ॥ २५ ॥

पराभवसुत्त समाप्त।

७—वसल-सुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थियं[1] पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसने अग्गि पज्जलितो होति, आहुति पग्गहिता। अथ खो भगवा सावत्थियं सपदानं पिण्डाय चरमानो येन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसंकमि। अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं दूरतो'व आगच्छन्तं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"तत्रेव मुण्डक, तत्रेव समणक, तत्रेव वसलक, तिट्ठाही"ति। एवं वुत्ते भगवा अग्गिकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदवोच—"जानासि पन त्वं, ब्राह्मण, वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे"ति? "न ख्वाहं, भो गोतम, जानामि वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे। साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु यथा'हं जानेय्यं वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे"ति। "तेन हि, ब्राह्मण सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामी"ति। "एवं भो"ति खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

"कोधनो उपनाही च, पापमक्खी च यो नरो।
विपन्नदिट्ठि मायावी, तं जञ्ञा वसलो इति॥ १॥
एकजं वा द्विजं[3] वा'पि यो'ध पाणं[4] विहिंसति[5]।
यस्स पाणे दया नत्थि, तं जञ्ञा वसलो इति॥ २॥
यो हन्ति परिरुन्धति[6] गामानि निगमानि च।
निग्गाहको समञ्ञातो तं जञ्ञा वसलो इति॥ ३॥
गामे वा यदि वा' रञ्ञे यं परेसं ममायितं।
थेय्या अदिन्नं आदियति तं जञ्ञा वसलो इति॥ ४॥
यो हवे इणमादाय चुज्जमानो पलायति।
न हि ते इणमत्थीति तं जञ्ञा वसलो इति॥ ५॥
यो वे किञ्चिक्खकम्यता पन्थस्मिं[8] वजन्तं जनं।
हन्त्वा किञ्चिक्खमादेति तं जञ्ञा वसलो इति॥ ६॥
यो अत्तहेतु परहेतु धनहेतु च यो नरो।
सक्खिपुट्ठो मुसा ब्रूति तं जञ्ञा वसलो इति॥ ७॥

---

१. सावत्थि—[illegible] सावत्थि—स्या०। २ [illegible]—स्या [illegible]। ३ द्विज—रो०। ४ पाणानि—सी। ५. [illegible]—सी। ६ [illegible]—स्या। [illegible]—क। ७. अदिन्नमादेति—म स्या। ८. वजन्तं—स्या०।

७—वसल सुत्त

ऐसा मैंने सुना —

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन वे पूर्वाह्न समय पहन पात्र चीवर ले भिक्षा के लिए श्रावस्ती में निकले। उस समय अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण के घर में आग जल रही थी और हवन सामग्री तैयार थी। भगवान् घर घर भिक्षा माँगते जहाँ अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण का घर था वहाँ पहुँचे। अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को दूर से ही आते देखा, देखकर भगवान् से यह कहा—"मुण्डक ! वहीं ठहर, श्रमण ! वहीं ठहर, वृषल ! वहीं ठहर।"

ऐसा बोलने पर भगवान् ने अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण से यह कहा—"ब्राह्मण ! वृषल या वृषलकारक धर्मों को तुम जानते हो ?"

ब्राह्मण —"गौतम ! मैं वृषल या वृषलकारक धर्मों को नहीं जानता। अच्छा हो कि आप गौतम मुझे ऐसा धर्मोपदेश दें जिससे कि मैं वृषल और वृषलकारक धर्मों को जान सकूँ।"

बुद्ध :—"तो ब्राह्मण ! सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो मैं कहूँगा।" "जी हाँ" कहकर ब्राह्मण ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् बोले :—

"जो नर क्रोधी तथा वैरी है, पापी तथा ईर्ष्यालु है, मिथ्यामतधारी तथा मायावी है, उसे वृषल जानो ॥ १ ॥

"जो योनिज या अण्डज प्राणियों की हिंसा करता है, जिसे प्राणिमात्र के प्रति दया नहीं, उसे वृषल जानो ॥ २ ॥

"जो गाँवों और क़स्बों को घेरता तथा नष्ट करता है, जो अत्याचारी के रूप में प्रसिद्ध है, उसे वृषल जानो ॥ ३ ॥

"जो गाँव में या आरण्य में दूसरों की अपनाई हुई सम्पत्ति चोरी से ले लेता है, उसे वृषल जानो ॥ ४ ॥

"जो ऋण लेकर माँगने पर 'मैं तुम्हारे प्रति ऋणी नहीं हूँ' कहकर भागता है, उसे वृषल जानो ॥ ५ ॥

"जो किसी चीज़ की इच्छा से मार्ग में चलते हुए नर को मारकर कुछ ले लेता है, उसे वृषल जानो ॥ ६ ॥

"जो आत्मार्थ या परार्थ धन की इच्छा से झूठी गवाही देता है, उसे वृषल जानो ॥ ७ ॥

यो आसीनं सखानं[1] वा, घरेसु पटिपिस्सति ।
सहसा[2] संपियेन वा, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ ८ ॥
यो मातरं वा पितरं वा, जिण्णकं गतयोब्बनं ।
पहु सन्तो[3] न भरति, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ ९ ॥
यो मातरं वा पितरं वा, भातरं भगिनिं ससुं ।
हन्ति रोसेति वाचाय, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १० ॥
यो अत्थं पुच्छितो सन्तो, अनत्थमनुसासति ।
पटिच्छन्नेन मन्तेति, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ ११ ॥
यो कत्वा पापकं कम्मं मा मं जञ्ञा'ति इच्छति ।
यो पटिच्छन्नकम्मन्तो, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १२ ॥
यो वे परकुलं गन्त्वा, भुत्वान[4] सुचिभोजनं ।
आगतं न पटिपूजेति[5], तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १३ ॥
यो ब्राह्मणं वा समणं वा, अञ्ञं वा'पि वनिब्बकं ।
मुसावादेन वञ्चेति तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १४ ॥
यो ब्राह्मणं वा समणं वा, भत्तकाले उपट्ठिते ।
रोसेति वाचा न च देति, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १५ ॥
असतं यो'ध पब्रूति, मोहेन पलिगुण्ठितो ।
किञ्चिक्खं निजिगिसानो[6], तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १६ ॥
यो चत्तानं समुक्कंसे, परं चमवजानति[7] ।
निहीनो सेन मानेन, तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १७ ॥
रोसको कदरियो च, पापिच्छो मच्छरी सठो ।
अहिरिको अनोत्तप्पी[8], तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १८ ॥
यो बुद्धं परिभासति, अथवा तस्स सावकं ।
परिब्बाजं[9] गहट्ठं वा तं जञ्ञा वसलो इति ॥ १९ ॥
यो वे अनरहा[10] सन्तो, अरहं पटिजानति[11] ।
चोरो सब्रह्मके लोके, एस खो वसलाधमो ।
एते खो वसला वुत्ता मया वो ये[12] पकासिता ॥ २ ॥
न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो ॥ २१ ॥
तदमिना'पि जानाथ यथा मे'दं निदस्सनं ।
चण्डालपुत्तो सोपाको मातङ्गो इति विस्सुतो ॥ २२ ॥

१ सखीनं—म । २ साहसा—म । ३ पहुसन्तो—स्या । ४. भुत्वा च—स्या, म । ५ नप्पटिपूजेति—म स्या । ६ निजिगीसानो—म । ७. मवजानाति—म । ८. अप्पोत्तप्पी—सी । ९. परिब्बाजकं—स्या । १०. अनरहा—म० स्या । ११ पटिजानाति—म । १२ वो ते—म स्या ।

"जो जबर्दस्ती या प्रेम-भाव से बन्धुओं या मित्रों की दाराओं के साथ रहता है, उसे वृषल जानो ॥ ८ ॥

"जो समर्थ होने पर भी जीर्ण और विगत-यौवन माता-पिता का पोषण नहीं करता, उसे वृषल जानो ॥ ९ ॥

"जो माता-पिता, भाई, बहन या सास को वचन से ताडता या सताता है, उसे वृषल जानो ॥ १० ॥

"जो अर्थकारी बात पूछने पर अनर्थकारी बात बताता है, और बात को घुमा-फिराकर बोलता है, उसे वृषल जानो ॥ ११ ॥

"जो पाप कर्म करके यह इच्छा करता है कि दूसरे मुझे न जानें, जो प्रतिच्छन्न कर्मवाला है, उसे वृषल जानो ॥ १२ ॥

"जो दूसरे के घर जाकर स्वादिष्ट भोजन करके उसके आने पर खातिरदारी नहीं करता, उसे वृषल जानो ॥ १३ ॥

"जो ब्राह्मण, श्रमण अथवा अन्य याचक को असत्य से धोखा देता है, उसे वृषल जानो ॥ १४ ॥

"जो भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण या श्रमण को धमकाता है और कुछ नहीं देता, उसे वृपल जानो ॥ १५ ॥

"जो मोह में उलझ कर, किसी चीज की इच्छा करके असत्य बोलता है, उसे वृषल जानो ॥ १६ ॥

"जो अपनी बड़ाई करता है, दूसरे की अवहेलना करता है और उस कर्म से निहीन है, उसे वृषल जानो ॥ १७ ॥

"जो रुष्ट और पेटू है, बुरी इच्छावाला है, कजूस और शठ है, और जो बुरे कर्म करने मे लज्जा-भय नहीं मानता, उसे वृषल जानो ॥ १८ ॥

"जो बुद्ध, उनके श्रावक, परिव्राजक अथवा गृहस्थ की निन्दा करता है, उसे वृषल जानो ॥ १९ ॥

"जो अर्हन्त न होते हुए अपने को अर्हन्त जनावे तो वह ससार में सबसे बड़ा चोर है। यह वृषलाधम है। मैंने तुम्हे ये वृषल बताये हैं ॥ २० ॥

"कोई जाति से वृपल नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण। कर्म से वृपल होता है और कर्म से ब्राह्मण ॥ २१ ॥

सोपाक नामक चण्डाल पुत्र मातग नाम से प्रसिद्ध हुआ। मेरे इस निदर्शन से भी उस बात को जान लो ॥ २२ ॥

सो यसं परमं पत्तो[1], मावङ्गो यं सुदुल्लभं ।
आगञ्छुं तस्सुपट्ठानं, खत्तिया ब्राह्मणा बहू ॥ २३ ॥
सो देवयानमारुय्ह, विरजं सो महापथं ।
कामरागं विराजेत्वा, ब्रह्मलोकूपगो अहु ।
न नं जाति निवारेसि, ब्रह्मलोकूपपत्तिया ॥ २४ ॥
अज्झायककुले जाता ब्राह्मणा मन्तबन्धुनो[2] ।
ते च पापेसु कम्मेसु, अभिण्हमुपदिस्सरे ॥ २५ ॥
दिट्ठेवधम्मे गारय्हा संपराये च दुग्गतिं ।
न ते[3] जाति निवारेति, दुग्गत्या[4] गरहाय वा ॥ २६ ॥
न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो ति ॥ २७ ॥

एवं वुत्ते अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं भो गोतम पे० धम्मं च भिक्खुसंघं च । उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं"ति ।

वसलसुत्तं निट्ठितं ।

८—मेत्त-सुत्तं

करणीयमत्थकुसलेन यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च ।
सक्को उजू च सुजू[5] च, सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥ १ ॥
सन्तुस्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति ।
सन्तिन्द्रियो च निपको च, अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥ २ ॥
न च खुद्दं समाचरे किञ्चि येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं ।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु सब्बे सत्ता[6] भवन्तु सुखितत्ता ॥ ३ ॥
ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा वा अनवसेसा ।
दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमा रस्सका अणुकथूला ॥ ४ ॥
दिट्ठा वा[7] येव अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे ।
भूता वा संभवेसी वा सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ५ ॥

१ सी यसप्परमप्पत्तो—स्या० । २ मन्तबन्धवा—म स्या । ३ न ने—म । ४ दुग्गत्या—म० । ५ कम्मना—सी स्या रो । ६ सुजु—म स्या । ७ सम्मत्ता—म । ८ व—म ।

"जब वह मातंग दुर्लभ परम यश को प्राप्त हुआ तो बहुत से क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उसकी सेवा मे प्रस्तुत हुए ॥ २३ ॥

"वह कामराग का दमनकर, शुद्ध महापथ में, दिव्ययान पर सवार हो ब्रह्मलोक को गया। जाति ने ब्रह्मलोक में जन्म लेने से उसे नहीं रोका ॥ २४ ॥

"वैदिक कुल मे उत्पन्न मन्त्र बन्धु जो ब्राह्मण हैं, वे भी प्राय पाप कर्म करते देखे जाते है ॥ २५ ॥

"वे इस लोक में गर्हित होते हैं। दूसरे जन्म मे उनकी दुर्गति होती है। जाति न तो उन्हे दुर्गति से बचाती है और न निन्दा से ॥ २६ ॥

"कोई जाति से वृषल नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण। कर्म से वृषल होता है और कर्म से ब्राह्मण" ॥ २७ ॥

इस प्रकार कहने पर अग्निकभारद्वाज ब्राह्मणने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है! गौतम! आश्चर्य है! गौतम! जिस प्रकार कोई उलटे को पलट दे, ढके को खोल दे, भूले भटके को मार्ग दिखावे या अन्धकार मे प्रकाश करे जिससे कि आँखवाले रूप देख सके, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया। इसलिए मै आप गौतम, धर्म तथा सघ की शरण जाता हूँ। आप गौतम मुझे आज से जीवन पर्यन्त शरणागत उपासक ग्रहण करें।

वसलसुत्त समाप्त।

८—मेत्त-सुत्त

[इस सूत्र में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम करने का उपदेश है।]

शान्तपद की प्राप्ति चाहनेवाले, कल्याण-साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह योग्य, ऋजु और अत्यन्त ऋजु बने। उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो ॥ १ ॥

वह सन्तोषी हो, सहज ही पोष्य हो, अल्पकृत्यवाला हो और सादा जीवन बितानेवाला हो। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों। वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो ॥ २ ॥

ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करे जिसके लिए दूसरे विज्ञ लोग उसे दोष दें। सब प्राणी सुखी हों। सबका कल्याण हो। सभी अच्छी तरह रहें ॥ ३ ॥

जगम या स्थावर, दीर्घ या महान्, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या उत्पत्स्यमान जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुखपूर्वक रहें ॥ ४–५ ॥

न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचि न कञ्चि[1] ।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥ ६ ॥
माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे ।
एवंपि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं ॥ ७ ॥
मेत्तं च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं ।
उद्धं अधो च तिरियं च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं ॥ ८ ॥
तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो[2] ।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥ ९ ॥
दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा, दस्सनेन सम्पन्नो ।
कामेसु विनेय्य[3] गेधं, न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति ॥ १० ॥

मेत्तसुत्तं निट्ठितं ।

९—हेमवत-सुत्तं

अज्ज पण्णरसो उपोसथो (इति सातागिरो यक्खो), दिब्बा[4] रत्ति उपट्ठिता ।
अनोमनामं सत्थारं हन्द पस्साम गोतमं ॥ १ ॥
कच्चि मनो सुपणिहितो (इति हेमवतो यक्खो), सब्बभूतेसु तादिनो ।
कच्चि इट्ठे अनिट्ठे च, सङ्कप्पस्स वसीकता ॥ २ ॥
मनो चस्स सुपणिहितो (इति सातागिरो यक्खो) सब्बभूतेसु तादिनो ।
अथो इट्ठे अनिट्ठे च संकप्पस्स वसीकता ॥ ३ ॥
कच्चि अदिन्नं नादियति (इति हेमवतो यक्खो), कच्चि पाणेसु सञ्ञतो ।
कच्चि आरा पमादम्हा, कच्चि झानं न रिञ्चति ॥ ४ ॥
न सो अदिन्नं आदियति (इति सातागिरो यक्खो), अथो पाणेसु सञ्ञतो ।
अथो आरा पमादम्हा बुद्धो झानं न रिञ्चति ॥ ५ ॥
कच्चि मुसा न भणति (इति हेमवतो यक्खो) कच्चि न खीणब्यप्पथो ।
कच्चि वेभूतियं नाह, कच्चि सम्फं न भासति ॥ ६ ॥
मुसा च सो न भणति (इति सातागिरो यक्खो), अथो न खीणब्यप्पथो
अथो वेभूतियं नाह मन्ता अत्थं सो भासति ॥ ७ ॥

---

१ न कञ्चि—म ; नं किञ्चि—स्या । २. विगतमिद्धो—म । ३ विनय—म० । ४. दिब्बा—म । [illegible]

एक दूसरे की वंचना न करे। कभी किसी का अपमान न करे। वैमनस्य था विरोध से एक दूसरे के दु ख की इच्छा न करे ॥ ६ ॥

माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर, अपने एकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेमभाव बढावे ॥ ७ ॥

विना वाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे ससार के प्रति असीम प्रेम बढावे ॥ ८ ॥

खडे रहते, चलते, वैठते या सोते, जब तक जाग्रत है तब तक, इस प्रकार की स्मृति बनाये रखनी चाहिए। यही ब्रह्मविहार कहा गया है ॥ ९ ॥

ऐसा नर किसी मिथ्यादृष्टि में न पड, शीलवान् हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो, काम तृष्णा का नाशकर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ॥ १० ॥

मेत्तसुत्त समाप्त।

९—हेमवत सुत्त

[दो यक्षों के बीच भगवान् के विषय में बातचीत चलती हैं। वे भगवान् के पास जाते हैं और उपदेश सुनने के बाद उनके अनुयायी बन जाते हैं।]

सातागिर यक्ष :—आज पंचदशी उपोसथ है। दिव्य रात्रि उपस्थित है। श्रेष्ठ नामवाले शास्ता गौतम को हम देखें ॥ १ ॥

हेमवत यक्ष :—क्या उनका चित्त समाधिस्थ है ? क्या सब प्राणियों के प्रति वे समान हैं ? क्या इष्ट और अनिष्ट विषयक उनके सकल्प वश में है ? ॥ २ ॥

सातागिर यक्ष :—उनका चित्त समाधिस्थ है। सभी प्राणियों के प्रति वे एक समान हैं। इष्ट और अनिष्ट विषयक उनके सकल्प वश मे हैं ॥ ३ ॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे चोरी नहीं करते ? क्या वे प्राणियों के प्रति सयमी हैं ? क्या वे प्रमाद से दूर हैं ? क्या उनका ध्यान रिक्त नहीं होता ? ॥ ४ ॥

सातागिर यक्ष :—वे चोरी नहीं करते। प्राणियों के प्रति वे सयमी हैं। वे प्रमाद से दूर हैं। बुद्ध ध्यान से रिक्त नहीं रहते ॥ ५ ॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे झूठ नहीं बोलते ? क्या वे कटु वचन का प्रयोग नहीं करते ? क्या वे विपत्तिकारक बातें नहीं करते ? क्या वे व्यर्थ की बात नहीं करते ? ॥ ६ ॥

सातागिर यक्ष :—वे झूठ भी नहीं बोलते। न वे कटु वचनों का प्रयोग करते हैं। वे विपत्तिकारक बातें भी नहीं करते। वे सार्थक तथा कल्याणकारी बातें ही करते हैं ॥ ७ ॥

कच्चि न रज्जति कामेसु (इति हेमवतो यक्खो), कच्चि चित्तं अनाविलं ।
कच्चि मोहं अतिक्कन्तो, कच्चि धम्मेसु चक्खुमा ॥ ८ ॥
न सो रज्जति कामेसु (इति सातागिरो यक्खो), अथो चित्तं अनाविलं ।
सब्बं मोहं[१] अतिक्कन्तो, बुद्धो धम्मेसु चक्खुमा ॥ ९ ॥
कच्चि विज्जाय संपन्नो (इति हेमवतो यक्खो), कच्चि संसुद्धचारणो ।
कच्चि'स्स आसवा खीणा, कच्चि नत्थि पुनब्भवो ॥ १० ॥
विज्जाय चेव संपन्नो (इति सातागिरो यक्खो), अथो संसुद्धचारणो ।
सब्बस्स आसवा खीणा, नत्थि तस्स पुनब्भवो ॥ ११ ॥
सम्पन्नं मुनिनो चित्तं कम्मना[२] ब्यप्पथेन च ।
विज्जाचरणसम्पन्नं, हन्द पस्साम गोतमं ॥ १२ ॥
एणिजंघ किसं धीरं[३], अप्पाहारं अलोलुपं ।
मुनिं वनस्मिं झायन्तं, एहि पस्साम गोतमं ॥ १३ ॥
सीहं[४]'वेकचरं नागं, कामेसु अनपेक्खिनं ।
उपसंकम्म पुच्छाम, मच्चुपासा पमोचनं ॥ १४ ॥
अक्खातारं पवत्तारं, सब्बधम्मानपारगुं ।
बुद्धं वेरभयातीतं, मयं पुच्छाम गोतमं ॥ १५ ॥
किस्मिं लोको समुप्पन्नो (इति हेमवतो यक्खो), किस्मिं कुब्बति सन्थवं[४] ।
किस्स लोको उपादाय, किस्मिं लोको विहञ्ञति ॥ १६ ॥
छसु लोको समुप्पन्नो (हेमवताति भगवा), छसु कुब्बति सन्थवं ।
छन्नमेव उपादाय, छसु लोको विहञ्ञति ॥ १७ ॥
कतमं तं उपादानं (इति हेमवतो), यत्थ लोको विहञ्ञति ।
निय्यानं पुच्छितो ब्रूहि कथं दुक्खा पमुच्चति ॥ १८ ॥
पंच कामगुणा लोके (इति भगवा), मनो छट्ठा[५] पवेदिता ।
एत्थ छन्दं विराजेत्वा एवं दुक्खा पमुच्चति[६] ॥ १९ ॥
एतं लोकस्स निय्यानं अक्खातं वो यथातथं ।
एतं वो अहमक्खामि एवं दुक्खा पमुच्चति ॥ २० ॥
को सूध तरति ओघं (इति हेमवतो) को'ध तरति अण्णवं ।
अप्पतिट्ठे अनालम्बे, को गम्भीरे न सीदति ॥ २१ ॥

---

१ सम्भीरं—म । २ समुप्पन्ना—म । ३ धीरं—म०, सी । ४ सन्थवं—क ।
५ छट्ठा—म स्या । ६ पमुच्चति—स्या ।

हेमवत यक्ष :—क्या वे काम मे अनासक्त है ? क्या उनका चित्त शान्त है ? क्या वे मोह से परे हैं ? क्या धर्मों के विषय में वे चक्षुमान् हैं ? ॥८॥

सातागिर यक्ष '—वे काम में आसक्त नही। उनका मन शान्त है। वे सब मोह से परे हैं। बुद्ध धर्मों के विषय में चक्षुमान् हैं ॥९॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे विद्या से युक्त हैं ? क्या उनका आचरण शुद्ध है ? क्या उनकी वासनाये क्षीण हो गई हैं ? क्या उनके लिए पुनर्भव नहीं है ? ॥१०॥

सातागिर यक्ष :—वे विद्या से ही युक्त है। उनका आचरण परिशुद्ध है। उनकी सब वासनायें क्षीण हैं। उनके लिए पुनर्भव नहीं है ॥११॥

हेमवत यक्ष —मुनि का चित्त कर्म और वचन से सुसम्पन्न है। विद्या और आचरण से सुसम्पन्न **गौतम** का हम दर्शन करें ॥१२॥

मृग की-सी कृश जघावाले, धीर, अल्पाहारी, लोलुपता से रहित, जगल में ध्यान करनेवाले मुनि का हम चलकर दर्शन करें ॥१३॥

सिंह की तरह एकचारी, काम की अपेक्षा न करनेवाले बुद्ध के पास जाकर मृत्यु-पाश से मोचन के विषय में पूछें ॥१४॥

दोनों यक्ष —धर्म को बतानेवाले, उसका प्रवर्तन करनेवाले, सब धर्मों में पारंगत, वैर और भय से रहित **गौतम** बुद्ध से हम पूछते है ॥१५॥

हेमवत यक्ष .—लोक किससे उत्पन्न हुआ है ? इसका दृढ सम्बन्ध किससे है ? किस उपादान के कारण लोक पीड़ित रहता है ? ॥१६॥

बुद्ध'—छ. कारणों से लोक उत्पन्न हुआ है। छ. कारणों से इसका दृढ सम्बन्ध है। छ उपादानों के कारण ही लोक पीडित रहता है ॥१७॥

हेमवत यक्ष .—वह उपादान कौन सा है जिसके कारण लोक पीडित रहता है ? उससे छुटकारा क्या है ? दु ख से मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१८॥

बुद्ध:—ससार के पाँच प्रकार के काम गुणों और मन का छन्द छोडने से दु ख से मुक्ति हो सकती है ॥१९॥

यही लोक की मुक्ति है। मैंने तुम्हे इसे ज्यों का त्यों बताया है। मैं तुम्हें यही बताता हूँ कि दु ख से मुक्ति इस प्रकार ही हो सकती है ॥२०॥

हेमवत यक्ष —यहाँ ससार रूपी बाढ को कौन पार करता है ? भवसागर को कौन पार करता है ? बिना प्रतीष्ठा और अवलम्बन के गम्भीर सागर में कौन नहीं डूबता ? ॥२१॥

सब्बदा सीलसम्पन्नो (इति भगवा), पञ्ञवा सुसमाहितो ।
अज्झत्तचिन्ती[1] सतिमा, ओघं तरति दुत्तरं ॥२२॥

विरतो कामसञ्ञाय, सब्बसंयोजनातिगो ।
नन्दीभवपरिक्खीणो, सो गंभीरे न सीदति ॥२३॥

गम्भीरपञ्ञं निपुणत्थदस्सिं (इति हेमवतो), अकिञ्चनं कामभवे असत्तं ।
तं पस्सथ सब्बधि-विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे कममानं महेसिं ॥२४॥

अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं, पञ्ञाददं कामालये असत्तं ।
तं पस्सथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे कममानं महेसिं ॥२५॥

सुदिट्ठं वत नो अज्ज, सुप्पभातं सुहुट्ठितं ।
यं अद्दसाम सम्बुद्धं, ओघतिण्णमनासवं ॥२६॥

इमे दससता यक्खा, इद्धिमन्तो यसस्सिनो ।
सब्बे तं सरणं यन्ति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो ॥२७॥

ते मयं विचरिस्साम, गामा गामं नगा नगं ।
नमस्समाना सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतं ॥२८॥

हेमवतसुत्तं निट्ठितं ।

१०—आळवक-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा आळवियं विहरति आळवकस्स यक्खस्स भवने । अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच- 'निक्खम समणा' ति । "साधावुसो" ति भगवा निक्खमि । "पविस समणा"ति । "साधावुसो"ति भगवा पाविसि । दुतियं'पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच- "निक्खम समणा"ति । "साधावुसो"ति भगवा निक्खमि । "पविस समणा"ति । "साधावुसो"ति भगवा पाविसि । ततियं'पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच- निक्खम समणा"ति । "साधावुसो"ति भगवा निक्खमि । "पविस समणा"ति । "साधावुसो"ति भगवा पाविसि । चतुत्थं'पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच-

---

१ अज्झत्तसञ्ञी-स्या० क० ।

बुद्ध :—सदा शील से युक्त, ज्ञानी, सुसमाहित, अध्यात्म-चिन्तन में रत स्मृतिमान् दुस्तर बाढ को पार करता है ॥२२॥

जो काम चेतनाओं से विरक्त है, जो सब बन्धनों से परे है और जिसमें भव तृष्णा क्षीण हो गई है, वह संसाररूपी गम्भीर सागर में नहीं डूबता ॥२३॥

हेमवत यक्ष :—गम्भीर प्रज्ञा से युक्त, निपुणार्थदर्शी, अकिंचन, काम-भव में अनासक्त, सब वासनाओं से मुक्त, दिव्य-पथ पर चलनेवाले इस महर्षि को देखो ॥२४॥

श्रेष्ठ नामवाले, परमार्थ दर्शन में निपुण, प्रज्ञा देनेवाले, काम में अनासक्त, सर्वज्ञ, पण्डित, आर्यपथ पर चलनेवाले इस महर्षि को देखो ॥२५॥

आज हमने एक मांगलिक दृश्य देखा है, और आज सुप्रभात का उदय हुआ है जिससे कि संसार सागर पार किए और वासनारहित सम्यक् सम्बुद्ध का हमने दर्शन पाया ॥२६॥

ये ऋद्धिमान् और यशस्वी एक हजार यक्ष सब आपकी शरण जाते हैं। आप हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं ॥२७॥

हम गाँव गाँव और पहाड़-पहाड़ सम्बुद्ध तथा उनके सुदेशित धर्म को नमस्कार करते हुए विचरण करेंगे ॥२८॥

हेमवतसुत्त समाप्त।

१०—आळवक-सुत्त

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् आळवी में **आळवक** यक्ष के भवन में विहार करते थे। उस समय एक दिन **आळवक** यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् से बोला, "श्रमण! निकल जाओ।" "अच्छा आयुष्मान्" कह भगवान् निकल गये। "भीतर आओ श्रमण।" "अच्छा आयुष्मान्" कह भगवान् भीतर आये।

दूसरी बार भी **आळवक** यक्ष ने भगवान् से ऐसा कहा, "श्रमण! निकल जाओ।" "अच्छा आयुष्मान्" कह भगवान् निकल गये। "श्रमण! भीतर आओ।" "अच्छा आयुष्मान्" कह भगवान् भीतर आये।

तीसरी बार भी **आळवक** यक्ष ने भगवान् से कहा, "श्रमण! निकल जाओ।" "अच्छा आयुष्मान्" कह भगवान् निकल गये। "श्रमण! भीतर आओ।" "अच्छा आयुष्मान्" कह भगवान् भीतर आये।

चौथी बार भी **आळवक** यक्ष ने भगवान् से ऐसा कहा, "श्रमण!

"निक्खम समणा"ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खमिस्सामि, यं ते करणीयं तं करोही"ति। "पञ्हं तं, समण, पुच्छिस्सामि, सचे मे न ब्याकरिस्ससि चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगंगायं खिपिस्सामी"ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगंगाय खिपेय्य अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकंखसी"ति। अथ खो आळवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"किं सूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किं सु सुचिण्णो सुखमावहाति।
किं सु हवे सादुतरं रसानं, कथं जीविं जीवितमाहु सेट्ठं" ॥१॥

"सद्धीध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं" ॥२॥

"कथं सु तरती ओघं, कथं सु तरति अण्णवं।
कथं सु दुक्खं अच्चेति, कथं सु परिसुज्झति" ॥३॥

"सद्धाय तरती ओघं, अप्पमादेन अण्णवं।
विरियेन[1] दुक्खं अच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झति" ॥४॥

"कथं सु लभते पञ्ञं, कथं सु विन्दते धनं।
कथं सु कित्तिं पप्पोति कथं मित्तानि गन्थति।
अस्मा लोका परं लोकं कथं पेच्च न सोचति" ॥५॥

"सद्दहानो अरहतं, धम्मं निब्बाणपत्तिया।
सुस्सूसा लभते पञ्ञं, अप्पमत्तो विचक्खणो ॥६॥

"पतिरूपकारी धुरवा उट्ठाता विन्दते धनं।
सच्चेन कित्तिं पप्पोति, ददं मित्तानि गन्थति ॥७॥

"यस्सेते चतुरो धम्मा सद्धस्स घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिती चागो, स वे पेच्च न सोचति।
अस्मा[2] लोका परं लोकं, स वे पेच्च न सोचति" ॥८॥

---

१ वीरियेन—म । २. दुल्लभं—म । ३ ४ कथं गाथे महुब्ब पोत्थकेसु न दिस्सति ।

निकल जाओ ।"

"आयुष्मान् ! मैं नहीं निकलूँगा, तुम्हें जो कुछ करना हो, सो करो ।"
"श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा । यदि तुम उसका उत्तर न दोगे तो तुम्हारा चित्त विक्षिप्त कर दूँगा या हृदय को फाड़ दूँगा या पैरों को पकड़ कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा ।"

"आयुष्मान् ! देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारी सत्व-प्रजा में मैं किसी ऐसे प्राणी को नहीं देखता जो कि मेरा चित्त विक्षिप्त कर सके या हृदय को फाड़ सके या पैरों को पकड़ कर मुझे गङ्गा के पार फेंक सके, फिर भी आयुष्मान् ! जो चाहते हो सो पूछो ।" तब आलवक यक्ष ने गाथा में भगवान् से कहा :—

इस संसार में मनुष्य का श्रेष्ठ धन कौन सा है ? किसके अभ्यास से सुख पहुँचता है ? सब रसों में कौन सा रस उत्तम है ? किस प्रकार का जीवन श्रेष्ठ जीवन कहा गया है ? ॥ १ ॥

बुद्ध :—इस संसार में मनुष्य का श्रेष्ठ धन श्रद्धा है । धर्म के अभ्यास से सुख पहुँचता है । सब रसों में सत्य का रस ही उत्तम है । प्रज्ञामय जीवन ही श्रेष्ठ जीवन कहा गया है ॥ २ ॥

आलवक यक्ष :—मनुष्य पुनर्जन्म रूपी बाढ़ को किस प्रकार पार करता है ? संसार रूपी सागर को किस प्रकार तरता है ? किस प्रकार दुःख के परे हो जाता है ? किस प्रकार परिशुद्ध होता है ? ॥ ३ ॥

बुद्ध :—मनुष्य श्रद्धा से बाढ़ को पार करता है और अप्रमाद से सागर को । वह पराक्रम से दुःख के परे हो जाता है और प्रज्ञा से परिशुद्ध होता है ॥ ४ ॥

आलवक यक्ष :—मनुष्य किस प्रकार प्रज्ञा को प्राप्त करता है ? किस प्रकार धन को प्राप्त करता है ? किस प्रकार मित्रों को प्राप्त करता है ? इस लोक से दूसरे लोक में जाकर किस प्रकार पछतावा नहीं करता ? ॥ ५ ॥

बुद्ध :—निर्वाण की ओर ले जानेवाले अर्हतों के धर्म में श्रद्धा रखनेवाला, विनीत और अप्रमत्त विचक्षण पुरुष प्रज्ञा को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

उचित काम को करनेवाला, दृढ़ और प्रयत्नशील मनुष्य धन को प्राप्त करता है । वह सत्य से कीर्ति को प्राप्त करता है और दान देकर मित्रों को अपनाता है ॥ ७ ॥

जिस श्रद्धालु गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग—ये चार धर्म हैं, वह परलोक में पछतावा नहीं करता ॥ ८ ॥

"इङ्घ अञ्ञे'पि पुच्छस्सु, पुथु समणब्राह्मणे।
यदि सच्चा दमा चागा, खन्त्या भिय्यो'ध[1] विज्जति" ॥९॥
"कथं नु दानि पुच्छेय्यं पुथु समणब्राह्मणे।
सो'हं[2] अज्ज पजानामि, यो अत्थो संपरायिको" ॥१०॥
"अत्थाय वत मे बुद्धो, वासायाळविमागमा[3]।
सो'हं[4] अज्ज पजानामि, यत्थ दिन्नं महप्फलं ॥११॥
"सो अहं विचरिस्सामि, गामा गामं पुरा पुरं।
नमस्समानो संबुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतन्ति" ॥१२॥

एवं वुत्ते आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच "अभिक्कन्तं भो गोतम पे० भिक्खुसंघं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतन्ति"।

आळवकसुत्तं निट्ठितं।

११—विजय सुत्तं

चरं वा यदि वा तिट्ठं, निसिन्नो उद वा सयं।
सम्मिञ्जेति[5] पसारेति, एसा कायस्स इञ्जना ॥१॥
अट्ठिनहारुसंयुत्तो[6], तचमंसावलेपनो।
छविया कायो पटिच्छन्नो, यथाभूतं न दिस्सति ॥२॥
अन्तपूरो उदरपूरो, यकपेळस्स वत्थिनो।
हदयस्स पप्फासस्स, वक्कस्स पिहकस्स च ॥३॥
सिंघाणिकाय खेळस्स, सेदस्स च मेदस्स च।
लोहितस्स लसिकाय पित्तस्स च वसाय च ॥४॥
अथ'स्स नवहि सोतेहि, असुचि सवति सब्बदा।
अक्खिम्हा अक्खिगूथको कण्णम्हा कण्णगूथको ॥५॥
सिंघाणिका च नासातो[7], मुखेन वमतेकदा।
पित्तं सेम्हं च वमति, कायम्हा सेदजल्लिका ॥६॥
अथस्स सुसिरं सीसं मत्थलुङ्गस्स पूरितं।
सुभतो नं मञ्ञति बालो अविज्जाय पुरक्खतो ॥७॥
यदा च सो मतो सेति उद्धुमातो विनीलको।
अपविद्धो सुसानस्मिं अनपेक्खा होन्ति ञातयो ॥८॥

---

१ भिय्यो'ध—सी। २ सो'हं—म०। ३ वासायाळविमागमि—म। ४ सो'हं—म०।
५ सम्मिञ्जेति—म। ६ अट्ठिन्हारुहि संयुत्तो—स्या क। ७ नासतो—म।

भिन्न-भिन्न और श्रमण ब्राह्मणों से पूछो कि सत्य, इन्द्रिय-दमन, त्याग और क्षान्ति से बढ़कर कुछ और भी है कि नहीं ॥ ९ ॥

आलवक यक्ष :—अब मैं दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों से क्या पूछूँ ? पारलौकिक अर्थ की बात को मैंने जान लिया ॥ १० ॥

मेरे कल्याणार्थ आज बुद्ध मेरे निवास आलवी में आ गये हैं। आज मैं जान गया कि किसको दिये गये दान का फल महान् होता है ॥ ११ ॥

अब मैं सम्बुद्ध और इनके सुदेशित धर्म को नमस्कार करता हुआ ग्राम-ग्राम और नगर-नगर विचरण करूँगा ॥ १२ ॥

आलवकसुत्त समाप्त।

११—विजय-सुत्त

[यह उपदेश शरीर की अनित्यता के विषय में है।]

चलते या ठहरते, बैठते या सोते जो (शरीर को) सिकोड़ता या फैलाता है, यह सब शरीर की गतियाँ हैं ॥ १ ॥

हड्डी और नस से सयुक्त, त्वचा और मास का लेप चढ़ा तथा चाम से ढँका यह शरीर जैसा है वैसा दिखाई नहीं देता ॥ २ ॥

इस शरीर के भीतर है—आँत, उदर, यकृत, वस्ति, हृदय, फुस्फुस, वृक्क, तिल्ली, नासा-मल, लार, पसीना, मेद, लोहू, लसिका, पित्त और चर्बी ॥ ३-४ ॥

इसके नौ द्वारों से हमेशा गन्दगी निकलती रहती है, आँख से आँख की गन्दगी निकलती है और कान से कान की गन्दगी ॥ ५ ॥

नाक से नासिका-मल, मुख से पित्त और कफ, शरीर से पसीना और मल निकलते हैं ॥ ६ ॥

इसके सर की खोपड़ी गुदा से भरी है। अविद्या के कारण मूर्ख इसे शुभ मानता है ॥ ७ ॥

मृत्यु के बाद जब यह शरीर सूजकर नीला हो श्मशान में पड़ा रहता है तब उसे बन्धु-बान्धव भी छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥

खादन्ति नं सुवाना[1] च, सिगाला[2] च बका किमी ।
काका गिज्झा च खादन्ति ये चञ्ञे सन्ति पाणिनो[3] ॥९॥
सुत्वान बुद्धवचनं, भिक्खु पञ्ञाणवा इध ।
सो खो नं परिजानाति, यथाभूतं हि पस्सति ॥१०॥
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं ।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, काये छन्दं विराजये ॥११॥
छन्दरागविरत्तो सो, भिक्खु पञ्ञाणवा इध ।
अज्झगा अमतं सन्तिं निब्बानपदमच्चुतं ॥१२॥
द्विपादको'यं[4] असुचि, दुग्गन्धो परिहीरति[5] ।
नानाकुणपपरिपूरो, विस्सवन्तो ततो ततो ॥१३॥
एतादिसेन कायेन, यो मञ्ञे उण्णमेतवे ।
परं वा अवजानेय्य, किमञ्ञत्र अदस्सना'ति ॥१४॥

विजयसुत्तं निट्ठितं ।

१२—मुनि-सुत्तं

सन्थवातो[6] भयं जातं निकेता जायते रजो ।
अनिकेतमसन्थवं, एतं वे मुनिदस्सनं ॥१॥
यो जातमुच्छिज्ज न रोपयेय्य जायन्तमस्स नानुप्पवेच्छे ।
तमाहु एकं मुनिनं चरन्तं अद्दक्खि सो सन्तिपदं महेसि ॥२॥
संखाय वत्थूनि पमाय[7] बीजं सिनेहमस्स नानुप्पवेच्छे ।
स वे मुनी जातिखयन्तदस्सी, तक्कं पहाय न उपेति संखं ॥३॥
अञ्ञाय सब्बानि निवेसनानि, अनिकामयं अञ्ञतरम्पि तेसं ।
स वे मुनी वीतगेधो अगिद्धो, नायूहति पारगतो हि होति ॥४॥
सब्बाभिभुं सब्बविदुं सुमेधं सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तं ।
सब्बञ्जहं तण्हक्खये विमुत्तं तं वा'पि धीरा मुनिं[8] वेदयन्ति ॥५॥
पञ्ञाबलं सीलवतूपपन्नं, समाहितं झानरतं सतीमं ।
संगा पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥६॥

---

१ सुवाणा—रो । २ सिङ्गाला—म । ३ पाणयो—रो । ४ दिपादकोयं—सी स्या रो० क । ५ परिहरति—म । ६ सन्थवतो—क । ७ पमाय—म । ८ मुनि—म ।

उसे कुत्ते, सियार, भेड़िये, कीड़े, कौवे, गिद्ध और अन्य जानवर खा जाते हैं ॥ ९ ॥

यहाँ बुद्धिमान् भिक्षु, बुद्ध वचन को सुनकर, शरीर के स्वभाव को अच्छी तरह समझ लेता है, और उसे ज्यों का त्यों देखता है। ॥ १० ॥

यह शरीर जैसा है वह भी वैसा है। वह शरीर जैसा है यह भी वैसा है। इसलिए अपने या दूसरे के शरीर की आसक्ति छोड देनी चाहिए ॥११॥

जो प्रज्ञावान् भिक्षु छन्द और राग से रहित है, वह अमृत शान्ति अर्थात् अच्युत निर्वाणपद को प्राप्त हो विहरता है ॥ १२ ॥

अपवित्र, नाना गन्दगियों से परिपूर्ण यह द्विपादक शरीर दुर्गन्ध छोडता है जो कि एक एक जगह से निकलती है ॥ १३ ॥

इस प्रकार के शरीर के कारण यदि कोई अपने को ऊँचा और दूसरे को नीचा दिखावे तो यह अविद्या के सिवाय और किस कारण हो सकता है ॥ १४ ॥

विजयसुत्त समाप्त।

१२—मुनि-सुत्त

[इस सूत्र में मुनि का परिचय दिया गया है]

सगति से भय उत्पन्न होता है और गृहस्थी से राग। इसलिए मुनि ने पसन्द किया एकान्त और गृहहीन जीवन को ॥ १ ॥

जो उत्पन्न (पाप) को उच्छिन्न कर फिर उसे होने नहीं देता, जो उत्पन्न होते पाप को बढने नहीं देता, उस एकान्तचारी शान्तिपद द्रष्टा महर्षि को मुनि कहते हैं ॥ २ ॥

वस्तुस्थिति का बोधकर जिसने (ससार के) बीज को नष्ट कर दिया है, जो उसकी वृद्धि के लिए तरावट नही पहुँचाता, जो बुरे वितर्कों को त्याग अलौकिक हो गया है, आवागमन से मुक्त उस (महात्मा को) मुनि कहते है ॥३॥

मुनि सभी सासारिक अवस्थाओं को जानकर उनमें से किसी एक की भी आशा नहीं करता। तृष्णा और लोलुपता से रहित वह मुनि पुण्य और पाप का सचय नहीं करता, क्योंकि वह ससार से परे हो गया है ॥ ४ ॥

जिसने सब को अभिभूत किया है, जान लिया है, जो बुद्धिमान है, जो सब बातों में अलिप्त रहता है, जिसने सब को त्यागा है और तृष्णा का क्षयकर मुक्त हुआ है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते है ॥ ५ ॥

प्रज्ञाबल से युक्त, शीलवान्, व्रतधारी, समाधिस्थ, ध्यानरत, स्मृतिमान्, बन्धन मुक्त, नैतसिक ऊसरता से रहित, वासना रहित उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥६॥

एकं चरन्तं मुनिं अप्पमत्तं, निन्दापसंसासु अवेधमानं ।
सीहं'व सद्देसु असन्तसन्तं, वातं'व जालम्हि असज्जमानं ।
पदुमं'व तोयेन अलिप्पमानं[1], नेतारमञ्ञेसमनञ्ञनेय्यं ।
तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।७।।

यो ओगहने थम्भोरिवाभिजायति, यस्मिं परे वाचा परियन्तं वदन्ति ।
तं वीतरागं सुसमाहितिन्द्रियं, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।८।।

यो वे ठितत्तो तसरं'व उज्जुं, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेहि ।
वीमंसमानो विसमं समं च, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।९।।

यो सञ्ञतत्तो न करोति पापं, दहरा[2] च मज्झो च मुनी[3] यतत्तो ।
अरोसनेय्यो सो[4] न रोसेति[5] कंचि, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।१०।।

यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा पिण्डं लभेथ परदत्तूपजीवी ।
नालं थुतुं नो'पि निपच्चवादी, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।११।।

मुनिं चरन्तं विरतं मेथुनस्मा यो योब्बने नोपनिबज्झते क्वचि ।
मदप्पमादा विरतं विप्पमुत्तं, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।१२।।

अञ्ञाय लोकं परमत्थदस्सिं, ओघं समुद्दं अतितरिय तादिं ।
तं छिन्नगन्थं असितं अनासवं तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ।।१३।।

असमा उभो दूरविहारवुत्तिनो,
गिही दारपोसी अममो च सुब्बतो ।
परपाणरोधाय गिही असञ्ञतो,
निच्चं मुनी रक्खति पाणिनो[6] यता ।।१४।।

सिखी यथा नीलगीवो[7] विहंगमो,
हंसस्स नोपेति जवं कुदाचनं ।
एवं गिही नानुकरोति भिक्खुनो,
मुनिनो विवित्तस्स वनम्हि झायतो'ति ।।१५।।

मुनिसुत्तं निट्ठितं ।

---

१ अलिम्पमानं-म । २ ३ दहरो मज्झिमो च मुनि-म । ४-५ न सो रोसेति-म । ६ यातिरे-म । ७ नीलगीवो-स्या ।

एकचारी, अप्रमत्त, निन्दा प्रशसा से अविचलित, शब्द से त्रस्त न होनेवाले सिंह की तरह किसी से भी त्रस्त न होनेवाले, जाल में न बझनेवाली वायु की तरह कहीं भी न बझनेवाले, जल से अलिप्त पद्म की तरह कहीं भी लिप्त न होनेवाले, दूसरों को मार्ग दिखानेवाले और दूसरों का अनुयायी न बननेवाले उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते है ॥ ७ ॥

जो स्नान-स्थान के खम्भे की तरह स्थिर है, जिस पर औरों की निन्दा-प्रशसा का असर नहीं पडता, जो वीतराग और सयत-इन्द्रियवाला है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ८ ॥

जो तसर की तरह ऋजु और स्थिर चित्तवाला है, जो पाप कर्मों से परहेज करता है, और जो विषमता तथा समता का ख्याल रखता है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ९ ॥

जो सयमी है और पाप नहीं करता, जो आरम्भ और मध्यम वय में सयत रहता है, जो न स्वय चिढता है और न दूसरों को चिढाता है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १० ॥

जो अग्रभाग, मध्यमभाग या अवशेषभाग से भिक्षा लेता है, जिसकी जीविका दूसरों के दिये पर निर्भर है, और जो दायक की निन्दा या प्रशसा नहीं करता, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ११॥

जो मैथुन से विरक्त हो अकेला विचरण करता है, जो यौवन में भी कहीं आसक्त नहीं होता और मद-प्रमाद से विरक्त तथा विप्रमुक्त है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥१२ ॥

जिसने ससार को जान लिया है, जो परमार्थदर्शी है, जो संसार रूपी बाढ और समुद्र को पारकर स्थिर हो गया है, उस छिन्न ग्रन्थिवाले को ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १३ ॥

निरहङ्कार, सुव्रतधारी, एकान्तवासी, प्रव्रजित और दारपोषी गृही में समानता नहीं। असयमी गृहस्थ दूसरे जीवों का वध करता है। मुनि नित्य दूसरे प्राणियों की रक्षा करता है ॥ १४ ॥

जिस प्रकार अकाशगामी नीलग्रीवावाला मयूर कभी भी वेग में हस को नहीं पाता, इसी प्रकार गृहस्थ अकेले वन में ध्यान करनेवाले भिक्षु का अनुकरण नहीं कर सकता ॥ १५ ॥

मुनिसुत्त समाप्त।

२—चूळवग्गो

१३—रतन-सुत्तं

यानीध भूतानि समागतानि भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
सब्बे'व भूता सुमना भवन्तु, अथो'पि सक्कच्च सुणन्तु भासितं ॥१॥
तस्मा हि भूता निसामेथ सब्बे, मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय ।
दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बलिं, तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता ॥२॥
यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं ।
न नो समं अत्थि तथागतेन, इदं'पि बुद्धे रतनं पणीतं ।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥३॥
खयं विरागं अमतं पणीतं, यदज्झगा सक्यमुनी समाहितो ।
न तेन धम्मेन समत्थि किञ्चि, इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं ।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥४॥
यं बुद्धसेट्ठो परिवण्णयी सुचिं, समाधिमानन्तरिकञ्ञमाहु ।
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं ।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥५॥
ये पुग्गला अट्ठसतं पसत्था चत्तारि एतानि युगानि होन्ति
ते दक्खिणेय्या सुगतस्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फलानि ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥६॥
ये सुप्पयुत्ता मनसा दळ्हेन निक्कामिनो गोतमसासनम्हि ।
ते पत्तिपत्ता अमतं विगय्ह, लद्धा मुधा निब्बुतिं[1] भुञ्जमाना ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥७॥
यथिन्दखीलो पठविं सितो[2] सिया, चतुब्भि वातेहि असम्पकम्पियो ।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि यो अरियसच्चानि अवेच्च पस्सति ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ॥
ये अरियसच्चानि विभावयन्ति गम्भीरपञ्ञेन सुदेसितानि ।
किञ्चापि ते होन्ति भुसप्पमत्ता, न ते भवं अट्ठमं आदियन्ति ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥९॥

---

१. निब्बुतिं—म । २—ई पठविंसितो—म ।

२—चूलवर्ग

१३—रतन-सुत्त

[जिस समय वैशाली के लोग दुर्भिक्ष-भय, रोग भय तथा अमनुष्य-भय से पीड़ित थे, उस समय इस सूत्र का पाठ किया गया था। इस सूत्र में बुद्ध, धर्म तथा संघ—इन तीन रत्नों का गुणानुवाद है।]

इस समय इस पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष में जितने भी भूत उपस्थित हैं, वे सभी प्रसन्न हों और हमारे इस कथन को ध्यान से सुनें ॥ १ ॥

सब भूत दत्तचित्त हों और मनुष्य मात्र के प्रति, जिनसे कि वे दिन रात बलि लेते हैं, मैत्री करें और अप्रमत्त हो उनकी रक्षा करें ॥ २ ॥

इस लोक में या दूसरे लोकों में जो भी सम्पत्ति है और स्वर्गों में जो अनर्घ रत्न हैं, उनमें कोई भी बुद्ध के समान श्रेष्ठ नहीं। बुद्ध में यह भी रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ३ ॥

(वासना) क्षीण जिस प्रणीत अमृत (= निर्वाण) को शाक्यमुनि ने समाधिस्थ होकर प्राप्त किया था, उस धर्म के तुल्य दूसरा कुछ नहीं। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ बुद्ध ने उस पवित्र मार्ग-समाधि का उपदेश दिया है जिसके बाद ही अनायास फल समाधि की प्राप्ति होती है। उस समाधि के समान दूसरी कोई चीज नहीं। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ५ ॥

साधु जनों से प्रशंसित जो आठ प्रकार के व्यक्ति हैं, उनके चार युग्म होते हैं*। बुद्ध के ये शिष्य दक्षिणा के योग्य हैं। उनको दिये गये दान का फल महान् है। संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषणसे कल्याण हो ॥६॥

जो तृष्णा रहित हो दृढ चित्त से गौतम (= बुद्ध) के धर्म में लग गये हैं, वे प्राप्ति को प्राप्त कर, अमृत में पैठ, अनायास ही विमुक्ति-रस का आस्वाद लेते हैं। संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ७ ॥

जैसे जमीन में गड़ा इन्द्रकील* चारों ओर की हवा में पड़ कर भी अचल रहता है, उसी तरह (स्थिर) रहनेवाले उसे मैं सत्पुरुष कहता हूँ, जिसने आर्य सत्यों* का ज्ञानपूर्वक दर्शन कर लिया है। संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ८ ॥

गम्भीर प्रज्ञ बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आर्य सत्योंका* जिन्होंने दर्शन कर लिया है—वे आठवाँ जन्म ग्रहण नहीं करते, चाहे वे (अभ्यास करने में) उतने तत्पर भी न हों। संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ९ ॥

सहावस्स दस्सनसम्पदाय, तयस्सु धम्मा जहिता भवन्ति ।
सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छितं च, सीलब्बतं वा'पि यदत्थि किञ्चि ॥१०॥
चतूहपायेहि च विप्पमुत्तो, छ चाभिठानानि[1] अभब्बो[2] कातुं ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥११॥
किञ्चापि सो कम्मं[3] करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा ।
अभब्बो सो तस्स पटिच्छादाय, अभब्बता[4] दिट्ठपदस्स वुत्ता ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१२॥
वनप्पगुम्बे यथा[5] फुस्सितग्गे, गिम्हानमासे पठमस्मि गिम्हे ।
तथूपमं धम्मवरं अदेसयि, निब्बाणगामि परमं हिताय ।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१३॥
वरो वरञ्ञू वरदो वराहरो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेसयि ।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१४॥
खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं, विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मि ।
ते खीणबीजा अविरूळ्हिछन्दा, निब्बन्ति धीरा यथायम्पदीपो[7] ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१५॥
यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१६॥
यानीध भूतानि समागतानि भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१७॥
यानीध भूतानि समागतानि भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, संघं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१८॥

रतनसुत्त निट्ठित ।

१४—आमगन्ध-सुत्त

सामाकचिंगूलकचीनकानि च पत्तप्फलं मूलफलं[9] गविप्फलं ।
धम्मेन लद्धं सतमस्नमाना[10], न कामकामा अलिकं भणन्ति ॥१॥

---

१ छच्चाभिठानानि—म० । २ अभब्ब—म० । ३ कम्म—म । ४ [illegible]—म० । ५ [illegible]—म० । ६ यथ—म । ७ [illegible]—सी । ८ यथयं पदीपो—म । ९ मूलफलं—म । १० [illegible]—सी [illegible] । [illegible]—स्या म ।

दर्शन-प्राप्ति के साथ-साथ उसके तीन संयोजन (= बन्धन) छूट जाते हैं:—सत्कायदृष्टि (= नित्य आत्माका विश्वास), विचिकित्सा (= संशय) तथा शील-व्रतपरामर्श (= नाना प्रकार के व्रतों के कर्मकाण्ड से चित्त शुद्धि की प्राप्ति में विश्वास)। वह चार दुर्गतियों से मुक्त हो जाता है और छः घोर पापों का आचरण कभी नहीं करता। यह भी संघ में उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ १० ॥

यदि शरीर, वचन अथवा मन द्वारा उससे कोई पाप कर्म हो भी जाय तो वह परमपद द्रष्टा (उसे) नहीं छिपाता। (बुद्धने) यह बताया है कि निर्वाणदर्शी को कोई रहस्य नहीं रहता। संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ११ ॥

वसन्त ऋतु के आरम्भ में वन-प्रगुल्म प्रफुल्लित हो (जैसा सुन्दर होता है) वैसा (सुन्दर) श्रेष्ठ धर्म का उपदेश (बुद्ध ने) दिया है। यह निर्वाण को प्राप्त कराता है और परम हितकारी है ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ निर्वाण के दाता, श्रेष्ठ धर्म के दाता, श्रेष्ठ मार्ग के निर्देशक, श्रेष्ठ लोकोत्तर बुद्ध ने उत्तम उपदेश दिया है। बुद्ध में यह भी उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ १३ ॥

सारा पुराना कर्म क्षीण हो गया। नया कर्म संचय नहीं होता। उनका (= अर्हत् का) चित्त पुनर्जन्म से विरक्त हो गया है। क्षीण-बीज, तृष्णा से सर्वथा मुक्त वे, इस प्रदीप की तरह, निर्वाण को प्राप्त होते हैं। यह भी संघ में उत्तम रत्नत्व है। इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ १४ ॥

यहाँ हम जितने भी जीव उपस्थित हैं, पृथ्वी पर रहनेवाले अथवा अन्तरिक्ष में, देवमनुष्यवन्द्य बुद्ध को नमस्कार करते हैं। कल्याण हो ॥ १५ ॥

यहाँ हम जितने भी जीव उपस्थित हैं, पृथ्वी पर रहनेवाले अथवा अन्तरिक्षमें, देवमनुष्यवन्द्य बुद्ध को नमस्कार करते हैं। कल्याण हो ॥ १६ ॥

यहाँ हम जितने भी जीव उपस्थित हैं, पृथ्वी पर रहनेवाले अथवा अन्तरिक्ष में, देवमनुष्यवन्द्य तथागत और उनके संघ को नमस्कार करते हैं। कल्याण हो ॥ १७ ॥

रतनसुत्त समाप्त।

१४—आमगन्ध-सुत्त

[यह उपदेश आमगन्ध नामक ब्राह्मण को दिया गया था। इस सूत्र में 'आमगन्ध' का प्रयोग मछली-माँस तथा पाप के अर्थों में हुआ है। यहाँ इस बात पर जोर दिया गया है कि मछली-माँस के वर्जन मात्र से 'आमगन्ध' का वर्जन नहीं होता अपितु इसके लिए सभी पापों को त्यागना चाहिए। इस सम्बन्ध में कश्यप बुद्ध द्वारा तिष्य तपस्वी को देशित उपदेश भगवान् ने आमगन्ध ब्राह्मण को सुनाये हैं।]

तिष्य तपस्वी:—

धर्मपूर्वक प्राप्त साँवा, चिंगुलक (= एक धान्य विशेष), चीनक (= चीना), साग-सब्जी, कन्द-मूल तथा लता-फल (= सिंघाड़ा जैसा फल) को खानेवाले सत पुरुष कामनाओं के निमित्त असत्य नहीं बोलते ॥ १ ॥

समस्नमानो सुकतं सुनिट्ठितं, परेहि दिन्नं पयतं पणीतं।
सालीनमन्नं परिभुञ्जमानो, सो भुञ्जसि कस्सप आमगन्धं ॥२॥
न आमगन्धो मम कप्पतीति, इच्चेव त्वं भाससि ब्रह्मबन्धु।
सालीनमन्नं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमंसेहि सुसङ्खतेहि।
पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थं कथप्पकारो[1] तव आमगन्धो ॥३॥
पाणातिपातो वधछेदबन्धनं, थेय्यं मुसावादो निकतिवञ्चनानि च।
अज्झेनकुत्तं[2] परदारसेवना, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥४॥
ये इध कामेसु असञ्ञता जना, रसेसु गिद्धा असुचीकमिस्सिता[3]।
नत्थीकदिट्ठि विसमा दुरन्नया, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥५॥
ये[4] लूखसा दारुणा पिट्ठिमंसिका[5] मित्तद्दुनो निक्करुणातिमानिनो।
अदानसीला न च देति कस्सचि, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥६॥
कोधो मदो थम्भो पच्चुट्ठापना च, माया उसूया भस्ससमुस्सयो च।
मानातिमानो च असब्भिसन्थवो, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥७॥
ये पापसीला इणघातसूचका, वोहारकूटा इध पाटिरूपिका।
नराधमा ये ध करोन्ति किब्बिसं, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥ ॥
ये इध पाणेसु असञ्ञता जना, परेसमादाय विहेसमुय्युता।
दुस्सीललुद्धा फरुसा अनादरा, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥९॥
एतेसु गिद्धा विरुद्धातिपातिनो, निच्चुय्युता पेच्च तमं वजन्ति ये।
पतन्ति सत्ता निरयं अवंसिरा, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥१०॥
न मच्छमंसानमनासकत्तं[6], न नग्गियं (मुण्डियं जटा) जल्लं खराजिनानि वा-
नाग्गिहुत्तस्सुपसेवना वा, ये वा पि लोके अमरा बहू तपा।
मन्ताहुती यञ्ञमुतूपसेवना, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥११॥
सोतेसु गुत्तो विदितिन्द्रियो चरे, धम्मे ठितो अज्जवमद्दवे रतो।
सङ्गातिगो सब्बदुक्खप्पहीनो, न लिम्पति[7] दिट्ठसुतेसु धीरो ॥१२॥
इच्चेतमत्थं भगवा पुनप्पुनं, अक्खासि नं[8] वेदयि मन्तपारगू।
चित्राहि गाथाहि मुनी पकासयि निरामगन्धो असितो दुरन्नयो ॥१३॥
सुत्वान बुद्धस्स सुभासितं पदं, निरामगन्धं सब्बदुक्खप्पनूदनं।
नीचमनो वन्दि तथागतस्स तत्थेव पब्बज्जमरोचयित्थ ॥१४॥
आमगन्धसुत्तं निट्ठितं।

[illegible]

कश्यप ! दूसरों द्वारा दिया गया उत्तम चावल का स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करनेवाला 'आमगन्ध' का सेवन करता है ॥२॥

ब्रह्मबन्धु ! आप पक्षिमांस सहित उत्तम चावल का अन्न लेते हैं। फिर भी आप कहते हैं कि 'आमगन्ध' आप में त्यक्त है। कश्यप ! मैं आप से पूछता हूँ कि भला, आप का 'आमगन्ध' क्या है ॥३॥

कश्यप बुद्ध —

"जीवहिंसा, वध, बन्धन, चोरी, असत्य, धोखाबाजी, ठगी, निरर्थक अध्ययन तथा परस्त्री गमन—यह सब है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥४॥

"जो लोग विषय भोग में संयम नहीं रखते, रसास्वादन में लिप्त हैं, पापी हैं और विषम, टेढ़ी नास्तिक दृष्टिवाले हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥५॥

"जो कठोर, दारुण, चुगलखोर, द्रोही, निर्दयी, अतिमानी तथा अदानशील हैं, और किसी को कुछ नहीं देते—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥६॥

"क्रोध, मद, ढिठाई, विरोध, माया, ईर्ष्या, आत्म-प्रशंसा, मानातिमान और बुरों की संगति—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥७॥

"जो पापी, ऋण अदा न करनेवाले, चुगलखोर, कपट, ढोंगी नराधम बुरे कर्म करते हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥८॥

"जो लोग प्राणियों के प्रति संयम नहीं रखते, दूसरों की वस्तु लेकर उन्हें परेशान करने पर तुले हुए हैं और दुराचारी, क्रूर, कठोर तथा अ-दानशील हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥९॥

"जो लोग लालच या विरोध भाव से जीव-हिंसा पर तुले हुए हैं, वे परलोक में अन्धकार को प्राप्त होते हैं और उल्टे सिर नरक में पड़ते हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥१०॥

"न तो मछली-मांस न खाना, न नंगा रहना, न मुंडन करना, न जटा धारण करना, न धूल पोतना, न कर्कश मृग-चर्म पहनना, न अग्नि-परिचर्या, न अमरत्व की आकांक्षा से अनेक प्रकार का तप करना, न मंत्र पाठ करना, न हवन करना, न यज्ञ करना और न ऋतुओं का उपसेवन करना ही संशययुक्त मनुष्य को शुद्ध कर सकते हैं ॥११॥

"जो इन्द्रियों को वश में कर विजितेन्द्रिय हो गया है, और जिसने, धर्म में स्थित हो, ऋजुता और मृदुता में रत हो, तृष्णा से परे हो, सब दुःख का नाश किया है, वह रूपों तथा शब्दों में आसक्त नहीं होता" ॥१२॥

इस बात को भगवान् ने बारम्बार कहा और वेदपारङ्गत ब्राह्मण ने इसे समझ लिया। तृष्णा रहित, अनासक्त और अनुसरण करने में दुष्कर मुनि ने सुन्दर गाथाओं में यह बात प्रकट की ॥१३॥

तृष्णा रहित, सर्व दुःख निवारक बुद्ध के सदुपदेश को सुनकर ब्राह्मण ने नम्र भाव से उनकी वन्दना की और वहीं पर प्रव्रज्या की याचना की ॥१४॥

आमगन्ध-सुत्त समाप्त।

१५—हिरि-सुत्त

हिरिं तरन्तं विजिगुच्छमानं, सखाहमस्मि¹ इति भासमानं ।
सय्हानि कम्मानि अनादियन्तं, नेसो ममन्ति इति नं² विजञ्ञा ॥१॥

अनन्वयं³ पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति ।
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता ॥२॥

न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदासङ्की रंधमेवानुपस्सी ।
यस्मिं च सेति उरसीव पुत्तो, स वे मित्तो यो परेहि अभेज्जो ॥३॥

पामुज्जकरणं ठानं, पसंसावहनं सुखं ।
फलानिसंसो भावेति, वहन्तो पोरिसं धुरं ॥४॥

पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च ।
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवं'ति ॥५॥

हिरिसुत्तं निट्ठितं

१६—महामङ्गल-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

'बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिन्तयुं ।
आकङ्खमाना सोत्थानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं' ॥१॥

असेवना च बालानं पण्डितानं च सेवना ।
पूजा च पूजनीयानं⁴, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥२॥

"पतिरूपदेसवासो च, पुब्बे च कतपुञ्ञता ।
अत्तसम्मापणिधि च, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥३॥

---

¹ सखाहमस्मि—म । ² तं—सी । ³ अत्थन्वयं—क । ⁴ पूजनेय्यानं—म ।

१५—हिरि-सुत्त

[इस सूत्र मे ये तीन बातें दिखाई गई हैं : किस प्रकार के मित्र की संगति करनी चाहिए, मनुष्य का क्या उद्देश्य होना चाहिए और सब रसों में कौन-सा रस उत्तम है ।]

निर्लज्ज-व्यवहार करनेवाला, (भीतर ही भीतर) घृणा का भाव रखनेवाला, सामर्थ्य की बात भी न करनेवाला जो अपने को मित्र बताता है, उसके विषय में समझना चाहिए कि 'यह मेरा (मित्र) नहीं है' ॥१॥

जो मित्रों से बेकार मीठी-मीठी बाते बोलता है और अपनी बात को नहीं करता, पण्डित लोग उसकी निन्दा करते है ॥२॥

जो ऊपर से मित्रता दिखाने की चेष्टा करता है (किन्तु) अनबन की सदा शका करता है और छिद्रान्वेपी है, वह मित्र नहीं । मित्र तो वह है जो (माता की) गोद मे सोये पुत्र की तरह (विश्वास और प्रेम करनेवाला) हो और जिससे कोई फूट न डाल सके ॥३॥

मनुष्योचित कार्य का वहन करनेवाला शुभ परिणाम की इच्छा करके पराक्रम से वृद्धि करता है जो कि प्रसन्नता, प्रशसा और सुख देनेवाला है ॥४॥

एकान्तवास, चित्तशान्ति और धर्म-प्रीति का रस पानकर मनुष्य निडर और निष्पाप हो जाता है ॥५॥

हिरिसुत्त समाप्त ।

१६—महामङ्गल-सुत्त

[इस सूत्र में मागलिक बातें बताई गई हैं ।]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवनाराम** में विहार करते थे । उस समय एक देवता रात के भिनसारे अपनी दीप्ति से समस्त **जेतवन** को आलोकित कर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खडा हो गया । एक ओर खडा हो वह गाथा में भगवान् से बोला :—

कल्याण की आकाक्षा करते हुए बहुत देवताओं और मनुष्यों ने मगल के विषय में विचार किया है । आप बतावें उत्तम मङ्गल क्या है ? ॥१॥

बुद्ध :—

"मूर्खों की सगति न करना, पण्डितों की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥२॥

"अनुकूल स्थानों में निवास करना, पूर्व जन्म के संचित पुण्य का होना और अपने को सन्मार्ग पर लगाना—यह उत्तम मङ्गल है ॥३॥

१५—हिरि-सुत्त

हिरिं तरन्तं विजिगुच्छमानं, सखाहमस्मि[1] इति भासमानं ।
सय्हानि कम्मानि अनादियन्तं, नेसो ममन्ति इति नं[2] विजञ्ञा ॥१॥

अनत्थयं[3] पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति ।
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता ॥२॥

न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदासंकी रंधमेवानुपस्सी ।
यस्मिं च सेति उरसीव पुत्तो, स वे मित्तो यो परेहि अभेज्जो ॥३॥

पामुज्जकरणं ठानं, पसंसावहनं सुखं ।
फलानिसंसो भावेति, वहन्तो पोरिसं धुरं ॥४॥

पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च ।
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवं'ति ॥५॥

हिरिसुत्त निट्ठितं

१६—महामङ्गल-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ पिण्डिकस्स आरामे । अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुप सङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एक-मन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिन्तयुं ।
आकङ्खमाना सोत्थानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं" ॥१॥

"असेवना च बालानं पण्डितानं च सेवना ।
पूजा च पूजनीयानं[4] एतं मङ्गलमुत्तमं ॥२॥

"पतिरूपदेसवासो च, पुब्बे च कतपुञ्ञता ।
अत्तसम्मापणिधि च, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥३॥

---

१ सखाहमस्मि—म० । २ तं—सी । ३ अत्थन्वयं—म । ४ पूजनेय्यानं—म ।

१५—हिरि-सुत्त

[इस सूत्र में ये तीन बातें दिखाई गई हैं : किस प्रकार के मित्र की संगति करनी चाहिए, मनुष्य का क्या उद्देश्य होना चाहिए और सब रसों में कौन-सा रस उत्तम है ।]

निर्लज्ज-व्यवहार करनेवाला, (भीतर ही भीतर) घृणा का भाव रखनेवाला, सामर्थ्य की बात भी न करनेवाला जो अपने को मित्र बताता है, उसके विषय में समझना चाहिए कि 'यह मेरा (मित्र) नहीं है' ॥१॥

जो मित्रो से बेकार मीठी-मीठी बातें बोलता है और अपनी बात को नही करता, पण्डित लोग उसकी निन्दा करते है ॥२॥

जो ऊपर से मित्रता दिखाने की चेष्टा करता है (किन्तु) अनबन की सदा शका करता है और छिद्रान्वेषी है, वह मित्र नहीं । मित्र तो वह है जो (माता की) गोद में सोये पुत्र की तरह (विश्वास और प्रेम करनेवाला) हो और जिससे कोई फूट न डाल सके ॥३॥

मनुष्योचित कार्य का वहन करनेवाला शुभ परिणाम की इच्छा करके पराक्रम से वृद्धि करता है जो कि प्रसन्नता, प्रशसा और सुख देनेवाला है ॥४॥

एकान्तवास, चित्तशान्ति और धर्म-प्रीति का रस पानकर मनुष्य निडर और निष्पाप हो जाता है ॥५॥

हिरिसुत्त समाप्त ।

१६—महामङ्गल-सुत्त

[इस सूत्र में मांगलिक बातें बताई गई हैं ।]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवनाराम** में विहार करते थे । उस समय एक देवता रात के भिनसारे अपनी दीप्ति से समस्त **जेतवन** को आलोकित कर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो वह गाथा में भगवान् से बोला :—

कल्याण की आकाक्षा करते हुए बहुत देवताओं और मनुष्यों ने मगल के विषय में विचार किया है । आप बतावें उत्तम मङ्गल क्या है ? ॥१॥

बुद्ध :—

"मूर्खों की सगति न करना, पण्डितों की सगति करना और पूज्यों की पूजा करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥२॥

"अनुकूल स्थानों में निवास करना, पूर्व जन्म के सचित पुण्य का होना और अपने को सन्मार्ग पर लगाना—यह उत्तम मङ्गल है ॥३॥

"बाहुसच्चं च सिप्पं च, विनयो च सुसिक्खितो ।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ४ ॥
"मातापितु उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो ।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ५ ॥
"दानं च धम्मचरिया च, ञातकानं च सङ्गहो ।
अनवज्जानि कम्मानि, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ६ ॥
"आरति विरति पापा, मज्जपाना च संयमो[1] ।
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ७ ॥
"गारवो च निवातो च, सन्तुट्ठी च कतञ्ञुता ।
कालेन धम्मसवणं[3], एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ८ ॥
"खन्ती च सोवचस्सता, समणानं च दस्सनं ।
कालेन धम्मसाकच्छा, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ९ ॥
"तपो च ब्रह्मचरियं च, अरियसच्चान दस्सनं ।
निब्बाणसच्छिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ १० ॥
"फुट्ठस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस्स न कम्पति ।
असोकं विरजं खेमं, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ११ ॥
"एतादिसानि कत्वान, सब्बत्थमपराजिता ।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तमं"ति ॥ १२ ॥

महामङ्गलसुत्तं निट्ठितं ।

१७—सूचिलोम-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा गयायं विहरति टङ्कितमञ्चे सूचिलोमस्स यक्खस्स भवने । तेन खो पन समयेन खरो च यक्खो सूचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति । अथ खो खरो यक्खो सूचिलोमं यक्खं एतदवोच—"एसो समणो" ति । "नेसो समणो, समणको एसो याव[4] जानामि यदि वा सो समणो यदि वा समणको" ति । अथ खो सूचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि उपसङ्कमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि । अथ खो भगवा कायं अपनामेसि । अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच 'भायसि मं समणा'ति ? 'न

[1] सञ्ञमो–सी । [2] सन्तुट्ठि–म । [3] धम्मस्सवनं–म । [4] यावाहं–म स्या० ।

"बहुश्रुत होना, शिल्प सीखना, शिष्ट होना, सुशिक्षित होना और सुभाषण करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ४ ॥

"माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री का पालन-पोषण करना और गड-बड का काम न करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ५ ॥

"दान देना, धर्माचरण करना, बन्धु-बान्धवों का आदर-सत्कार करना और निर्दोष कार्य करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ६ ॥

"मन, शरीर तथा वचन से पापों को त्यागना, मद्यपान न करना और धार्मिक कार्यों मे तत्पर रहना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ७ ॥

"गौरव करना, नम्र होना, सन्तुष्ट रहना, कृतज्ञ होना और उचित समय पर धर्म-श्रवण करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ८ ॥

"क्षमाशील होना, आज्ञाकारी होना, श्रमणों का दर्शन करना और उचित समय पर धार्मिक चर्चा करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ९ ॥

"तप, ब्रह्मचर्य का पालन, आर्य-सत्यों* का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार—यह उत्तम मङ्गल है ॥ १० ॥

"जिसका चित्त **लोकधर्मों**+ से विचलित नहीं होता वह नि:शोक, निर्मल तथा निर्भय रहता है—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ११ ॥

"इस प्रकार के कर्म करके सर्वत्र अपराजित हो (लोग) कल्याण को प्राप्त करते हैं—यह उनके लिए (=देवताओं और मनुष्यों के लिए) उत्तम मङ्गल है" ॥ १२ ॥

महामङ्गलसुत्त समाप्त ।

१७—सूचिलोम-सुत्त

[तृष्णा ही सभी वासनाओं का मूल है ।]

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् **गया** में, **टंकितमञ्च** में, **शूचिलोम** यक्ष के भवन में विहार करते थे । उस समय **खर** यक्ष तथा **शूचिलोम** यक्ष थोडी ही दूर पर जा रहे थे । तब **खर** यक्ष ने **शूचिलोम** यक्ष से यह कहा—"यह कोई साधु है ।"

शूचिलोम—"यह साधु नहीं, नकली साधु है । अच्छा, तो देखें कि वह कौन है ।"

तब **शूचिलोम** यक्ष जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् के शरीर से टकराने की कोशिश की । भगवान् हट गये । तब **शूचिलोम** यक्ष ने भगवान् से कहा—"क्या, श्रमण ! तुम मुझसे डरते हो ?"

ब्याह तं आवुसो आयामि, अपि च त सम्बस्मो पापको"ति। "पञ्हं तं समण पुच्छिस्सामि, सचे मे न ब्याकरिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी"ति। "न ख्वाहं तं आवुसो पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य; अपि च त्वं आवुसो पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"रागो च दोसो च कुतो निदाना, अरती रती लोमहंसो कुतोजा।
कुतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धंकमिवोस्सजन्ति" ॥ १ ॥

"रागो च दोसो च इतो निदाना, अरती रती लोमहंसो इतोजा।
इतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धंकमिवोस्सजन्ति ॥ २ ॥

"स्नेहजा अत्तसम्भूता, निग्रोधस्सेव खन्धजा।
पुथू विसत्ता कामेसु, मालुवा'व विततो वने ॥ ३ ॥

"ये नं पजानन्ति यतो निदानं, ते नं विनोदेन्ति सुणोहि यक्ख।
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिण्णपुब्बं अपुनब्भवाया"ति ॥ ४ ॥

सूचिलोमसुत्तं निट्ठितं।

१८—धम्मचरिय-सुत्त

धम्मचरियं ब्रह्मचरियं, एतदाहु वसुत्तमं।
पब्बजितो'पि चे होति अगारा[१] अनगारियं ॥ १ ॥

सो चे मुखरजातिको विहेसाभिरतो मगो।
जीवितं तस्स पापियो रजं वड्ढेति अत्तनो ॥ २ ॥

कलहाभिरतो भिक्खु मोहधम्मेन आवुटो[२]।
अक्खातम्पि न जानाति धम्मं बुद्धेन देसितं ॥ ३ ॥

---

१ अगारस्मा—सी । २ आवुतो—म ।

बुद्ध—आयुष्मान्! मैं तुमसे डरता नहीं, बल्कि तुम्हारा स्पर्श बुरा है।

शूचिलोम—श्रमण! मैं तुमसे प्रश्न करूँगा। यदि तुम उसका उत्तर न दे सके, तो मैं तुम्हारे चित्त को विक्षित कर दूँगा, हृदय को चीर दूँगा या पैरों से लेकर गगा के उस पार फेंक दूँगा।

बुद्ध—आयुष्मान्! देव, मार, ब्रह्मा और श्रमण-ब्राह्मण सहित लोक में, देव-मनुष्य सहित प्रजा में मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता, जो कि मेरे चित्त को विक्षित कर सके, मेरे हृदय को चीर सके या पैरों से लेकर गगा के उस पार (मुझे) फेंक सके, फिर भी आयुष्मान्! जो चाहे सो पूछो।

तब शूचिलोम यक्ष ने गथाओं में भगवान् से कहा—

राग और द्वेष का उद्‌गम क्या है? (पाप में) रति, (पुण्य में) अरति और भय कैसे उत्पन्न होते हैं? वे (पाप) वितर्क कहाँ से उत्पन्न होते हैं जो कि चित्त को वैसे ही सताते हैं जैसे कौवे को (पैर में रस्सी बाँध कर) लडके ॥१॥

बुद्ध :—

राग और द्वेष यहीं (=अपने भीतर ही) उत्पन्न होते हैं। रति, अरति और भय यहीं उत्पन्न होते हैं। और यहीं वितर्क* भी उत्पन्न होते हैं जो चित्त को उसी तरह सताते हैं जिस तरह कौवे को (पैर में रस्सी बाँध कर) लडके ॥ २ ॥

जिस प्रकार वट वृक्ष के तने से प्ररोह निकल आते हैं, उसी प्रकार तृष्णा और आत्म दृष्टि से वे (पाप) उत्पन्न होते हैं। जगल में फैलनेवाली **मालुवा** लता की तरह वे विषयों में आसक्त रहते है ॥ ३ ॥

यक्ष! सुनो। जो लोग इस उद्‌गम को जानते हैं, वे उसका अन्त कर देते हैं। वे अतीर्णपूर्व, दुस्तर प्रवाह को पारकर जाते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ४ ॥

सूचिलोमसुत्त समाप्त।

१८—धम्मचरिय-सुत्त

[इस सूत्र में भिक्षुओं के लिए उपदेश हैं। इसमें यह आदेश है कि बुरे भिक्षुओं को सघ से निकाल कर अच्छे भिक्षुओं को निर्वाण के लिए प्रयत्न करना चाहिए।]

धार्मिक तथा श्रेष्ठ आचरण ही उत्तम है। जो घर से बेघर हो प्रव्रजित हो कर भी मुँहफट और, पशु की तरह, दूसरों को सतानेवाला है उसका जीवन पापी है। वह अपने मल को बढाता है ॥ १-२ ॥

जो भिक्षु झगडालु है और मोह से भरा है, वह बुद्ध के बताये धर्म को समझाने पर भी नहीं समझता ॥ ३ ॥

विहेसं भावितत्तानं, अविज्जाय पुरक्खता ।
सङ्किलेसं न जानाति, मग्गं निरयगामिनं ॥ ४ ॥

विनिपातं समापन्नो, गब्भा गब्भं तमा तमं ।
स वे तादिसको भिक्खु, पेच्च दुक्खं निगच्छति ॥ ५ ॥

गूथकूपो यथा अस्स सम्पुण्णो गणवस्सिको ।
यो[1] एवरूपो[2] अस्स, दुब्बिसोधो हि साङ्गणो ॥ ६ ॥

यं एवरूपं जानाथ, भिक्खवो गेहनिस्सितं ।
पापिच्छं पापसङ्कप्पं, पापआचारगोचरं ॥ ७ ॥

सब्बे समग्गा हुत्वान, अभिनिब्बज्जियाथ[3] नं ।
कारण्डवं[4] निद्धमथ, कसम्बुं अपकस्सथ[5] ॥ ८ ॥

ततो पलापे[6] वाहेथ अस्समणे समणमानिने ।
निद्धमित्वान पापिच्छे पापआचारगोचरे ॥ ९ ॥

सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयव्हो पतिस्सता ।
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथाति ॥ १० ॥

धम्मचरियसुत्तं निट्ठितं ।

१९—ब्राह्मणधम्मिक-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो सम्बहुला कोसलका ब्राह्मणमहासाला जिण्णा वुद्धा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते ब्राह्मणमहासाला भगवन्तं एतदवोचुं— 'सन्दिस्सन्ति नु खो भो गोतम एतरहि ब्राह्मणा पोराणानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मे ति?' "न खो ब्राह्मणा सन्दिस्सन्ति एतरहि ब्राह्मणा पोराणानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मे ति।" "साधु नो भवं गोतमो

१-२ यो च एवरूपो—म०, यो एवरूपो—सी । ३ अभिनिब्बज्जियाथ—म । ४ कारण्डवं—स्या क । ५ अपकस्सथ—सी स्या क । ६ पलासे—क ।

जो अविद्या के वशीभूत हो सन्तों को सताता है, वह नहीं जानता कि यह पाप नरक को ले जानेवाला मार्ग है ॥ ४ ॥

ऐसा भिक्षु मृत्यु के बाद नरक में पडता है और वह एक जन्म से दूसरे जन्म को और अन्धकार से अन्धकार को प्राप्त हो परलोक में दुःख भोगता है ॥ ५ ॥

ऐसे पापी मनुष्य को शुद्ध करना वैसा ही कठिन है जैसा कि भरे हुए कई वर्ष पुराने गूथ कूप (=संडास) को ॥ ६ ॥

भिक्षुओ ! पापी इच्छा, पापी विचार, पापी आचार और पापी संगतिवाले किसी को जानो तो सब मिल कर उसे निकाल दो, कचरे की तरह उसे दूर कर दो, कूडे की तरह उसे हटा दो ॥ ७-८ ॥

पापी इच्छा, पापी आचार और पापी संगतिवाले को निकालने के बाद उन तुच्छों को बाहर कर दो जो अश्रमण हो श्रमण-वेष धारण करते है ॥ ९ ॥

जागरूक हो शुद्ध पुरुष शुद्ध पुरुषों की संगति करें। इस प्रकार बुद्धिमान् मेल से रह कर दुःख का अन्त कर सकेंगे ॥ १० ॥

धम्मचरियसुत्त समाप्त।

१९.—ब्राह्मणधम्मिक-सुत्त

[बहुत से धनीमनी ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर पुराने ब्राह्मणों की चर्या के विषय में पूछते हैं। भगवान् इसका सुन्दर वर्णन करते हैं और यह दिखाते हैं कि लोभ में पड़कर ब्राह्मणों ने किस प्रकार मन्त्र रच डाले और यज्ञों में हिंसा किस प्रकार आरम्भ हुई। मनुष्य की अत्यन्तोपयोगी गौ की उपमा माता से दी गई है। उपदेश के अन्त में सभी ब्राह्मण भगवान् के अनुयायी बन जाते हैं।]

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवनाराम** में विहार करते थे। उस समय **कोशलवासी** धनी, जीर्ण, वृद्ध, अवस्थावाले, बीती जिन्दगीवाले, वयस्क बहुत-से ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान् से कुशल-मंगल पूछे। कुशल-मंगल पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान् से यह कहा —

हे **गौतम** ! पुराने ब्राह्मणों की चर्या के अनुसार चलनेवाले ब्राह्मण इस समय दिखाई देते हैं ?

बुद्ध—ब्राह्मणो ! पुराने ब्राह्मणों की चर्या के अनुसार चलनेवाले ब्राह्मण इस समय दिखाई नहीं देते।

पोराणानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मं भासतु, सचे भो गोतमस्स अगरू" ति।
'तेन हि ब्राह्मणा सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी" ति।
'एवं भो' ति खो ते ब्राह्मणमहासाला भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

इसयो पुब्बका आसु, सञ्ञतत्ता तपस्सिनो।
पञ्चकामगुणे हित्वा, अत्तदत्थमचारिसुं॥ १॥
न पसू ब्राह्मणानासुं न हिरञ्ञं न धानियं।
सज्झायधनधञ्ञासुं, ब्रह्मं निधिमपालयुं॥ २॥
यं नेसं पकतं आसि, द्वारभत्तं उपट्ठितं।
सद्धापकतमेसानं दातवे तदमञ्ञिसुं॥ ३॥
नानारत्तेहि वत्थेहि, सयनेहावसथेहि च।
फीता जनपदा रट्ठा, ते नमस्सिसु ब्राह्मणे॥ ४॥
अवज्झा ब्राह्मणा आसुं, अजेय्या धम्मरक्खिता।
न ते कोचि निवारेसि कुलद्वारेसु सब्बसो॥ ५॥
अट्ठचत्तारीसं[1] वस्सानि, (कोमार) ब्रह्मचरियं चरिंसु ते।
विज्जाचरणपरियेट्ठिं अचरुं ब्राह्मणा पुरे॥ ६॥
न ब्राह्मणा अञ्ञमगमुं न'पि भरियं किणिंसु ते।
संपियेनेव संवासं संगन्त्वा समरोचयुं॥ ७॥
अञ्ञत्र तम्हा समया, उतुवेरमणिं पति।
अन्तरा मेथुनं धम्मं, नास्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा॥ ८॥
ब्रह्मचरियं च सीलं च, अज्जवं मद्दवं तपं।
सोरच्चं अविहिंसं च, खन्तिं चापि अवण्णयुं॥ ९॥
यो नेसं परमो आसि, ब्रह्मा दळ्हपरक्कमो।
स चापि मेथुनं धम्मं सुपिनन्तेन नागमा॥ १०॥
तस्स वत्तमनुसिक्खन्ता इधेके विञ्ञुजातिका।
ब्रह्मचरियं च सीलं च खन्तिं चापि अवण्णयुं॥ ११॥
तण्डुलं सयनं च वं सप्पितेलं च याचिय।
धम्मेन समुदानेत्वा ततो यञ्ञमकप्पयुं।
उपट्ठितस्मि यञ्ञस्मिं, नास्सु गावो हनिंसु ते॥ १२॥
यथा माता पिता भाता अञ्ञे चापि च ञातका।
गावो नो परमा मित्ता यासु जायन्ति ओसधा॥ १३॥

---

१ अट्ठचत्तालीसं—मं। २—समोधानेत्वा—सी म।

ब्राह्मणः—अच्छा हो कि आप **गौतम** हमें पुराने ब्राह्मणो की चर्या को बतावें, यदि आप **गौतम** को कष्ट न हो।

वुद्धः—"तो ब्राह्मणो! सुनो, अच्छी तरह मन मे धारण करो, कहूँगा।"

"अच्छा जी" (कह) उन धनी ब्राह्मणो ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् ने कहा :—

"पुराने ऋषि सयमी और तपस्वी थे। वे पाँच प्रकार के विषय-भोगों को छोड कर आत्मोन्नति के लिए आचरण करते थे ॥१॥

"ब्राह्मणों के पास न पशु होते थे, न हिरण्य तथा धान्य। स्वाध्याय ही उनका धन-धान्य था और वे (इस) श्रेष्ठ निधि की रक्षा करते थे ॥२॥

"उनके लिए जो भोजन श्रद्धा से तैयार कर द्वार पर रखा जाता था, खोजने पर उसे (उन को) देने योग्य समझते थे ॥३॥

"समृद्ध जनपदों तथा राष्ट्रो के लोग अनेक प्रकार के विचित्र वस्त्रों, शयनों और निवासस्थानों से उनकी पूजा करते थे ॥४॥

"ब्राह्मण निर्दोषी, अजेय और धर्म से रक्षित थे। कुल-द्वारो पर कभी कोई उनको रोकता नहीं था ॥५॥

"पुराने ब्राह्मण अड़तालीस वर्ष तक बाल्ब्रह्मचारी रहते थे और विद्या तथा आचरण की गवेषणा में विचरण करते थे ॥६॥

"ब्राह्मण न परस्त्रियों के पास जाते थे और न स्त्रियो को खरीदते ही थे। वे परस्पर प्रेमवाली से सहवास करना पसन्द करते थे ॥७॥

"ऋतु समय को छोड बीच के निषिद्ध किसी समय में वे मैथुन-धर्म नहीं करते थे ॥८॥

"वे ब्रह्मचर्य, शील, ऋजुता, मृदुता, तप, सौजन्य, अहिंसा तथा क्षमा की प्रशसा करते थे ॥९॥

"उनमें श्रेष्ठ, दृढ और पराक्रमी ब्राह्मण (जो ब्रह्मा कहलाता था) स्वप्न में भी मैथुन नही करता था ॥१०॥

"उसके आचरण का अनुसरण करनेवाले कुछ विज्ञ लोग ब्रह्मचर्य, शील और क्षमा की प्रशसा करते थे ॥११॥

"धार्मिक रीति से वे चावल, शयन, वस्त्र, घी, तथा तेल माँग लाकर यज्ञ करते थे। यज्ञ के उपस्थित होने पर वे गौवों का वध नहीं करते थे ॥१२॥

"माता, पिता, भाई या दूसरे बन्धुओं की तरह गौवें भी हमारी परम मित्र हैं जिनसे कि औषधियाँ उत्पन्न होती है ॥१३॥

अन्नदा बलदा चेता, वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवसं ञत्वा, नास्सु गावो हनिंसु ते ॥ १४ ॥
सुखुमाला महाकाया वण्णवन्तो यसस्सिनो।
ब्राह्मणा सेहि धम्मेहि, किच्चाकिच्चेसु उस्सुका।
याव लोके अवत्तिंसु, सुखमेधित्थ'यं पजा ॥ १५ ॥
तेसं आसि विपल्लासो, दिस्वान अणुतो अणुं।
राजिनो च वियाकारं, नारियो समलङ्कता ॥ १६ ॥
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने।
निवेसने निवेसे च, विभत्ते भागसो मिते ॥ १७ ॥
गोमण्डलपरिब्यूळ्हं, नारीवरगणायुतं।
उळारं मानुसं भोगं, अभिज्झायिंसु ब्राह्मणा ॥ १८ ॥
ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा, ओक्काकं तदुपागमुं।
पहूतधनधञ्ञोसि, (यजस्सु बहु ते वित्तं) यजस्सु बहु ते धनं ॥१९॥
ततो च राजा सञ्ञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो।
अस्समेधं पुरिसमेधं, (सम्मापासं) वाजपेय्यं निरग्गळं।
एते यागे यजित्वान ब्राह्मणानं अदा धनं ॥ २० ॥
गावो सयनं च वत्थं च, नारियो समलङ्कता।
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने ॥ २१ ॥
निवेसनानि रम्मानि सुविभत्तानि भागसो।
नानाधञ्ञस्स पूरेत्वा ब्राह्मणानं अदा धनं ॥ २२ ॥
ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समरोचयुं।
तेसं इच्छावतिण्णानं, भिय्यो तण्हा पवड्ढथ।
ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा, ओक्काकं पुनुपागमुं[१] ॥ २३ ॥
यथा आपो च पठवी हिरञ्ञं धनधानियं।
एवं गावो मनुस्सानं परिक्खारो सो हि पाणिनं।
यजस्सु बहु ते वित्तं यजस्सु बहु ते धनं ॥ २४ ॥
ततो च राजा सञ्ञत्तो ब्राह्मणेहि रथेसभो।
नेकसतसहस्सियो गावो यञ्ञे अघातयि ॥ २५ ॥
न पादा न विसाणेन, नास्सु हिंसन्ति केनचि।
गावो एळकसमाना सोरता कुम्भदूहना।
ता विसाणे गहेत्वान राजा सत्थेन घातयि ॥ २६ ॥
ततो[१] च देवा पितरो[१] इन्दो असुररक्खसा।
अधम्मो इति पक्कन्दुं यं सत्थं निपती गवे ॥ २७ ॥

---

१. पुन मुपागमुं—म । २१. ततो देवा पितरो च—स्या ।

"ये अन्न, बल, वर्ण, तथा सुख देनेवाली है। इस बात को जानकर वे गौवों का वध नहीं करते थे ॥१४॥

"कोमल, विशालकाय, सुन्दर तथा यशस्वी ब्राह्मण इन धर्मों से युक्त हो कर्तव्याकर्तव्य में जब तक तत्पर रहते थे (तब तक) यह प्रजा सुखी रही ॥१५॥

"धीरे-धीरे राजा की सम्पत्ति, समलकृत स्त्रियों, अच्छे-अच्छे घोड़े जुते सुन्दर बेल-बूटेदार रथों और कमरेवाली कोठियो तथा भवनों को देखकर उनका मन विचलित हुआ ॥१६–१७॥

"वे ब्राह्मण गौ-मण्डली से घिरे और सुन्दर नारियों से युक्त, विपुल, मानुषिक सम्पत्ति का लोभ करने लगे ॥१८॥

"तब वे मन्त्र रचकर इक्ष्वाकु के पास जाकर बोले—'तू बहुत धन-धान्य-वाला है, यज्ञ कर। तेरे पास बहुत सम्पत्ति तथा धन है, यज्ञ कर ॥१९॥

"ब्राह्मणों की बातों में आकर रथपति राजा ने अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्मापास, वाजपेय, निरर्गल—इन यज्ञों को कर ब्राह्मणों को धन दिया ॥२०॥

"गौवें, शय्या, वस्त्र, समलकृत स्त्रियाँ, उत्तम घोड़े जुते सुसज्जित बेल्बूटेदार रथ और धन-धान्य भरे हुए भव्य-भवन उन ब्राह्मणों को धन के रूप में दे दिये ॥२१–२२॥

"धन मिलने पर उन्होंने उसे सग्रह करना पसन्द किया। इस प्रकार लोभ में पडे उनकी तृष्णा बहुत ही बढ गई। तब वे मन्त्र रचकर फिर इक्ष्वाकु के पास गये (और बोले) ॥२३॥

"जिस प्रकार पानी, पृथ्वी, हिरण्य, धन-धान्य है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए गायें हैं। वे प्राणियों की उपभोग वस्तु हैं। तेरे पास बहुत सम्पत्ति है, यज्ञ कर। तेरे पास बहुत धन है, यज्ञ कर ॥२४॥

"उन ब्राह्मणों की बातों में आकर रथपति राजा ने यज्ञ में लाखों गौवों का वध किया ॥२५॥

"न पाद से, न सींग से, न किसी (दूसरे अग) से गायें हिंसा करती हैं। भेंढ जैसी प्रिय गायें घडे भर दूध देनेवाली हैं। सींग से पकडकर राजा ने शस्त्र से उनका वध किया ॥२६॥

"देव, पितर, इन्द्र असुर और राक्षस चिल्ला उठे, 'हाय! अधर्म हुआ! जो गौ पर शस्त्र पडा' ॥२७॥

तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा ।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं ॥ २८ ॥

एसो अधम्मो दण्डानं, ओक्कन्तो पुराणो अहु ।
अदूसिकायो हञ्ञन्ति, धम्मा धंसेन्ति[1] याजका ॥ २९ ॥

एवमेसो अनुधम्मो, पोराणो विञ्ञुगरहितो ।
यत्थ एदिसकं पस्सति, याजकं गरहती[2] जनो ॥ ३० ॥

एवं धम्मे वियापन्ने, विभिन्ना सुद्दवेस्सिका ।
पुथु विभिन्ना खत्तिया, पतिं भरिया अवमञ्ञथ ॥ ३१ ॥

खत्तिया ब्रह्मबन्धू च, ये चञ्ञे गोत्तरक्खिता ।
जातिवादं निरङ्कत्वा, कामानं वसमागमुन्ति ॥ ३२ ॥

एवं वुत्ते ते ब्राह्मणमहासाला भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं भो गोतम" पे० 'धम्मो पकासितो, एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसंघञ्च । उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते ति ।

ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं निट्ठितं ।

२०—नावा-सुत्तं

यस्मा हि धम्मं पुरिसो विजञ्ञा, इन्दं'व नं देवता पूजयेय्य ।
सो पूजितो तस्मिं पसन्नचित्तो, बहुस्सुतो पातुकरोति धम्मं ॥ १ ॥

तदट्ठिं कत्वान निसम्म धीरो धम्मानुधम्मं पटिपज्जमानो ।
विञ्ञू विभावी निपुणो च होति यो तादिसं भजति अप्पमत्तो ॥२॥

खुद्दं च बालं उपसेवमानो, अनागतत्थं च उसूयकं च ।
इधेव धम्मं अविभावयित्वा अवितिण्णकङ्खो मरणं उपेति ॥ ३ ॥

यथा नरो आपगं ओतरित्वा, महोदिकं सलिलं सीघसोतं ।
सो वुय्हमानो अनुसोतगामी किं सो परे सक्खति तारयेतुं ॥ ४ ॥

तथेव धम्मं अविभावयित्वा बहुस्सुतानं अनिसामयत्थं ।
सयं अजानं अवितिण्णकङ्खो किं सो परे सक्खति निज्झपेतुं ॥ ५ ॥

---

१ धंसन्ति—म० स्या । २ गरहो—क ।

"पहले केवल तीन रोग थे—इच्छा, भूख और जरा। पशु-वध से अट्ठानवे (रोग) हो गये ॥ २८ ॥

"यह हिंसा रूपी अधर्म पुराने समय से चला आ रहा है। पुरोहित लोग निर्दोषी गायों का वध करते हैं और धर्म से गिरते हैं ॥ २९ ॥

"विज्ञों से निन्दित यह नीच कर्म पुराना है। जहाँ लोग इस प्रकार के पुरोहित को देखते हैं (वहाँ) उसकी निन्दा करते हैं ॥ ३० ॥

"इस प्रकार धर्म से पतित होने पर शूद्रों और वैश्यों में फूट हो गई। क्षत्रिय भी अलग अलग हो गये। स्त्री पति का अपमान करने लगी ॥ ३१ ॥

"क्षत्रिय, ब्राह्मण और दूसरे गोत्र-रक्षक जातिवाद का नाशकर विषयों के वशीभूत हो गये" ॥ ३२ ॥

ऐसा कहने पर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान् से यह कहा.—

"आश्चर्य है, हे **गौतम** ! आश्चर्य है, हे **गौतम** ! हे **गौतम** ! जिस प्रकार कोई औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले-भटके को राह बता दे या अन्धकार में तेल प्रदीप धारण करे, जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। हम आप गौतम की शरण जाते है, धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी। आप गौतम हमें आज से जन्मपर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

ब्राह्मणधम्मिकसुत्त समाप्त।

२०—नावा सुत्त

(इस सूत्र में अच्छे गुरु का परिचय है। उसकी उपमा उस चतुर नाविक से दी गई है जो स्वयं नदी को पारकर दूसरों को भी पार कर देता है।)

मनुष्य जिनसे धर्म सीखता है, उनकी पूजा वैसी ही करनी चाहिए जैसी कि देवता इन्द्र की (करते हैं)। (इस प्रकार) पूजित वह बहुश्रुत उससे प्रसन्न चित्त हो धर्म को प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

जो बुद्धिमान् धर्म को ध्यान से सुनकर उसके अनुसार चलते हुए तत्परता के साथ वैसे गुरु की संगति करता है वह विज्ञ, समझदार और निपुण होता है ॥२॥

जो अनुदार, मूर्ख, अर्थ को न जाननेवाले और ईर्ष्यालु गुरु की संगति करता है, वह यहीं धर्म को विना समझे ही, शंकाओं को विना दूर किये ही, मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य तेज बहनेवाली विशाल नदी में उतरकर धाराके साथ बह रहा है, वह दूसरों को किस प्रकार तार सकता है ? ॥ ४ ॥

इसी प्रकार जिसने धर्म को नहीं समझा है और बहुश्रुतों से अर्थ को नहीं सुना है, विना स्वयं समझे और शंकाओं को दूर किये (वह) दूसरों को क्या सिखा सकता है ? ॥ ५ ॥

यथापि नावं दळ्हमारुहित्वा, फियेन रित्तेन समङ्गिभूतो ।
सो तारये तत्थ बहूपि अञ्ञे, तत्रूपयञ्ञू कुसलो मुतीमा ॥ ६ ॥
एवम्पि यो वेदगु भावितत्तो, बहुस्सुतो होति अवेधधम्मो ।
सो खो परे निज्झपये पजानं, सोतावधानूपनिसूपपन्नो ॥ ७ ॥
तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथ, मेधाविनं चेव बहुस्सुतं च ।
अञ्ञाय अत्थं पटिपज्जमानो, विञ्ञातधम्मो सो सुखं लभेथाति ॥ ८ ॥

नावासुत्तं निट्ठितं ।

२१—किंसील-सुत्तं

किं सीलो किं समाचारो, कानि कम्मानि ब्रूहयं ।
नरो सम्मा निविट्ठस्स उत्तमत्थं च पापुणे ॥ १ ॥
वद्धापचायी[1] अनुसुय्यको सिया कालञ्ञू चस्स गरूनं[2] दस्सनाय ।
धम्मिं कथं एरयितं खणञ्ञू, सुणेय्य सक्कच्च सुभासितानि ॥ २ ॥
कालेन गच्छे गरूनं सकासं थम्भं निरंकत्वा निवातवुत्ति ।
अत्थं धम्मं संयमं ब्रह्मचरियं, अनुस्सरे चेव समाचरे च ॥ ३ ॥
धम्मारामो धम्मरतो, धम्मे ठितो धम्मविनिच्छयञ्ञू ।
नेवाचरे धम्मसन्दोसवादं तच्छेहि नीयेथ सुभासितेहि ॥ ४ ॥
हस्सं जप्पं परिदेवं पदोसं, मायाकतं कुहनं गिद्धिमानं ।
सारम्भकक्कसकसावमुच्छं हित्वा चरे वीतमदो ठितत्तो ॥ ५ ॥
विञ्ञातसारानि सुभासितानि, सुतं च विञ्ञातं समाधिसारं ।
न तस्स पञ्ञा च सुतं च वड्ढति, यो साहसो होति नरो पमत्तो ॥६॥
धम्मे च ये अरियपवेदिते रता अनुत्तरा ते वचसा मनसा कम्मना[3] च ।
ते सन्ति सोरच्च-समाधि-सण्ठिता, सुतस्स पञ्ञाय च सारमज्झगूति ॥७॥

किंसीलसुत्तं निट्ठितं

---

१ वद्धापचायी—क । २. गरु—म । ३ कुरुवन्दी—म । ४ गुरुनं—सी ।
५ ६ ७ अवारव अवारव कुक्‍कु—सी । म । ८ कम्मुना—म ।

जिस प्रकार पतवार और डाँडों से युक्त मजबूत नाव पर चढ़कर चतुर, बुद्धिमान् नाविक उससे और लोगों को भी पार करता है, उसी प्रकार ज्ञानी, संयमी बहुश्रुत सांसारिक बातों से अविचलित रहता है। वह सुनने के लिए इच्छुक योग्य लोगों को धर्म सिखाता है ॥ ६-७ ॥

इसलिए बुद्धिमान्, बहुश्रुत साधु पुरुष की संगति करनी चाहिए, जो अर्थ को समझ कर धर्म के अनुसार चलता है। ऐसा वह धर्म को जानकर सुख को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

नावासुत्त समाप्त।

२१—किंसील-सुत्त

[इस सूत्र में दिखाया गया है कि मुक्ति गवेषक को कौन से दुर्गुण दूर करने चाहिए और कौन से सद्गुण अपने में लाने चाहिए।]

कौन शील, कौन आचरण और कौन से कर्म करके (धर्म में) सुप्रतिष्ठित मनुष्य उत्तमार्थ को प्राप्त करता है ? ॥१॥

बुद्ध :—

"वह बड़ों का आदर करे, ईर्ष्यालु न हो, उचित समय पर गुरु के दर्शन करे, धर्म-कथा सुनने का उचित क्षण जाने और सम्मान के साथ सदुपदेशों को सुने ॥२॥

"धृष्टता को दूरकर विनीत भाव से उचित समय पर गुरुजनों के पास जाये और अर्थ, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्य का स्मरण कर उनका आचरण करे ॥ ३ ॥

"वह धर्म में रमते हुए, धर्म में रत हो, धर्म में स्थित हो, धार्मिक विनिश्चय को जानते हुए, धर्म को दूषित करनेवाली चर्चा में न लगे। सत्य सदुपदेशों से समय बितावे ॥ ४ ॥

"अट्टहास, गप्प, विलाप, द्वेष, कपट, ढोंग, लोलुपता, अभिमान, स्पर्धा, मल और मोह को छोड़कर मद रहित और स्थिर चित्त हो विचरण करे ॥ ५ ॥

"ज्ञान सदुपदेशों का सार है। समाधि विद्या और ज्ञान का सार है। जो मनुष्य असावधान और प्रमत्त है, उसके ज्ञान और श्रुति की वृद्धि नहीं होती ॥६॥

"जो आर्यों के देशित धर्म में रत हैं, वे मन, वचन तथा शरीर से उत्तम हैं। शान्ति, शिष्टता तथा समाधि में स्थित हो श्रुति और प्रज्ञा के सार को प्राप्त करते हैं" ॥ ७ ॥

किंसीलसुत्त समाप्त।

२२—उट्ठान-सुत्तं

उट्ठहथ निसीदथ, को अत्थो सुपिनेन वो ।
आतुरानं हि का निद्दा, सल्लविद्धान रुप्पतं ॥ १ ॥

उट्ठहथ निसीदथ, दळ्हं सिक्खथ सन्तिया ।
मा वो पमत्ते विञ्ञाय, (मच्चुराजा) अमोहयित्थ वसानुगे ॥२॥

याय देवा मनुस्सा च, सिता तिट्ठन्ति अत्थिका ।
तरथेतं विसत्तिकं, खणो वो[१] मा उपच्चगा ।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता ॥ ३ ॥

पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो ।
अप्पमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लमत्तनो ति ॥ ४ ॥

उट्ठानसुत्तं निट्ठितं ।

२३—राहुल-सुत्तं

कच्चि अभिण्हसंवासा, नावजानासि पण्डितं ।
उक्काधारो मनुस्सानं, कच्चि अपचितो तया ॥ १ ॥

नाहं अभिण्हसंवासा, अवजानामि पण्डितं ।
उक्काधारो[२] मनुस्सानं, निच्चं अपचितो मया ॥ २ ॥

वत्थुगाथा

पञ्चकामगुणे हित्वा, पियरूपे मनोरमे ।
सद्धाय घरा निक्खम्म, दुक्खस्सन्तकरो भव ॥ ३ ॥

मित्ते भजस्सु कल्याणे, पन्तं[३] च[४] सयनासनं ।
विवित्तं अप्पनिग्घोसं मत्तञ्ञू होहि भोजने ॥ ४ ॥

चीवरे पिण्डपाते च, पच्चये सयनासने ।
एतेसु तण्हं माकासि मा लोकं पुनरागमि ॥ ५ ॥

संवुतो पातिमोक्खस्मिं इन्द्रियेसु च पञ्चसु ।
सति कायगतात्यत्थु निब्बिदाबहुलो भव ॥ ६ ॥

---

१ वो—सी म० । २ ओक्काधरो—स्या० क । ३-४ पन्तञ्च—सी ।

२२—उट्ठान-सुत्त

[इस सूत्र में उद्योगी हो दु:ख का अन्त करने का उपदेश है ।]

जागो ! बैठो ! सोने से तुम्हें क्या लाभ ? (दु:ख रूपी) तीर लगे रोगियो को नींद कैसी ? ॥ १ ॥

जागो ! बैठो ! दृढता के साथ शान्ति के लिए शिक्षित हो जाओ । प्रमत्त जान मृत्युराज तुम्हें मोहित न कर ले, वश न मे कर ले ॥ २ ॥

इस तृष्णा को पार करो, जिस पर अवलम्बित और स्थित हो देव और मनुष्य विषय-भोग के पीछे पडते हैं । अवसर को मत जाने दो । अवसर को खोनेवाले नरक में पडकर पछ्ताते हैं ॥ ३ ॥

प्रमाद ही रज है । प्रमाद के कारण ही रज उत्पन्न होता है । अप्रमाद और विद्या से अपने (दु:ख रूपी) तीर को निकाल दो ॥ ४ ॥

उट्ठानसुत्त समाप्त ।

२३—राहुल-सुत्त

[इस सूत्र में सांसारिक कामनाओं को दूरकर निर्वाण प्राप्त करने का उपदेश है । यह उपदेश भगवान् नित्यप्रति अपने पुत्र राहुल को दिया करते थे ।]

बुद्ध:—

क्या अति परिचय के कारण पण्डित का अपमान तो नहीं करते ? क्या मनुष्यों में प्रदीप धारण करनेवाले तुम से पूजित हैं ? ॥ १ ॥

राहुल:—

अति परिचय के कारण मैं पण्डित का अपमान नहीं करता । मनुष्यों में प्रदीप धारण करनेवाले नित्य मुझसे पूजित हैं ॥ २ ॥

बुद्ध:—

पाँच प्रकार के प्रिय और मनोरम विषय भोगों को त्यागकर श्रद्धा पूर्वक बेघर हो दु ख का अन्त करो ॥ ३ ॥

कल्याण मित्रों की सगति करो । ग्राम से दूर एकान्त, शान्त स्थान में रहो । भोजन में उचित मात्रा को जानो ॥ ४ ॥

चीवर, भिक्षा तथा निवासस्थान—इन वस्तुओं में तृष्णा न करो । इस ससार में फिर न आओ ॥ ५ ॥

प्रातिमोक्ष* के अनुसार सयम रखो । पाँच इन्द्रियो को वश में करो । शारीरिक गन्दगी का स्मरण करो । वैराग्य-भाव को बढाओ ॥ ६ ॥

२२—उट्ठान-सुत्तं

उट्ठहथ निसीदथ, को अत्थो सुपिनेन वो ।
आतुरानं हि का निद्दा, सल्लविद्धान रुप्पतं ॥ १ ॥

उट्ठहथ निसीदथ, दळ्हं सिक्खथ सन्तिया ।
मा वो पमत्ते विञ्ञाय, (मच्चुराजा) अमोहयित्थ वसानुगे ॥२॥

याय देवा मनुस्सा च, सिता तिट्ठन्ति अत्थिका ।
तरथेतं विसत्तिकं, खणो वे मा उपच्चगा ।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता ॥ ३ ॥

पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो ।
अप्पमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लमत्तनो ति ॥ ४ ॥

उट्ठानसुत्तं निट्ठितं ।

२३—राहुल सुत्तं

कच्चि अभिण्हसंवासा, नावजानासि पण्डितं ।
उक्काधारो मनुस्सानं, कच्चि अपचितो तया ॥ १ ॥

नाहं अभिण्हसंवासा, अवजानामि पण्डितं ।
उक्काधारो[१] मनुस्सानं, निच्चं अपचितो मया ॥ २ ॥

वत्थुगाथा

पञ्चकामगुणे हित्वा, पियरूपे मनोरमे ।
सद्धाय घरा निक्खम्म, दुक्खस्सन्तकरो भव ॥ ३ ॥

मित्ते भजस्सु कल्याणे पन्तं[२] च सयनासनं ।
विवित्तं अप्पनिग्घोसं, मत्तञ्ञू होहि भोजने ॥ ४ ॥

चीवरे पिण्डपाते च, पच्चये सयनासने ।
एतेसु तण्हं माकासि मा लोकं पुनरागमि ॥ ५ ॥

संवुतो पातिमोक्खस्मिं, इन्द्रियेसु च पञ्चसु ।
सति कायगतात्यत्थु, निब्बिदाबहुलो भव ॥ ६ ॥

---

१ [illegible] । २ [illegible] । ३४ [illegible] ।

लुभानेवाले, रागयुक्त निमित्तों को त्यागो। एकाग्र और समाधिस्थ हो मन में अशुभ की भावना करो ॥ ७ ॥

अनिमित्त (= निर्वाण) की भावना करो। अभिमान-प्रवृत्ति को दूर करो। अभिमान का अन्त कर शान्त चित्त हो विचरण करोगे ॥ ८ ॥

इस प्रकार नित्यप्रति भगवान् आयुष्मान् **राहुल** को इन गाथाओं में उपदेश देते थे।

राहुलसुत्त समाप्त।

२४—वङ्गीस-सुत्त

[वङ्गीस निधन-प्राप्त अपने उपाध्याय निग्रोधकप्प की गति के विषय में भगवान् से पूछते हैं। भगवान् बताते हैं कि तृष्णा का नाशकर वे निर्वाण को प्राप्त हुए हैं।]

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् **आलवी** में, **अग्गालव** चैत्य में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् **वङ्गीस** के उपाध्याय **निग्रोधकप्प स्थविर अग्गालव** चैत्य में अभी तुरन्त निर्वाण को प्राप्त हुए थे। तब एकान्त मे ध्यानावस्थित आयुष्मान् **वङ्गीस** के मन में यह वितर्क उठा—"क्या मेरे **उपाध्याय** निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं?" तब आयुष्मान् **वङ्गीस** सायकाल ध्यान से उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान् को अभिनन्दन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् **वङ्गीस** ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते! एकान्त में ध्यानावस्थित मेरे मन में यह वितर्क उठा—'क्या मेरे उपाध्याय निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं?" तब आयुष्मान् **वङ्गीस** ने आसन से उठकर एक कन्धे पर चीवर को डाल भगवान् को प्रणाम् कर गाथाओं में कहा —

"इसी जन्म में शकाओं को दूर करनेवाले महाप्रज्ञ शास्ता से उन नामी, यशस्वी और शान्त भिक्षु के विषय में पूछते हैं, जिनका देहान्त **अग्गालव** चैत्य में हुआ था ॥ १ ॥

"आप ने उस ब्राह्मण का नाम **निग्रोधकप्प** रखा था। मुक्ति के अपेक्षक दृढ पराक्रमी (वे) निर्वाणदर्शी आपको नमस्कार करते हुए विचरण करते थे ॥ २ ॥

"सर्वदर्शी **शाक्य**! आपके उस शिष्य के विषय में हम सब जानना चाहते हैं, हमारे कान सुनने को तैयार हैं। आप हमारे शास्ता हैं, आप सर्वोत्तम है ॥ ३ ॥

"महाप्रज्ञ! हमारी शका दूर करें। मुझे बतावें कि वे निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं। देवताओं के सहस्र-नेत्र शक्र (= इन्द्र) की तरह सर्वदर्शी आप हमारे बीच बोलें ॥ ४ ॥

निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रागूपसंहितं ।
असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं ॥७॥
अनिमित्तं च भावेहि, मानानुसयमुज्जह ।
ततो मानाभिसमया, उपसन्तो चरिस्ससीति ॥८॥
इत्थं सुदं भगवा आयस्मन्तं राहुलं इमाहि गाथाहि अभिण्हं ओवदतीति ।

राहुलसुत्तं निट्ठितं ।

२४—वङ्गीस-सुत्तं[1]

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये । तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स उपज्झायो निग्रोधकप्पो नाम थेरो अग्गाळवे चेतिये अचिरपरिनिब्बुतो होति । अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो"ति ? अथ खो आयस्मा वङ्गीसो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं एतदवोच—"इध मय्हं भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि–परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो"ति ? अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"पुच्छाम[2] सत्थारं अनोमपञ्ञं, दिट्ठेव धम्मे यो विचिकिच्छानं छेत्ता ।
अग्गाळवे कालमकासि भिक्खु ञातो यसस्सी अभिनिब्बुतत्तो ॥१॥
निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं तया कतं भगवा ब्राह्मणस्स ।
सो तं नमस्सं अचरी मुत्यपेक्खो, आरद्धविरियो दळ्हधम्मदस्सी ॥२॥
तं सावकं सक्य[3] मयम्पि सब्बे अञ्ञातुमिच्छाम समन्तचक्खु ।
समवट्ठिता नो सवणाय सोता तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि ॥३॥
छिन्देव नो विचिकिच्छं ब्रूहि मेतं परिनिब्बुतं वेदय भूरिपञ्ञ ।
मज्झेव[4] नो भास समन्तचक्खु सक्को'व देवानं सहस्सनेत्तो ॥४॥

---

१ निग्रोधकप्पसुत्त—म । २ पुच्छामि—म । ३ सक्क—म० । ४ मज्झे च—स्या म ।

लुभानेवाले, रागयुक्त निमित्तों को त्यागो। एकाग्र और समाधिस्थ हो मन में अशुभ की भावना करो ॥ ७ ॥

अनिमित्त (= निर्वाण) की भावना करो। अभिमान-प्रवृत्ति को दूर करो। अभिमान का अन्त कर शान्त चित्त हो विचरण करोगे ॥ ८ ॥

इस प्रकार नित्यप्रति भगवान् आयुष्मान् राहुल को इन गाथाओं में उपदेश देते थे।

राहुलसुत्त समाप्त।

२४–वङ्गीस-सुत्त

[वङ्गीस निधन-प्राप्त अपने उपाध्याय निग्रोधकप्प की गति के विषय में भगवान् से पूछते हैं। भगवान् बताते हैं कि तृष्णा का नाशकर वे निर्वाण को प्राप्त हुए हैं।]

ऐसा मैंने सुनाः—

एक समय भगवान् आलवी में, अग्गालव चैत्य में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् वङ्गीस के उपाध्याय **निग्रोधकप्प स्थविर अग्गालव** चैत्य में अभी तुरन्त निर्वाण को प्राप्त हुए थे। तब एकान्त में ध्यानावस्थित आयुष्मान् **वङ्गीस** के मन में यह वितर्क उठा—"क्या मेरे **उपाध्याय** निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं ?" तब आयुष्मान् **वङ्गीस** सायकाल ध्यान से उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान् को अभिनन्दन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् **वङ्गीस** ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते! एकान्त में ध्याना-वस्थित मेरे मन में यह वितर्क उठा—'क्या मेरे उपाध्याय निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं ?" तब आयुष्मान् **वङ्गीस** ने आसन से उठकर एक कन्धे पर चीवर को डाल भगवान् को प्रणाम् कर गाथाओं में कहा —

"इसी जन्म में शकाओं को दूर करनेवाले महाप्रज्ञ शास्ता से उन नामी, यशस्वी और शान्त भिक्षु के विषय में पूछते हैं, जिनका देहान्त **अग्गालव** चैत्य में हुआ था ॥ १ ॥

"आप ने उस ब्राह्मण का नाम **निग्रोधकप्प** रखा था। मुक्ति के अपेक्षक दृढ पराक्रमी (वे) निर्वाणदर्शी आपको नमस्कार करते हुए विचरण करते थे ॥ २ ॥

"सर्वदर्शी **शाक्य**! आपके उस शिष्य के विषय में हम सब जानना चाहते हैं, हमारे कान सुनने को तैयार हैं। आप हमारे शास्ता हैं, आप सर्वोत्तम हैं ॥ ३ ॥

"महाप्रज्ञ! हमारी शका दूर करें। मुझे बतावें कि वे निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं। देवताओं के सहस्र नेत्र शक्र (= इन्द्र) की तरह सर्वदर्शी आप हमारे बीच बोले ॥ ४ ॥

ये केचि गन्था इध मोहमग्गा, अञ्ञाणपक्खा विचिकिच्छठाना।
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, चक्खुं हि एतं परमं नरानं॥५॥
नो चे हि जातु पुरिसो किलेसे, वातो यथा अब्भघनं विहाने।
तमोवस्स निवुतो सब्बलोको, न जोतिमन्तोपि नरा तपेय्युं॥६॥
धीरा च पज्जोतकरा भवन्ति, तं तं अहं धीर[1] तथेव मञ्ञे।
विपस्सिनं जानमुपागमम्हा[2], परिसासु नो आविकरोहि कप्पं॥७॥
खिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं, हंसोव पग्गय्ह सणि[3] निकूज।
बिन्दुस्सरेन सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्जुगता सुणोम॥८॥
पहीनजातिमरणं असेसं, निग्गय्ह धोनं[4] वदेस्सामि धम्मं।
न कामकारो हि पुथुज्जनानं, संखेय्यकारो च तथागतानं॥९॥
संपन्नवेय्याकरणं तवेदं, समुज्जुपञ्ञस्स[5] समुग्गहीतं।
अयमञ्जलि पच्छिमो सुप्पणामितो, मा मोहयी जानमनोमपञ्ञ॥१०॥
परोवरं अरियधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जानमनोमविरिय[6]।
वारि यथा घम्मनि घम्मतत्तो, वाचाभिकङ्खामि सुतं[7] पवस्स[8]॥११॥
यदत्थिकं[9] ब्रह्मचरियं अचारि[10], कप्पायनो कच्चिस्स तं अमोघं।
निब्बायि सो अनुपादिसेसो[11], यथा विमुत्तो अहु तं सुणोम"॥१२॥
अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे (इति भगवा), कण्हस्स[12] सोतं दीघरत्तानुसयितं।
अतारि जातिमरणं असेसं, इच्चब्रवी भगवा पञ्चसेट्ठो॥१३॥
"एस सुत्वा पसीदामि वचो ते इसिसत्तम।
अमोघं किर मे पुट्ठं, न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो॥१४॥
"यथावादी तथाकारी, अहु बुद्धस्स सावको।
अच्छिदा[13] मच्चुनो जालं ततं मायाविनो दळ्हं॥१५॥
"अद्दस भगवा आदिं, उपादानस्स कप्पियो।
अच्चगा वत कप्पायनो, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं"ति॥१६॥

वङ्गीससुत्तं निट्ठितं

---

१ वीर—म। २ जानमुपगमम्हा—म०। ३ सणिकं—म सी। ४ धोनं—सी। ५ समुज्जुपञ्ञस्स—स्या क। ६ जानमनोमवीर—म। ७-८ सुतस्स वस्स—स्या। ९ यदत्थिकं—री। १० अचरि—म। ११ आदु सउपादिसेसो—सी म। १२ कण्हस्स—क। १३ अच्छिदा—म।

"यहाँ मोह की ओर ले जानेवाली, अज्ञान सम्बन्धी, शंका उत्पादक जो कुछ ग्रन्थियाँ हैं, तथागत के पास पहुँचने पर, वे सब नष्ट हो जाती है। तथागत ही मनुष्यों के उत्तम चक्षु हैं॥ ५॥

"जैसे हवा आसमान से बादलों को दूर कर देती है, वैसे ही यदि आप जैसे मनुष्य (लोगों की) वासनाओं को दूर नहीं करेंगे तो संसार मोह से आच्छादित रहेगा और प्रकाशमान् पुरुष भी चमक नहीं पायेंगे॥ ६॥

"धीर प्रकाश देनेवाले हैं। धीर! मैं आप को भी वैसा ही समझता हूँ। विशुद्धदर्शी, ज्ञानी (आप) के पास (हम) आये हैं। परिषद में हमें **निग्रोधकप्प** के विषय में बतावें॥ ७॥

"जिस प्रकार हंस गला फैला कर मधुर और सुरीला निकूजन करता है, उसी प्रकार मधुर वाणी शीघ्र छेड़ें। हम सब उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे॥ ८॥

"आप ने नि:शेष जन्म मृत्यु का नाश किया है। मैं सुपरिशुद्ध आप से उपदेश के लिए सानुरोध निवेदन करूँगा। पुथुजनों (=साधारण मनुष्यों) की इच्छायें पूरी नहीं होतीं। तथागत जानकारी के साथ कर्म करते हैं॥ ९॥

"हे ऋजुप्रज्ञ! आप के इस सम्पूर्ण कथन को (हमने) अच्छी तरह ग्रहण किया है। यह मेरा अन्तिम प्रणाम है। हे महाप्रज्ञ! (हमें) भ्रम में न रखें॥ १०॥

"महाप्रज्ञ! आरम्भ से अन्त तक आर्य-धर्म को जानकर (आप हम को) भ्रम में न रखें। जिस प्रकार उष्ण ऋतु में गर्मी से पीड़ित मनुष्य पानी के लिए लालायित है, उसी प्रकार मैं आप के वचन की आकांक्षा करता हूँ। आप वाणी की वर्षा करें॥ ११॥

"जिस अर्थ के लिए **कप्पायन** ने ब्रह्मचर्य का पालन किया था, क्या वह सफल हुआ? वे निर्वाण को प्राप्त हुए या जन्मशेष रह गये? हम सुनना चाहते हैं कि उनकी मुक्ति कैसी हुई है" ॥ १२॥

बुद्ध:—नाम-रूप की तृष्णा रूपी दीर्घकाल से बहनेवाली मार की सरिता को नाश कर वह नि:शेष जन्म-मृत्यु से पार हो गया॥ १३॥

वङ्गीस:—उत्तम ऋषि! आपकी बात को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। मेरा प्रश्न खाली नहीं गया। आपने मेरी उपेक्षा नहीं की॥ १४॥

बुद्ध के (वे) शिष्य यथावादी तथाकारी रहे हैं। उन्होंने मार के विस्तृत, मायवी, दृढ जाल को टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया॥ १५॥

भगवान्! **कप्पिय** ने तृष्णा के हेतु को जान लिया था। **कप्पायन** अति दुस्तर मृत्यु-राज्य को पार कर गये हैं॥ १६॥

वङ्गीससुत्त समाप्त।

२५—सम्मापरिब्बाजनिय-सुत्तं

"पुच्छाम मुनि पहूतपञ्ञं, तिण्णं पारगतं परिनिब्बुतं ठितत्तं।
निक्खम्म घरा पनुज्ज कामे, कथं (भिक्खु) सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य"॥१॥
"यस्स मङ्गला समूहता (इति भगवा), उप्पाता[1] सुपिना च लक्खणा च।
सो मङ्गलदोसविप्पहीनो[2], सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥२॥
रागं विनयेथ मानुसेसु, दिब्बेसु कामेसु चापि भिक्खु।
अतिक्कम्म भवं समेच्च धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥३॥
विपिट्ठि कत्वा पेसुनानि कोधं कदरियं जहेय्य भिक्खु।
अनुरोधविरोधविप्पहीनो सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥४॥
हित्वा पियं च अप्पियं च, अनुपादाय अनिस्सितो कुहिञ्चि।
संयोजनियेहि विप्पमुत्तो सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥५॥
न सो उपधीसु सारमेति आदानेसु विनेय्य छन्दरागं।
सो अनिस्सितो अनञ्ञनेय्यो सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥६॥
वचसा मनसा च कम्मना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मं।
निब्बानपदाभिपत्थयानो सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥७॥
यो वन्दति मं ति न उण्णमेय्य अक्कुट्ठोऽपि न सन्धियेथ भिक्खु।
लद्धा परभोजनं न मज्जे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥८॥
लोभं च भवं च विप्पहाय, विरतो छेदनबन्धना च भिक्खु।
सो तिण्णकथंकथो विसल्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥९॥
सारुप्पमत्तनो विदित्वा न च भिक्खु हिंसेय्य कञ्चि लोके।
यथातथियं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१०॥
यस्सानुसया न सन्ति केचि मूला[3] अकुसला समूहतासे।
सो निरासयो[4] अनासयानो[5], सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥११॥
आसवखीणो पहीनमानो सब्बं रागपथं उपातिवत्तो।
दन्तो परिनिब्बुतो ठितत्तो सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१२॥

---

१ उप्पाता—सी । २-३ समङ्गलदोसविप्पहीनो—सी । ४ मूला च—म । ५ निरासयो—स्या । निरासो—म० । ६ अनासितानो—म०, अनासयानो—स्या ।

२५—सम्मापरिब्बाजनिय-सुत्त

[इस सूत्र में भगवान् ने यह दिखाया है कि भिक्षु को किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।]

"महाप्रज्ञ, भव को पारकर मुक्त, स्थितात्मा मुनि से (हम) पूछते हैं कि विषयों का त्याग कर भिक्षु किस प्रकार सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ?" ॥ १ ॥

बुद्ध :—"जिसको मगल, उत्पात, स्वप्न और लक्षणों में विश्वास नहीं रहा, जो शकुन-अपशकुन से मुक्त है, वह भिक्षु सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ २ ॥

"जो (भिक्षु) मनुष्य-कामों तथा दिव्य-कामों के प्रति अनुराग त्याग, धर्म को अच्छी तरह जान, भव को पारकरता है, वह सम्यक् रूप से ससार मे विचरण करता है ॥ ३ ॥

"(जो) भिक्षु चुगली तथा क्रोध को त्याग, कृपणता को दूर कर, अनुरोध-विरोध से मुक्त होता है, वह सम्यक् रूप से ससार मे विचरण करता है ॥ ४ ॥

"प्रिय-अप्रिय को छोड, कहीं भी अनुराग या तृष्णा न कर, बन्धनों से विमुक्त हो वह सम्यक् रूप से ससार मे विचरण करता है ॥ ५ ॥

"जो परिग्रह मे सार नही देखता, वह विषयों के प्रति अनुराग को त्याग, तृष्णा रहित हो, दूसरों का अनुसरण न कर सम्यक् रूप से ससार मे विचरण करता है ॥६॥

"वचन, मन तथा कर्म से विरोध न कर, अच्छी तरह धर्म को जान, निर्वाण-पद का आकाक्षी हो वह सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ॥ ७ ॥

"'दूसरे मेरी वन्दना करते हैं'—सोच जो भिक्षु गर्व नहीं करता, आक्रोश करने पर भी वैमनस्य नहीं करता, दूसरों का भोजन प्राप्तकर प्रमत्त नहीं होता, वह सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ॥ ८ ॥

"(जो) भिक्षु लोभ और तृष्णा को त्याग, वध-बन्धन से रहित हो, सशय से परे हो, निष्काम होता है, वह सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ॥९॥

"भिक्षु अपनी अनुरूपता को जान ससार में किसी की हिंसा न करे। यथार्थ रूप से धर्म को जान वह सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ॥१०॥

"जिसमें कुछ भी वासनाएँ नहीं हैं और जिसने बुराइयों को जड से नष्ट कर दिया है, तृष्णा तथा वासना रहित वह सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ॥ ११॥

"वासना क्षीण, अभिमान-प्रहीण, सम्पूर्ण रागपथ पार गया, दान्त, उपशान्त, स्थितप्रज्ञ वह सम्यक् रूप से ससार में विचरण करता है ॥१२॥

सद्धो मुतवा नियामदस्सी, वग्गगतेसु न वग्गसारी धीरो ।
लोभं दोसं विनेय्य पटिघं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१३॥

संसुद्धजिनो विवटच्छदो,[1] धम्मेसु वसी पारगू अनेजो ।
सङ्खारनिरोधञाणकुसलो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१४॥

अतीतेसु अनागतेसु चापि, कप्पातीतो अतिच्च सुद्धिपञ्ञो ।
सब्बायतनेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१५॥

अञ्ञाय पदं समेच्च धम्मं, विवटं दिस्वान पहानमासवानं ।
सब्बूपधीनं परिक्खयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ' ॥१६॥

'अद्धा हि भगवा तथेव एतं, यो सो एवं विहारी दन्तो भिक्खु ।
सब्बसंयोजनियं[2] च वीतिवत्तो[3], सम्मा सो लोके परिब्बजेय्या 'ति ॥१७॥

सम्मापरिब्बाजनियसुत्तं निट्ठितं

२६—धम्मिक-सुत्त

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो धम्मिको उपासको पञ्चहि उपासक सतेहि सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवा देत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ कथंकरो सावको साधु होति ।
यो वा अगारा अनगारमेति[4], अगारिनो वा पनुपासकासे ॥१॥

तुवं[5] हि[6] लोकस्स सदेवकस्स, गतिं पजानासि परायणं च ।
न चत्थि तुल्यो निपुणत्थदस्सी तुवं हि बुद्धं पवरं वदन्ति ॥२॥

सब्बं तुवं ञाणमवेच्च धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकम्पमानो ।
विवटच्छदासि समन्तचक्खु विरोचसि विमलो सब्बलोके ॥३॥

आगच्छि ते सन्तिके नागराजा एरावणो नाम जिनो ति सुत्वा ।
सो पि तया मन्तयित्वा अज्झगमा साधूति सुत्वान पतीतरूपो ॥४॥

---

१ विवट्टच्छदो—म । २-३ सब्बसंयोजनियातीतो—म । ४ अनगारमेति— सी । ५-६ तुवंहि—म । ७ विवट्टच्छदो—म० ।

"श्रद्धालु, श्रुतिमान्, निर्वाणपथदर्शी, दलबन्दियों में किसी का पक्ष न लेनेवाला वह धीर लोभ, द्वेष तथा कोप को दूरकर सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १३ ॥

"सुविशुद्ध, आत्मजित्, अविद्या रूपी पर्दे से मुक्त, वशीप्राप्त, पारङ्गत, अविचलित, संस्कारों के नाश में कुशल वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १४ ॥

"जो शुद्ध-प्रज्ञ भूत तथा भविष्य की बातों से परे है, सब विषयों से मुक्त है, वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १५ ॥

"आर्यसत्यों को जान, धर्म को समझ, वासनाओं के प्रहाण से निर्वाण को साफ-साफ देख, सभी आसक्तियों को दूरकर वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है" ॥ १६ ॥

"सचमुच, भगवन्! यह ऐसी ही है। इस प्रकार विहार करनेवाला, दान्त भिक्षु सब बन्धनों से परे हो सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है" ॥ १७ ॥

सम्मापरिब्बाजनियसुत्त समाप्त।

२६—धम्मिक-सुत्त

[इस सूत्र में भिक्षु-धर्म तथा गृहस्थ-धर्म अलग अलग दिखाये गये हैं।]

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवनाराम** में विहार करते थे। उस समय **धम्मिक** उपासक पाँच सौ उपासकों के साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास जा भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे **धम्मिक** उपासक ने गाथाओं में भगवान् से कहा —

"महाप्रज्ञ गौतम! मैं आपसे पूछता हूँ कि किस आचरण का श्रावक अच्छा होता है? घर से निकल कर बेघर होनेवाला या गृहस्थ उपासक? ॥ १ ॥

"देव सहित लोगों की गति और विमुक्ति को आप ही जानते हैं। आपके समान निपुण अर्थदर्शी कोई नहीं है। (लोग) आप ही को उत्तम बुद्ध बताते हैं ॥२॥

"आपने धर्म सम्बन्धी पूरा ज्ञान प्राप्त कर अनुकम्पा पूर्वक प्राणियों को (वह) प्रकाशित किया है। सर्वदर्शी! आप (अविद्या रूपी) पर्दे से मुक्त हैं, निर्मल रूप से सारे संसार में सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

"आपको 'जिन' सुनकर '**ऐरावण**' नामक हस्तिराज आपके पास आया था। वह भी आपसे वार्तालाप कर (धर्म) सुनकर प्रसन्न हो प्रशंसा कर चला गया ॥ ४ ॥

राजापि यं वेस्सवणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्छमानो ।
तस्सापि त्वं पुच्छितो ब्रूसि धीर, सो चापि सुत्वान पतीतरूपो ॥५॥
ये केचिमे तित्थिया वादसीला, आजीविका वा यदि वा निगण्ठा ।
पञ्ञाय तं नातितरन्ति सब्बे, ठितो वजन्तं विय सीघगामिं ॥६॥
ये केचिमे ब्राह्मणा वादसीला, वुद्धा चापि ब्राह्मणा सन्ति केचि ।
सब्बे तयि अत्थबद्धा भवन्ति, ये चापि चञ्ञे वादिनो मञ्ञमाना ॥७॥
अयं हि धम्मो निपुणो सुखो च यो'यं तया भगवा सुप्पवुत्तो ।
तमेव सब्बं सुस्सूसमाना, त्वं नो वद पुच्छितो बुद्धसेट्ठ ॥८॥
सब्बेपिमे भिक्खवो संनिसिन्ना, उपासका चापि तथेव सोतुं ।
सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं, सुभासितं वासवस्सेव देवा' ॥ ९ ॥
'सुणाथ मे भिक्खवो सावयामि वो, धम्मं धुतं तं च धराथ सब्बे ।
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेथ नं अत्थदस्सी' मुतीमा ॥ १० ॥
न' वे विकाले विचरेय्य भिक्खु, गामं च पिण्डाय चरेय्य काले ।
अकालचारिं हि सजन्ति संगा, तस्मा विकाले न चरन्ति बुद्धा ॥ ११ ॥
रूपा च सद्दा च रसा च गंधा, फस्सा च ये संमदयन्ति सत्ते ।
एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं, कालेन सो पविसे पातरासं ॥ १२ ॥
पिण्डं च भिक्खु समयेन लद्धा एको पटिक्कम्म रहो निसीदे ।
अज्झत्तचिन्ती न मनो बहिद्धा निच्छारये संगहितत्तभावो ॥ १३ ॥
सचेपि सो सल्लपे सावकेन, अञ्ञेन वा केनचि भिक्खुना वा ।
धम्मं पणीतं तमुदाहरेय्य, न पेसुणं नो'पि परूपवादं ॥ १४ ॥
वादं हि एके पटिसेनियन्ति, न ते पसंसाम परित्तपञ्ञे ।
ततो ततो ने पसजन्ति संगा चित्तं हि ते तत्थ गमेन्ति दूरे ॥ १५ ॥
पिण्डं विहारं सयनासनं च आपं च सङ्घाटिरजूपवाहनं ।
सुत्वान धम्मं सुगतेन देसितं सङ्खाय सेवे वरपञ्ञसावको ॥ १६ ॥
तस्मा हि पिण्डे सयनासने च आपे च सङ्घाटिरजूपवाहने ।
एतेसु धम्मेसु अनूपलित्तो भिक्खु यथा पोक्खरे वारिबिन्दु ॥ १७ ॥

१ तम्पीति—म । सब्बे मर्म—स्या । ३. त—म सी । ३ आचारो—म० ।
४ ओ—म० ।

"राजा वैश्रवण कुवेर भी धर्म पूछने के लिए आपके पास आया था। धीर! आपने उसके प्रश्न का भी उत्तर दिया, और वह भी (आपकी बात) सुनकर प्रसन्न हो चला गया ॥ ५ ॥

"जितने भी वादी तीर्थक, आजीवक या निर्ग्रन्थ हैं, वे सब प्रज्ञा में आपको वैसे ही नहीं पा सकते जैसे कि शीघ्र चलनेवाले को खड़ा रहनेवाला ॥ ६ ॥

"जितने भी वादी ब्राह्मण हैं (जिनमें) कुछ वृद्ध ब्राह्मण भी हैं, वादी समझे जानेवाले जितने भी और लोग हैं, वे सब अर्थ की बात पूछने के लिए आपही के पास आते हैं ॥ ७ ॥

"भगवान्! आपका सुदेशित यह धर्म गम्भीर और सुखकर है। (हम) सब उसी के सुनने के इच्छुक हैं। श्रेष्ठ बुद्ध! पूछने पर हमें उपदेश करें ॥ ८ ॥

"(यहाँ) सुनने को बैठे ये सब भिक्षु और उपासक निर्मल बुद्ध के अवगत धर्म को (वैसे ही) सुनें जैसे कि इन्द्र के सदुपदेश को देवता (सुनते हैं)" ॥९॥

बुद्ध :—"भिक्षुओ! मुझे सुनो, मैं तुम्हें निर्मल धर्म सुनाता हूँ। (तुम) सब उसे धारण करो। अर्थदर्शी बुद्धिमान् प्रव्रजितों के अनुरूप आचरण करें ॥१०॥

"भिक्षु असमय में विचरण न करे। समय पर भिक्षा के लिए गाँव में पैठे। असमय में विचरनेवाले को आसक्तियाँ लग जाती हैं। इसलिए ज्ञानी पुरुष असमय में विचरण नहीं करते ॥ ११ ॥

"रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श—ये सब लोगों को मोह में डाल देते हैं। इसलिए इन विषयों के प्रति तृष्णा त्याग कर भिक्षु समय में प्रातः भोजनार्थ (भिक्षा के लिए) निकले ॥ १२ ॥

"समय पर भिक्षा प्राप्तकर भिक्षु अकेले एकान्त में जा बैठे, फिर अध्यात्म चिन्तन में लगे, मन को बाहरी वस्तुओं की ओर न दौड़ावे और चित्त को एकाग्र करे ॥ १३ ॥

"यदि वह किसी शिष्य या भिक्षु से वार्तालाप करे तो मधुर धर्म की ही चर्चा करे। चुगली या पर-निन्दा न करे ॥ १४ ॥

"कुछ लोग वाद छेड़ते हैं, उन अल्प-प्रज्ञों की प्रशंसा (हम) नहीं करते। आसक्तियाँ धीरे धीरे उनको लग जाती हैं और उनका मन उसमें (= वाद में) उलझ जाता है ॥ १५ ॥

"बुद्ध के सुदेशित धर्म को सुनकर उत्तमप्रज्ञ का शिष्य भिक्षा, विहार, निवास, पानी, चीवर रँगना और धोना—इन बातों को विचारपूर्वक करे ॥१६॥

"भिक्षा, निवास, पानी, चीवर रँगना और धोना—इन बातों में भिक्षु (= वैसा ही) अनासक्त रहे जैसा कि कमलपत्र पर जलबिन्दु ॥ १७ ॥

राजापि तं वेस्सवणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्छमानो ।
तस्सापि त्वं पुच्छितो ब्रूसि धीर, सो चापि सुत्वान पतीतरूपो ॥५॥
ये केचिमे तित्थिया वादसीला, आजीविका वा यदि वा निगण्ठा ।
पञ्ञाय तं नातितरन्ति सब्बे, ठितो वजन्तं विय सीघगामि ॥६॥
ये केचिमे ब्राह्मणा वादसीला, वुद्धा चापि ब्राह्मणा सन्ति केचि ।
सब्बे तयि अत्थबद्धा भवन्ति, ये चापि अञ्ञे वादिनो मञ्ञमाना ॥७॥
अयं हि धम्मो निपुणो सुखो च, योऽयं तया भगवा सुप्पवुत्तो ।
तमेव सब्बे सुस्सूसमाना, तं नो वद पुच्छितो बुद्धसेट्ठ ॥८॥
सब्बेपिमे भिक्खवो संनिसिन्ना, उपासका चापि तथेव सोतुं ।
सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं सुभासितं वासवस्सेव देवा' ॥ ९ ॥
"सुणाथ मे भिक्खवो सावयामि वो, धम्मं धुतं तं च चराथ सब्बे ।
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेथ नं अत्थदस्सी' मुतीमा ॥ १० ॥
न वे विकाले विचरेय्य भिक्खु, गामं च पिण्डाय चरेय्य काले ।
अकालचारिं हि सजन्ति संगा, तस्मा विकाले न चरन्ति बुद्धा ॥ ११ ॥
रूपा च सद्दा च रसा च गंधा, फस्सा च ये संमदयन्ति सत्ते ।
एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं कालेन सो पविसे पातरासं ॥ १२ ॥
पिण्डं च भिक्खु समयेन लद्धा, एको पटिक्कम्म रहो निसीदे ।
अज्झत्तचिन्ती न मनो बहिद्धा निच्छारये संगहितत्तभावो ॥ १३ ॥
सचेपि सो सल्लपे सावकेन अञ्ञेन वा केनचि भिक्खुना वा ।
धम्मं पणीतं तमुदाहरेय्य न पेसुणं नोऽपि परूपवादं ॥ १४ ॥
वादं हि एके पटिसेनियन्ति, न ते पसंसाम परित्तपञ्ञे ।
ततो ततो ने पसजन्ति संगा चित्तं हि ते तत्थ गमेन्ति दूरे ॥ १५ ॥
पिण्डं विहारं सयनासनं च, आपं च सङ्घाटिरजूपवाहनं ।
सुत्वान धम्मं सुगतेन देसितं सङ्खाय सेवे वरपञ्ञसावको ॥ १६ ॥
तस्मा हि पिण्डे सयनासने च आपे च सङ्घाटिरजूपवाहने ।
एतेसु धम्मेसु अनूपलित्तो भिक्खु यथा पोक्खरे वारिबिन्दु ॥ १७ ॥

१ सब्बेपि—म । तम्मे मं—स्या । २-त—म सी । ३ अत्थदस्सी—म ।
४ वो—म० ।

"(अब) मैं तुम्हें गृहस्थ-धर्म बताता हूँ जिसके आचरण से साधु शिष्य होता है। यह पूरा भिक्षुधर्म परिग्रही से प्राप्य नहीं ॥ १८ ॥

"संसार के स्थावर और जंगम सब प्राणियों के प्रति हिंसा त्याग, न तो प्राणी का वध करे, न करावे और न करने की दूसरों को अनुमति ही दे ॥ १९ ॥

"तब दूसरे की समझे जानेवाली किसी चीज को चुराना त्याग दे, न चुरवावे और न चुराने की अनुमति ही दे। चोरी का सर्वथा परित्याग करे ॥ २० ॥

"जलते कोयले के गड्ढे की तरह विज्ञ अब्रह्मचर्य को त्याग दे। ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव हो तो परस्त्री का अतिक्रमण न करे ॥ २१ ॥

"किसी सभा या परिषद में जाकर न तो एक दूसरे को असत्य बोले, न बोलवावे और न बोलने की अनुमति ही दे। मिथ्या-भाषण को सर्वथा त्याग दे ॥ २२ ॥

"इस धर्म के इच्छुक गृहस्थ मद्यपान के परिणाम को उन्माद जानकर न तो उसका सेवन करे, न पिलावे और न पीने की अनुमति ही दे ॥ २३ ॥

"मूर्ख और दूसरे प्रमत्त लोग मद के कारण ही पाप करते हैं। इस पापस्थल को त्याग दे (जो कि) उन्मादक है, मोहक है और मूर्खों को प्रिय है ॥ २४ ॥

"प्राण-वध न करे, चोरी न करे, असत्य न बोले, मादक द्रव्य न ले, अब्रह्मचर्य और मैथुन से विरत रहे, और रात्रि में विकाल भोजन न करे ॥ २५ ॥

"माला धारण न करे, सुगन्धि का सेवन न करे, काठ, जमीन या सतरञ्जी पर लेटे। दु:ख पारङ्गत बुद्ध के सुदेशित इसे **उपोसथ*** कहते हैं ॥ २६ ॥

"प्रत्येक पक्ष के चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी और प्रातिहार्य पक्ष को इस **अष्टाङ्गिक उपोसथ*** का पालन श्रद्धापूर्वक सम्यक् रूप से करना चाहिए ॥२७॥

"उपोसथ ग्रहण कर सुबह अन्न और पान से अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रसन्नता से भिक्षुओं को दान दे ॥ २८ ॥

"धर्म से माता-पिता का पोषण करे और किसी धार्मिक व्यापार में लगे। जो गृहस्थ अप्रमत्त हो इस प्रकार का आचरण करता है, वह स्वयम्प्रभ नामक देवों में जन्म लेता है" ॥ २९ ॥

धम्मिकसुत्त समाप्त।

गहट्ठवत्तं पन वो वदामि, यथा करो सावको साधु होति ।
न हेसो लब्भा सपरिग्गहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो ॥ १८ ॥
पाणं न हाने[1] न च घातयेय्य, न चानुजञ्ञा हनतं परेसं ।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसन्ति[2] लोके ॥ १९ ॥
ततो अदिन्नं परिवज्जयेय्य, किञ्चि क्वचि सावको बुज्झमानो ।
न हारये हरतं नानुजञ्ञा, सब्बं अदिन्नं परिवज्जयेय्य ॥ २० ॥
अब्रह्मचरियं परिवज्जयेय्य, अङ्गारकासुं जलितं'व विञ्ञू ।
असंभुणन्तो पन ब्रह्मचरियं, परस्स दारं नातिक्कमेय्य ॥ २१ ॥
सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्स वेको[3] न मुसा भणेय्य ।
न भासये भणतं नानुजञ्ञा, सब्बं अभूतं परिवज्जयेय्य ॥ २२ ॥
मज्जं च पानं न समाचरेय्य, धम्मं इमं रोचये यो गहट्ठो ।
न पायये पिवतं[4] नानुजञ्ञा, उम्मादनन्तं इति नं विदित्वा ॥ २३ ॥
मदा हि पापानि करोन्ति बाला, कारेन्ति[5] चञ्ञे'पि जने पमत्ते[6] ।
एतं अपुञ्ञायतनं विवज्जये, उम्मादनं मोहनं बालकन्तं ॥ २४ ॥
पाणं न हाने न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया ।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं ॥ २५ ॥
मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं च सयेथ सन्थते ।
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं ॥ २६ ॥
ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथं, चातुद्दसिं पञ्चदसिं च अट्ठमिं ।
पाटिहारियपक्खं च पसन्नमानसो, अट्ठङ्गुपेतं सुसमत्तरूपं ॥ २७ ॥
ततो च पातो उपवुत्थुपोसथो, अन्नेन पानेन च भिक्खुसङ्घं ।
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथ विञ्ञू ॥ २८ ॥
धम्मेन मातापितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं सो वणिज्जं ।
एतं गिही वत्तयं अप्पमत्तो, सयंपभे नाम उपेति देवे ति" ॥ २९ ॥

धम्मिकसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. हने—म० । २. तसा सन्ति—म । ३ वेको—सी स्या० । ४. पायये—सी म । ५ विरत—म । ६. करोन्ति—सी । ७ पमत्ते—स्या ।

"(अब) मैं तुम्हें गृहस्थ-धर्म बताता हूँ जिसके आचरण से साधु शिष्य होता है। यह पूरा भिक्षुधर्म परिग्रही से प्राप्य नहीं ॥ १८ ॥

"संसार के स्थावर और जंगम सब प्राणियों के प्रति हिंसा त्याग, न तो प्राणी का वध करे, न करावे और न करने की दूसरों को अनुमति ही दे ॥ १९ ॥

"तब दूसरे की समझे जानेवाली किसी चीज को चुराना त्याग दे, न चुरवावे और न चुराने की अनुमति ही दे। चोरी का सर्वथा परित्याग करे ॥ २० ॥

"जलते कोयले के गड्ढे की तरह विज्ञ अब्रह्मचर्य को त्याग दे। ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव हो तो परस्त्री का अतिक्रमण न करे ॥ २१ ॥

"किसी सभा या परिषद में जाकर न तो एक दूसरे को असत्य बोले, न बोलवावे और न बोलने की अनुमति ही दे। मिथ्या-भाषण को सर्वथा त्याग दे ॥ २२ ॥

"इस धर्म के इच्छुक गृहस्थ मद्यपान के परिणाम को उन्माद जानकर न तो उसका सेवन करे, न पिलावे और न पीने की अनुमति ही दे ॥ २३ ॥

"मूर्ख और दूसरे प्रमत्त लोग मद के कारण ही पाप करते हैं। इस पापस्थल को त्याग दे (जो कि) उन्मादक है, मोहक है और मूर्खों को प्रिय है ॥ २४ ॥

"प्राण-वध न करे, चोरी न करे, असत्य न बोले, मादक द्रव्य न ले, अब्रह्मचर्य और मैथुन से विरत रहे, और रात्रि में विकाल भोजन न करे ॥ २५ ॥

"माला धारण न करे, सुगन्धि का सेवन न करे, काठ, जमीन या सतरञ्जी पर लेटे। दुःख पारङ्गत बुद्ध के सुदेशित इसे **उपोसथ***- कहते हैं ॥ २६ ॥

"प्रत्येक पक्ष के चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी और प्रातिहार्य पक्ष को इस **अष्टाङ्गिक उपोसथ*** का पालन श्रद्धापूर्वक सम्यक् रूप से करना चाहिए ॥२७॥

"उपोसथ ग्रहण कर सुबह अन्न और पान से अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रसन्नता से भिक्षुओं को दान दे ॥ २८ ॥

"धर्म से माता-पिता का पोषण करे और किसी धार्मिक व्यापार में लगे। जो गृहस्थ अप्रमत्त हो इस प्रकार का आचरण करता है, वह स्वयम्प्रभ नामक देवों में जन्म लेता है" ॥ २९ ॥

धम्मिकसुत्त समाप्त।

३—महावग्गो

२७—पब्बज्जा-सुत्तं

पब्बज्जं कित्तयिस्सामि, यथा पब्बजि चक्खुमा ।
यथा वीमंसमानो सो, पब्बज्जं समरोचयि ॥ १ ॥
सम्बाधोऽयं घरावासो, रजस्सायतनं इति ।
अब्भोकासो च पब्बज्जा, इति दिस्वान पब्बजि ॥ २ ॥
पब्बजित्वान कायेन, पापकम्मं विवज्जयि ।
वचीदुच्चरितं हित्वा आजीवं परिसोधयि ॥ ३ ॥
अगमा राजगहं बुद्धो, मगधानं[1] गिरिब्बजं ।
पिण्डाय अभिहारेसि आकिण्णवरलक्खणो ॥ ४ ॥
तमद्दसा बिम्बिसारो, पासादस्मिं पतिट्ठितो ।
दिस्वा लक्खणसम्पन्नं, इममत्थं अभासथ ॥ ५ ॥
इमं भोन्तो निसामेथ, अभिरूपो ब्रहा[2] सुचि ।
चरणेन चेव सम्पन्नो, युगमत्तं च पेक्खति ॥ ६ ॥
ओक्खित्तचक्खु सतिमा, नायं नीचकुलामिव ।
राजदूता[3] विधावन्तु[4], कुहिं भिक्खु गमिस्सति ॥ ७ ॥
ते पेसिता राजदूता, पिट्ठितो अनुबन्धिसुं[5] ।
कुहिं गमिस्सति भिक्खु, कत्थ वासो भविस्सति ॥ ८ ॥
सपदानं चरमानो गुत्तद्वारो[6] सुसंवुतो ।
खिप्पं पत्तं अपूरेसि, सम्पजानो पतिस्सतो ॥ ९ ॥
पिण्डचारं[7] चरित्वान[8], निक्खम्म नगरा मुनि ।
पण्डवं अभिहारेसि, एत्थ वासो भविस्सति ॥ १० ॥
दिस्वान वासूपगतं, ततो[9] दूता उपाविसुं ।
एको[10] च दूतो[11] आगन्त्वा, राजिनो पटिवेदयि ॥ ११ ॥
एस भिक्खु महाराज, पण्डवस्स पुरक्खतो[12] ।
निसिन्नो ब्यग्घुसभो'व, सीहो'व गिरिगब्भरे ॥ १२ ॥

---

१ मागधानं—स्या । २. ब्रह्मा—स्या । ३-४ राजदूताभिधावन्तु—म स्या । ५ अनुबन्धिंसु—स्या । ६. गुत्तद्वारे—स्या । ७. पिण्डचारिं—म ; तथाचारी—स्या । ८-९. पिण्डचारं चरित्वा । ९ ततो—म स्या । १० ११. तेसु एकोव—म । १२. पुरत्थतो—म ।

३—महावर्ग

२७—पब्बज्जा-सुत्त

[गृह त्याग कर मुक्ति की गवेषणा में निकले सिद्धार्थ को मगध के राजा बिम्बिसार राज्य का प्रलोभन देते हैं। सिद्धार्थ अपने उद्देश्य को बताकर निकल जाते हैं।]

आनन्द —

जिस विचार से चक्षुमान् (=बुद्ध) ने प्रव्रज्या पसन्द की, मैं उसका वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

'यह गृहवास कष्टपूर्ण है, वासनाओं का घर है। खुला आकाश जैसा (निर्मल) प्रव्रज्या है।' यह देख कर (वे) प्रव्रजित हुए ॥ २ ॥

प्रव्रजित हो कायिक कुकर्मों को दूरकर, वाचिक दुराचरण का त्याग कर (उन्होंने) आजीविका का संशोधन किया ॥ ३ ॥

उत्तम लक्षणों से युक्त बुद्ध भिक्षा के लिए मागधों (की राजधानी) राजगृह अर्थात् गिरिव्रज में निकल पड़े ॥ ४ ॥

प्रासाद में खड़े बिम्बिसार ने लक्षणों से युक्त उन्हें देखा, देखकर यह बात कही —॥ ५ ॥

'अजी! रूपवान्, महान्, पवित्र, सदाचारी इन्हें देखो। (ये) युगमात्र (दूर) देखते हैं ॥ ६ ॥

'नीचे की हुई आँखवाले, जागरूक ये नीचे कुल के मालूम नहीं होते। राजदूत दौड़ें (और देखें कि) भिक्षु कहाँ जायेंगे' ॥ ७ ॥

भेजे हुए वे दूत उनके पीछे-पीछे (यह देखने) चले कि भिक्षु कहाँ जायेंगे और कहाँ रहेंगे ॥ ८ ॥

रक्षित इन्द्रियवाले, संयमी, जागरूक, स्मृतिमान् उन्होंने क्रमश: घर-घर भिक्षा करके शीघ्र ही पात्र को भर लिया ॥ ९ ॥

भिक्षा के पश्चात् मुनि नगर से निकल कर पण्डव (पर्वत) पर चढ़े कि यहाँ वास होगा ॥ १० ॥

उनको वहाँ ठहरते देख दूत पास बैठ गये। एक दूत ने आकर राजा से निवेदन किया —॥ ११ ॥

'महाराज! वह भिक्षु पण्डव (पर्वत) के पूरब (उस प्रकार) बैठे हैं जिस प्रकार कि व्याघ्र, वृषभ या सिंह (अपनी) गिरि-गुफा में' ॥ १२ ॥

सुत्वान दूतवचनं, भद्दयानेन खत्तियो ।
तरमानरूपो निय्यासि, येन पण्डवपब्बतो ॥ १३ ॥
सयानभूमिं यायित्वा, याना ओरुय्ह खत्तियो ।
पत्तिको उपसङ्कम्म, आसज्ज नं उपाविसि ॥ १४ ॥
निसज्ज राजा सम्मोदि, कथं सारणियं ततो ।
कथं सो वीतिसारेत्वा, इममत्थं अभासथ ॥ १५ ॥
"युवा च दहरो चासि, पठमुप्पत्तिको[1] सुसु ।
वण्णारोहेन सम्पन्नो, जातिमा विय खत्तियो ॥ १६ ॥
"सोभयन्तो अनीकग्गं, नागसङ्घपुरक्खतो ।
ददामि भोगे भुञ्जस्सु जातिं अक्खाहि[2] पुच्छितो" ॥ १७ ॥
"उजुं जनपदो राजा[3], हिमवन्तस्स पस्सतो ।
धनविरियेन सम्पन्नो, कोसलेसु[4] निकेतिनो ॥ १८ ॥
"आदिच्चा[5] नाम गोत्तेन, साकिया[6] नाम जातिया ।
तम्हा कुला पब्बजितो[7]'म्हि (राज), न कामे अभिपत्थयं ॥ १९ ॥
'कामेस्वादीनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो ।
पधानाय गमिस्सामि, एत्थ मे रञ्जति मनो"ति ॥ २० ॥

पब्बज्जासुत्तं निट्ठितं ।

२८—पधान-सुत्तं

"तं मं पधानपहितत्तं, नदिं नेरञ्जरम्पति ।
विपरक्कम्म झायन्तं योगक्खेमस्स पत्तिया ॥ १ ॥
नमुची करुणं वाचं, भासमानो उपागमि" ।
"किसो त्वमसि दुब्बण्णो, सन्तिके मरणं तव ॥ २ ॥
सहस्सभागो मरणस्स, एकंसो तव जीवितं ।
जीव[8] भो[8] जीवितं सेय्यो, जीवं पुञ्ञानि काहसि ॥ ३ ॥
चरतो ते ब्रह्मचरियं अग्गिहुत्तं च जूहतो ।
पहूतं चीयते पुञ्ञं, किं पधानेन काहसि ॥ ४ ॥

१ पठमुप्पत्तिया—सी । पठमुप्पत्तियो—स्या । २ अक्खाहि—सी । ३ राज—म० । ४ कोसलस्स—स्या क । ५ आदिच्चो—क । ६ साकियो—क । ७-८ [illegible]म्मो—सी ।

दूत के वचन को सुनकर राजा उत्तम रथ से शीघ्र ही पण्डव पर्वत की ओर चल दिया ॥ १३ ॥

रथ के योग्य भूमि तक रथ से जा, रथ से उतर कर, राजा उनके निकट पैदल चलके पास बैठ गया ॥ १४ ॥

पास बैठकर कुशल-सवाद पूछा, कुशल-संवाद के बाद राजा ने यह बात कही '—॥ १५ ॥

"आप नवयुवक हैं, प्रथम अवस्था-प्राप्त तरुण हैं। आप रूप तथा प्रभाव से युक्त कुलीन क्षत्रिय की तरह हैं ॥ १६ ॥

"मैं सम्पत्ति देता हूँ। हाथी समूह से युक्त सेना को सुशोभित करते हुए उसका उपभोग करें। (अब मेरे) पूछने पर बतावे कि आपकी क्या जाति है?" ॥ १७ ॥

सिद्धार्थः—"हिमालय की तराई के एक जनपद में **कोशल** देशवासी धन तथा पराक्रम से युक्त एक ऋजु **राजा** हैं ॥ १८ ॥

"वे सूर्य-वंशी हैं और **शाक्य** जाति के हैं। महाराज! मैं उनके कुल से प्रव्रजित हूँ। मैं विषयों की कामना नहीं करता ॥ १९ ॥

"मैंने विषयों के दुष्परिणाम को देखकर (उन्हें) त्यागना कल्याण समझा है। मैं मुक्ति की गवेषणा में जाता हूँ। मेरा मन इसी में रमता है" ॥ २० ॥

पब्बज्जासुत्त समाप्त।

२८—पधान-सुत्त

[निर्वाण की गवेषणा मे रत **सिद्धार्थ गौतम** को **मार** (=कामदेव) विचलित करना चाहता है। लेकिन उसका प्रयत्न विफल हो जाता है।]

बुद्धः—निर्वाण की प्राप्ति के लिए **नेरञ्जरा** नदी के पास पराक्रम पूर्वक ध्यान करनेवाले और उसी प्रयत्न में लीनचित्त मेरे पास आकर मारने करुणा भरी यह बात कही—"आप कृश हैं, विवर्ण हैं और मृत्यु आपके पास ही है ॥ १-२ ॥

"आपके सहस्र अश मृत्यु में हैं और एक अश जीवन में। मित्र! जीवित रहिए, जीना अच्छा है। जीवित रहकर पुण्य कीजियेगा ॥ ३ ॥

"ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अग्निहोत्र करें तो बहुत पुण्य का सचय कर सकते हैं। फिर मुक्ति के लिए इस प्रयत्न से क्या लाभ? ॥ ४ ॥

दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्करो दुरभिसम्भवा" ।
इमा गाथा भणं मारो, अट्ठा बुद्धस्स सन्तिके ॥ ५ ॥
तं तथावादिनं मारं, भगवा एतदब्रवि ।
"पमत्तबन्धु पापिम, येनत्थेन इधागतो ॥ ६ ॥
अणुमत्तेन'पि[1] पुञ्ञेन, अत्थो मय्हं न विज्जति ।
येसं च अत्थो पुञ्ञानं, ते मारो वत्तुमरहति ॥ ७ ॥
अत्थि सद्धा ततो[2] विरियं, पञ्ञा च मम विज्जति ।
एवं मं पहितत्तम्पि, किं जीवमनुपुच्छसि ॥ ८ ॥
नदीनम्पि सोतानि, अयं वातो विसोसये ।
किञ्च मे पहितत्तस्स, लोहितं नूपसुस्सये[3] ॥ ९ ॥
लोहिते सुस्समानम्हि, पित्तं सेम्हं च सुस्सति ।
मंसेसु खीयमानेसु, भिय्यो चित्तं पसीदति ।
भिय्यो सति च पञ्ञा च, समाधि मम तिट्ठति ॥ १० ॥
तस्स मे'वं विहरतो, पत्तस्सुत्तमवेदनं ।
कामे[4] नापेक्खते[5] चित्तं, पस्स सत्तस्स सुद्धतं ॥ ११ ॥
कामा ते पठमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति ।
ततिया खुप्पिपासा ते, चतुत्थी तण्हा पवुच्चति ॥ १२ ॥
पञ्चमं थीनमिद्धं ते, छट्ठा भीरु पवुच्चति ।
सत्तमी विचिकिच्छा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमा ॥ १३ ॥
लाभो सिलोको सक्कारो, मिच्छालद्धो च यो यसो ।
यो चत्तानं समुक्कंसे, परे च अवजानति ॥ १४ ॥
एसा नमुचि ते सेना, कण्हस्साभिप्पहारिणी ।
न तं असूरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं ॥ १५ ॥
एस मुञ्जं परिहरे, धिरत्थु इध[6] जीवितं ।
संगामे मे मतं सेय्यो, यं चे जीवे पराजितो ॥ १६ ॥
पगाळ्हा एत्थ[7] न दिस्सन्ति, एके समणब्राह्मणा ।
तं च मग्गं न जानन्ति येन गच्छन्ति सुब्बता ॥ १७ ॥
समन्ता धजिनिं दिस्वा, युत्तं मारं सवाहनं ।
युद्धाय पच्चुग्गच्छामि मा मं ठाना अचावयि ॥ १८ ॥
यन्तेतं नप्पसहति, सेनं लोको सदेवको ।
तं ते पञ्ञाय गच्छामि आमं पत्तं'व अस्मना[10] ॥ १९ ॥

१ अनुमत्तेपि—म । २ तपो—म । ३ नुपसुस्सये—म० । ४-५ कामेसु नापेक्खते—म० । ६ मम—म । ७-८ पगाळ्हेत्थ—म० । ९ भेच्छामि—म । १० अस्मना—म ।

"निर्वाण का मार्ग दुर्गम, दुष्कर और दुरारोह है।" ये गाथाएँ कहता हुआ मार भगवान् के पास खड़ा रहा ॥ ५ ॥

इस प्रकार बोलनेवाले मार को भगवान् ने यह कहा—"प्रमत्तबन्धु पापी! तुम किस लिए यहाँ आये हो? ॥ ६ ॥

"मुझे अणुमात्र पुण्य की भी आवश्यकता नहीं। जिन्हें पुण्य की आवश्यकता हो, मार उन्हीं को उपदेश दे ॥ ७ ॥

"मुझमें श्रद्धा, वीर्य और प्रज्ञा विद्यमान हैं। इस प्रकार (निर्वाण प्राप्ति के) प्रयत्न में रत मुझे जीने को क्यों कहते हो? ॥ ८ ॥

"(घोर प्रयत्न से उठा) यह वायु नदियों की धाराओं को भी सुखा दे। क्या वह मेरे लोहू को नहीं सुखावेगा? ॥ ९ ॥

"खून के सूखने पर पित्त और कफ सूखते हैं। मास के क्षीण होने पर चित्त अधिकाधिक शान्त हो जाता है। तब मेरी स्मृति, प्रज्ञा और समाधि अधिकाधिक स्थिर हो जाती हैं ॥ १० ॥

"इस प्रकार विहरनेवाले उत्तम वेदना प्राप्त मेरा मन कामों की इच्छा नहीं करता। इस व्यक्ति की शुद्धि को देखो ॥ ११ ॥

"(मार!) काम तेरी पहली सेना है, अरति दूसरी सेना कहलाती है। भूख प्यास तेरी तीसरी सेना है, तृष्णा चौथी सेना है ॥ १२ ॥

"स्त्यान-मिद्ध है तेरी पाँचवीं सेना, भय छठीं सेना कहलाती है। शका तेरी सातवीं सेना है, म्रक्ष तथा धृष्टता तेरी आठवीं सेना है ॥ १३ ॥

"लाभ, प्रशसा, सत्कार, अनुचित उपाय से प्राप्त यश, अपने को ऊँचा दिखाना और दूसरों को नीचा दिखाना—पापीमार! (सत्पुरुषों पर) प्रहार करनेवाली तुम्हारी सेना यही है। इसे अ-सूर जीत नहीं सकता। (इसका) विजेता सुख को प्राप्त होता है ॥ १४-१५ ॥

"मैं मुञ्ज तृण धारण करता हूँ। यहाँ (पराजित हो कर) जीना धिक्कार है। पराजित हो कर जीने की अपेक्षा सग्राम में मरना मुझे उत्तम है ॥ १६ ॥

"(वासनाओं में) मग्न कुछ श्रमण-ब्राह्मण (सत्य को) नहीं देखते। वे उस मार्ग को नहीं जानते जिस पर सुव्रती चलते हैं ॥ १७ ॥

"वाहन सहित सुसज्जित मार सेना को चारों ओर से देखकर मैं युद्ध के लिए निकलता हूँ जिसमें कि मार मुझे अपने स्थान से च्युत न कर दे ॥ १८ ॥

"देव-मनुष्य सहित सारा ससार तुम्हारी जिस सेना को जीत नहीं पाता, उसे (मैं) प्रज्ञा से उसी प्रकार नष्ट कर दूँगा जिस प्रकार पत्थर से कच्चे बर्तन को ॥ १९ ॥

वसि कत्वान संकप्पं, सतिं च सुप्पतिट्ठितं ।
रट्ठा रट्ठं विचरिस्सं, सावके विनयं पुथु ॥ २० ॥
ते अप्पमत्ता पहितत्ता, मम सासनकारका ।
अकामस्स[1] ते गमिस्सन्ति, यत्थ गन्त्वा न सोचरे" ॥ २१ ॥
"सत्त वस्सानि भगवन्तं, अनुबन्धिं[2] पदा पदं ।
ओतारं नाधिगच्छिस्सं, सम्बुद्धस्स सतीमतो ॥ २२ ॥
मेदवण्णं'व पासाणं, वायसो अनुपरियगा ।
अपेत्थ मुदु[3] विन्देम, अपि अस्सादना सिया ॥ २३ ॥
अलद्धा तत्थ अस्सादं, वायसेत्तो[4] अपक्कमि ।
काको'व सेलमासज्ज, निब्बिज्जापेम गोतमं" ॥ २४ ॥
तस्स सोकपरेतस्स, वीणा कच्छा अभस्सथ ।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथाति ॥ २५ ॥
पधानसुत्तं निट्ठितं ।

२९—सुभासित-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने ... पे० ... भगवा एतदवोच—"चतूहि, भिक्खवे अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं । कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुभासितं येव भासति नो दुब्भासितं, धम्मं येव भासति नो अधम्मं, पियं येव भासति नो अप्पियं, सच्चं येव भासति नो अलिकं । इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं" ति । इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं ।
पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थं ॥ १ ॥

---

१. अकामा—म० । २. अनुबन्धि—म । ३. मुदुं—म स्या० । ४. वायसेन्तो—सी०, वायसेत्तो—म ।

"विचार को वश में रख, स्मृति को सुप्रतिष्ठित कर बहुत-से श्रावकों को सुरक्षित बनाते हुए देश-देश विचरण करूँगा ॥ २० ॥

"अप्रमत्त, निर्वाण-प्राप्ति में रत, मेरे अनुशासन को करनेवाले वे (उस) निष्कामता (=निर्वाण)को प्राप्त करेंगे जहाँ पहुँचकर फिर शोक नहीं करेंगे"॥२१॥

मारः—

"सात वर्ष तक मैं भगवान् के पीछे ही लगा था, लेकिन स्मृतिमान् सम्बुद्ध में कुछ भी दोष नहीं पाया ॥ २२ ॥

"लाल पत्थर को चर्बी का टुकड़ा समझ कर कौवा उस पर झपटा कि कुछ कोमल स्वादिष्ट चीज मिलेगी। उसमें कुछ स्वाद न पा कौवा उड़ गया। मैं भी गौतम के पास जाकर (वैसे ही) निराश हो चला जा रहा हूँ जैसे कौवा पत्थर के टुकड़े के पास" ॥ २३-२४ ॥

शोकाकुल उस मार की काँख से वीणा खिसक गई। वह दुःखी हो वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ २५ ॥

पधानसुत्त समाप्त।

२९—सुभासित-सुत्त

[भगवान् सुन्दर, धार्मिक, प्रिय तथा सत्य वचन ही बोलने का उपदेश देते हैं, और वङ्गीस इसका अनुमोदन करते हैं।]

ऐसा मैंने सुनाः—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम** में विहार करते थे। उस समय भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहा—"भिक्षुओ! चार अङ्गों से युक्त वचन अच्छा है न कि बुरा, विज्ञों के अनुसार वह निरवद्य है, दोष रहित है। कौन-से चार अंग? भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु अच्छा वचन ही बोलता है न कि बुरा, धार्मिक वचन ही बोलता है न कि अधार्मिक, प्रिय वचन ही बोलता है न कि अप्रिय, सत्य वचन ही बोलता है न कि असत्य। भिक्षुओ! इन चार अंगों से युक्त वचन अच्छा है न कि बुरा, वह विज्ञों के अनुसार निरवद्य तथा दोषरहित है।"

ऐसा बताकर भगवान् ने फिर कहा—

"सन्तों ने अच्छे वचन को ही उत्तम बताया है। धार्मिक वचन को ही बोले, न कि अधार्मिक वचन को—यह दूसरा है। प्रिय वचन को बोले, न कि अप्रिय वचन को—यह है तीसरा। सत्य वचन को ही बोले, न कि असत्य वचन को—यह है चौथा" ॥ १ ॥

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं सुगता"ति। "पटिभातु तं वङ्गीसा"ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

तमेव भासं[1] भासेय्य, यायत्तानं न तापये।
परे च न विहिंसेय्य, सा वे वाचा सुभासिता ॥ २ ॥
पियवाचमेव भासेय्य, या वाचा पटिनन्दिता।
यं अनादाय पापानि, परेसं भासते पियं ॥ ३ ॥
सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।
सच्चे अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतिट्ठिता ॥ ४ ॥
यं बुद्धो भासती वाचं, खेमं निब्बाणपत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमा'ति ॥ ५ ॥

सुभासितसुत्तं निट्ठितं।

३०—सुन्दरिकभारद्वाज-सुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति सुन्दरिकाय नदिया तीरे। तेन खो पन समयेन सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो सुन्दरिकाय नदिया तीरे अग्गिं जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गिं जुहित्वा अग्गिहुत्तं परिचरित्वा,उट्ठायासना समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि—को नु खो इमं हब्यसेसं भुञ्जेय्याति। अद्दसा खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अविदूरे अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले ससीसं पारुतं निसिन्नं दिस्वान वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा, दक्खिणेन हत्थेन कमण्डलुं गहेत्वा, येन भगवा तेनुपसङ्कमि। अथ खो भगवा सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पदसद्देन सीसं विवरि। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो

---

[1] भासं—म०।

तब आयुष्मान् **वंगीस** ने आसन से उठकर, एक कन्धे पर चीवर सँभाल कर, भगवान् को हाथ जोड अभिवादन कर उन्हें कहा—'भन्ते ! मुझे कुछ सूझता है।' भगवान् ने कहा—'**वंगीस** ! उसे सुनाओ।' तब आयुष्मान् **वंगीस** ने भगवान् के सम्मुख अनुकूल गाथाओं में यह स्तुति कीः—

वही बात बोले जिससे न स्वयं कष्ट पावे और न दूसरे को ही दु:ख हो, ऐसी ही बात सुन्दर है ॥ २ ॥

आनन्ददायी प्रिय वचन ही बोले। पापी बातों को छोडकर दूसरों को प्रिय वचन ही बोले ॥ ३ ॥

सत्य ही अमृत वचन है, यह सदा का धर्म है। सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित सन्तों ने (ऐसा) कहा है ॥ ४ ॥

बुद्ध जो कल्याण वचन निर्वाण-प्राप्ति के लिए, दु:ख का अन्त करने के लिए बोलते हैं, वही वचनों में उत्तम है ॥ ५ ॥

सुभासितसुत्त समाप्त।

३०—सुन्दरिकभारद्वज-सुत्त

[**सुन्दरिका** नदी-तट पर हवन करने के बाद **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण हव्यशेष दान करने के लिए किसी ब्राह्मण को देखता है। पास ही एक पेड़ के नीचे भगवान् ध्यानावस्थित बैठे हैं। ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर जाति पूछता है। भगवान् उसे उपदेश करते हैं कि जाति के विषय में नहीं अपितु आचरण के विषय में पूछना चाहिए। आगे वे यह भी बताते हैं कि पुण्य की कामना करनेवाले को चाहिए कि अन्न आग में न जलाकर किसी उचित मनुष्य को दान करें। भगवान् के सदुपदेश से प्रसन्न ब्राह्मण उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण करता है।]

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् **कोशल** में **सुन्दरिका** नदी तट पर विहार करते थे। उस समय **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण **सुन्दरिका** नदी तट पर अग्निहोत्र करता था, अग्नि की परिचर्या करता था। तब **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण अग्निहोत्र कर, अग्नि की परिचर्या कर, आसन से उठके चारों ओर देखने लगा कि उसके हव्यशेष को खानेवाला कोई है या नहीं। **भारद्वाज** ब्राह्मण ने कुछ दूर पर सिर से ओढ कर एक वृक्ष के नीचे बैठे भगवान् को देखा, देख बायें हाथ से हव्य-शेष और दाहिने हाथ से कमण्डल लेकर भगवान् के पास गया। तब भगवान् ने **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण की आहट को पाकर सरपर से कपडा

ब्राह्मणो—मुण्डो अयंभवं, मुण्डको अयं भवन्ति ततो'व पुन निवत्ति-तुकामो अहोसि। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—मुण्डा'पि हि इधेकच्चे ब्राह्मणा भवन्ति, यन्नूनाहं उपसङ्कमित्वा जातिं पुच्छेय्यन्ति। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"किं जच्चो भवं"ति। अथ खो भगवा सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं गाथाहि अज्झभासि—

"न ब्राह्मणो नो'म्हि न राजपुत्तो, न वेस्सायनो उद कोचि नो'म्हि।
गोत्तं परिञ्ञाय पुथुज्जनानं, अकिञ्चनो मन्त चरामि लोके॥ १॥

सङ्घाटिवासी अगहो[1] चरामि, निवुत्तकेसो अभिनिब्बुतत्तो।
अलिप्पमानो[2] इध माणवेहि, अकल्लं (ब्राह्मण) पुच्छसि गोत्तपञ्हं"॥२॥

"पुच्छन्ति वे भो ब्राह्मणा ब्राह्मणेहि सह ब्राह्मणो नो भवं"ति।
"ब्राह्मणो चे त्वं ब्रूसि मं च ब्रूसि अब्राह्मणं।
तं सावित्तिं पुच्छामि, तिपदं चतुवीसतक्खरं"॥ ३॥

"किं निस्सिता इसयो, मनुजा खत्तिया ब्राह्मणा।
देवतानं यञ्ञमकप्पयिंसु, पुथु इध लोके"।
"यदन्तगू वेदगू यञ्ञकाले, यस्साहुतिं लभे तस्सिज्झेति ब्रूमि"॥ ४॥

"अद्धा हि तस्स हुतमिज्झे (ति ब्राह्मणो), यं तादिसं वेदगुं अद्दसाम।
तुम्हादिसानं हि अदस्सनेन, अञ्ञो जना भुञ्जति पूरळासं"॥ ५॥

"तस्मातिह त्वं ब्राह्मण अत्थेन, अत्थिको उपसङ्कम्म पुच्छ।
सन्तं विधूमं अनिघं निरासं अप्पेविध अभिविन्दे सुमेधं"॥ ६॥

"यञ्ञे रताहं (भो गोतम), यञ्ञं यिट्ठुकामो[3]।
नाहं पजानामि अनुसासतु मं भवं यत्थ हुतं इज्झते ब्रूहि मे तं"॥ ७॥

---

१. अगिहो—सी० टी०। २. अलिप्पमानो—स्या०। ३ यट्ठुकामो—सी०।

हटा दिया। तब **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण ने यह व्यक्ति तो मुण्डक है! यह सोच वहाँ से लौटना चाहा। फिर **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण के मन मे ऐसा हुआ—'इन मुण्डकों में कुछ ब्राह्मण भी होते हैं, इसलिए चलकर जाति पूछूँ।' तब **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, पास जाकर भगवान् से ऐसा कहा—'आप किस जात के हैं?'

तब भगवान् **सुन्दरिक भारद्वाज** ब्राह्मण को गाथाओं में उत्तर दिया :—

मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न राजपुत्र हूँ, न वैश्य हूँ, न कोई और ही हूँ। साधारण लोगों के गोत्र को अच्छी तरह जानकर मैं विचारपूर्वक अकिंचन-भाव से ससार में विचरण करता हूँ॥ १॥

चीवर पहनकर, बेघर हो, सर मुँडाकर, पूर्ण रूप से शान्त हो, यहाँ लोगों में अनासक्त हो विचरण करता हूँ। ब्राह्मण! मुझसे गोत्र पूछकर तुमने अनुचित किया है॥ २॥

ब्राह्मणः—

ब्राह्मण ब्राह्मणों से पूछते हैं कि आप ब्राह्मण हैं कि नहीं?

बुद्धः—

तुम अपने को ब्राह्मण बताते हो और मुझको अब्राह्मण। तुमसे त्रिपद और चौबीस अक्षरवाले 'साविती' मत्र को पूछता हूँ॥ ३॥

ब्राह्मणः—

इस संसार में ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने किस कारण देवताओं के नाम बहुत यज्ञ किये थे॥ ४॥

बुद्धः—

यज्ञ के समय पारगत, ज्ञानी किसी को आहुति मिल गई तो उसका यज्ञ सफल होता है, (ऐसा मैं) कहता हूँ।

ब्राह्मणः—

उस प्रकार के ज्ञानी के दर्शन से अवश्य उसका यज्ञ सफल होगा। आप जैसे लोगों के दर्शन न होने से अन्य जन हव्य को खाते हैं॥ ५॥

बुद्धः—

इसलिए, ब्राह्मण! शान्त, क्रोध रहित, निष्पापी, तृष्णा रहित महाज्ञानी के पास आकर अर्थ की बात पूछो, कदाचित् (तुम) कुछ समझोगे॥ ६॥

ब्राह्मणः—

हे गौतम! मैं यज्ञ में रत हूँ, यज्ञ करना चाहता हूँ। मैं उसे नहीं जानता, इसलिए आप उपदेश दें, आप बतावें कि यज्ञ कैसे सफल होता है॥ ७॥

तेन हि त्वं ब्राह्मण ओदहस्सु सोतं, धम्मं ते दसिस्सामि[1]—

"मा जातिं पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो ।
नीचा कुलीनो'पि मुनी धितीमा, आजानियो होति हिरीनिसेधो ॥ ८ ॥
सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू वुसितब्रह्मचरियो ।
कालेन तम्हि हब्यं पवच्छे, यो ब्राह्मणा पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ९ ॥
ये कामे हित्वा अगहा[2] चरन्ति, सुसञ्ञतत्ता तसरं[3]'व उज्जुं ।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे यो ब्राह्मणा पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १० ॥
ये वीतरागा सुसमाहितिन्द्रिया, चन्दा'व राहुगहणा पमुत्ता ।
कालेन तेसु हब्यं पवच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ११ ॥
असज्जमाना विचरन्ति लोके, सदा सता हित्वा ममायितानी ।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १२ ॥
यो कामे हित्वा अभिभुय्यचारी, यो वेदि[4] जातिमरणस्स अन्तं ।
परिनिब्बुतो उदकरहदो'व सीतो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १३ ॥
समो समेहि विसमेहि दूरे, तथागतो होति अनन्तपञ्ञो ।
अनूपलित्तो इध वा हुरं वा, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १४ ॥
यम्हि न माया वसती न मानो, यो वीतलोभो अममो निरासो ।
पनुण्णकोधो अभिनिब्बुतत्तो, यो ब्राह्मणो सोकमलं अहासि ।
तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १५ ॥
निवेसनं यो मनसो अहासि परिग्गहा यस्स न सन्ति केचि ।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १६ ॥
समाहितो यो उदतारि ओघं धम्मञ्चञ्ञासि परमाय दिट्ठिया ।
खीणासवो अन्तिमदेहधारी तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १७ ॥

---

१ देसेस्सामि—म० । २ अगिहा—सी । ३ सुसञ्ञता—म० सी । ४ वेदी—सी० ।

बुद्धः—

"तब ब्राह्मण ! कान दो। मैं उपदेश देता हूँ:—

"जाति के विषय में न पूछो, आचरण के विषय मे पूछो। लकडी से आग पैदा होती ही है, (इसी प्रकार) नीच कुल में पैदा हो कर भी मुनि धृतिमान्, उत्तम और पाप-लज्जा से सयत होते है ॥ ८ ॥

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है (उसे चाहिए कि) सत्य से दान्त, दम से युक्त, ज्ञानपारङ्गत, ब्रह्मचर्यवास समाप्त मुनि के पास उचित समय पर हव्य पहुँचावे ॥ ९ ॥

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है (उसे चाहिए कि) तसर की तरह ऋजु, सुसयमी, विषयों को त्याग, वेघर हो विचरनेवाले (जो मुनि हैं) उनको समय पर हव्य अर्पण करे ॥ १० ॥

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है (उसे चाहिए कि) राहु के ग्रहण से मुक्त चन्द्र समान जो वीतरागी और सुसयत इन्द्रियवाले हैं, उनको उचित समय पर हव्य अर्पण करे ॥ ११ ॥

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है (उसे चाहिए कि) जो सदा जागरूक हो, कामनाओं को छोड, अनासक्त हो संसार में विचरण करते है, उनको समय पर हव्य अर्पण करें ॥ १२ ॥

"जो विषयों को छोड निर्भय रूप से विचरण करते है, जिन्होंने जन्म-मृत्यु का अन्त जान लिया है, उपशान्त, गम्भीर जलाशय की तरह शान्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १३ ॥

"साधुओं के प्रति समान व्यवहारवाले, असाधुओं से दूर तथागत अनन्तज्ञानी हैं। लोक-परलोक में अलिप्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १४ ॥

"जिन में न माया है, न अभिमान है, जो लोभ, अहकार और तृष्णा रहित हैं, जो क्रोध को दूर कर उपशान्त हो गये हैं, और जिस ब्राह्मण ने शोक रूपी मल को दूर किया है (ऐसे) तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १५ ॥

"जिन्होंने मन से वासनाओं को दूर किया है, जिन्हें किसी का परिग्रह नहीं है, इसलोक या परलोक में अनासक्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १६ ॥

"जिन्होंने समाधिस्थ हो प्रवाह को पार किया है और उत्तम दृष्टि से धर्म को जान लिया है, वासना रहित, अन्तिम देहधारी तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १७ ॥

भवासवा यस्स वची खरा च, विधूपिता अत्थगता न सन्ति ।
स वेदगू सब्बधि विप्पमुत्तो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १८ ॥

सङ्गातिगो यस्स न सन्ति सङ्गा, यो मानसत्तेसु अमानसत्तो ।
दुक्खं परिञ्ञाय सखेत्तवत्थुं, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ १९ ॥

आसं अनिस्साय विवेकदस्सी, परवेदियं दिट्ठिमुपातिवत्तो ।
आरम्मणा यस्स न सन्ति केचि, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ २ ॥

परोवरा[1] यस्स समेच्च धम्मा, विधूपिता अत्थगता न सन्ति ।
सन्तो उपादानक्खये[2] विमुत्तो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ २१ ॥

संयोजनं जातिखयन्तदस्सी, योऽपानुदि रागपथं असेसं ।
सुद्धो निद्दोसो विमलो अकाचो,[3] तथागतो अरहति पूरळासं ॥ २२ ॥

यो अत्तनात्तानं[4] नानुपस्सति, समाहितो उज्जुगतो ठितत्तो ।
स वे अनेजो अखिलो अकङ्खो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥ २३ ॥

मोहन्तरा यस्स न सन्ति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च ञाणदस्सी ।
सरीरं च अन्तिमं धारेति, पत्तो च सम्बोधिमनुत्तरं सिवं ।
एत्तावता यक्खस्स सुद्धी, तथागतो अरहति पूरळासं" ॥ २४ ॥

"हुतं[5] च[6] मय्हं हुतमत्थु सच्चं यं तादिसं वेदगुनं अलत्थं ।
ब्रह्मा हि सक्खि पटिगण्हातु मे भगवा भुञ्जतु मे भगवा पूरळासं" ॥२५॥

"गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो ।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा ॥ २६ ॥

अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं ।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होति" ॥ २७ ॥

"साधाहं भगवा तथा विजञ्ञं, यो दक्खिणं भुञ्जेय्य मादिसस्स ।
यं यञ्ञकाले परियेसमानो, पप्पुय्य तव सासनं" ॥ २८ ॥

---

१. परोपरा—म । २. उपादानक्खये—म । ३. अकामो—सी० स्या० । ४. अत्तनो अत्तानं—म । ५-६. दुतञ्च—सी० क० ।

"जिन में भव-तृष्णा और कटु भाषण नष्ट हैं, अस्तगत हैं, ज्ञान पारगत, सर्व प्रकार मुक्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १८ ॥

"जो आसक्तियों से परे हैं, जिन में आसक्तियाँ नहीं हैं, जो अभिमानी लोगों में अभिमान रहित हैं, जिन्होने दु:ख के क्षेत्र (और उसकी) वस्तुओ (=हेतु-प्रत्यय) को अच्छी तरह जान लिया है (ऐसे) तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १९ ॥

"जो तृष्णा रहित हैं, निर्वाणदर्शी हैं, दूसरो की दृष्टियों से परे हैं और जिनके लिए कहीं कुछ भी विषयारम्मण नहीं है, (ऐसे) तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ २० ॥

"ज्ञान द्वारा जिनमे आदि से अन्त तक वासनाएँ नष्ट हैं, अस्तगत हैं, शान्त और तृष्णाक्षय द्वारा मुक्त तथागत हव्य के योग्य है ॥ २१ ॥

"जिन्होंने जन्म-क्षय के अन्त को देखा है, नि:शेष रागपथ तथा संयोजनों (=मानसिक बन्धन) को दूर किया है, शुद्ध, निर्दोषी, विमल, सुपरिशुद्ध तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ २२ ॥

"जो अपने मे (=पाँच स्कन्धो में) आत्मा को नहीं देखता, समाधिस्थ, ऋजुगामी, स्थिर-चित्त, पाप रहित, द्वेष रहित, शंका रहित वह तथागत अवश्य हव्य के योग्य हैं ॥ २३ ॥

"जिनके अन्दर किसी प्रकार का मोह नहीं है, (जो) सब बातों को ज्ञान से देखते हैं और अन्तिम शरीर को धारण करते हैं, मनुष्य की पूर्ण शुद्धि रूपी क्षेम और उत्तम सम्बोधि-प्राप्त तथागत हव्य के योग्य हैं" ॥ २४ ॥

ब्राह्मण :—

आप जैसे ज्ञान-पारंगत को पाकर मेरा यज्ञ हो। आप साक्षात् ब्रह्म है। भगवान् मेरा भोजन स्वीकार करें, भगवान् मेरा हव्य ग्रहण करें ॥ २५ ॥

बुद्ध :—

धर्मोपदेश से प्राप्त भोजन मेरे ग्रहण करने योग्य नही। ब्राह्मण! ज्ञानियों का यह धर्म नहीं है। धर्मोपदेश से प्राप्त (भोजन) को बुद्ध स्वीकार नहीं करते। ब्राह्मण! यही धार्मिक रीति है ॥ २६ ॥

आश्रवक्षीण,* मानसिक चञ्चलता रहित, केवली महर्षि की सेवा दूसरे अन्न और पान से करे, पुण्यापेक्षी के लिए वे क्षेत्र हैं ॥ २७ ॥

ब्राह्मण :—

अच्छा, भगवन्! मैं जानना चाहता हूँ कि मुझ जैसे की दक्षिणा कौन ग्रहण करे? आप के धर्म को ग्रहणकर मैं यज्ञ के समय किसको खोजूँ? ॥ २८ ॥

"सारम्भा यस्स विगता, चित्तं यस्स अनाविलं।
विप्पमुत्तो च कामेहि, थीनं यस्स पनूदितं ॥ २९ ॥

सीमन्तानं विनेतारं, जातिमरणकोविदं।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, तादिसं यञ्ञमागतं ॥ ३० ॥

भकुटिं[१] विनयित्वान, पञ्जलिका नमस्सथ।
पूजेथ अन्नपानेन, एवं इज्झन्ति दक्खिणा" ॥ ३१ ॥

"बुद्धो भवं अरहति पूरळास, पुञ्ञक्खेत्तमनुत्तरं।
आयागो सब्बलोकस्स, भोतो दिन्नं महप्फलं"ति ॥ ३२ ॥

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– 'अभिक्कन्तं भो गोतम' पे० 'अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खु सङ्घं च। लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं"ति। अलत्थ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो पे० अरहतं अहोसीति।

सुन्दरिकभारद्वाजसुत्तं निट्ठितं।

२१—माघ-सुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो माघो माणवो येन भगवा तेनुपसङ्कमि उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो माघो माणवो भगवन्तं एतदवोच "अहं हि, भो

---

१. भुकुटि–सी।

बुद्धः—

जिनमें संघर्ष नहीं हैं, जिनका चित्त शान्त है, जो कामों से मुक्त हैं, जिन्होंने आलस्य को दूर किया है, वासनाओं को नाश करनेवाले, जन्म-मृत्यु को जाननेवाले, यज्ञ के समय सम्प्राप्त इस प्रकार के ज्ञानी मुनि को प्रसन्नता के साथ अभिवादन करो और अन्न-पान से उनकी सेवा करो, इस प्रकार की दक्षिणाएँ सफल होती हैं ॥२९-३१॥

ब्राह्मणः—

आप बुद्ध हव्य के योग्य हैं। आप उत्तम पुण्य-क्षेत्र हैं। आप सारे संसार के पूज्य हैं। आपको दिया (दान) महत्फल होता है ॥३२॥

तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से यह कहा—

"आश्चर्य है! गौतम! आश्चर्य है! गौतम! जिस प्रकार कोई उलटे को पल्ट दे, औंधे को सीधा कर दे, भटके को मार्ग बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप धारण करे जिससे कि आँखवाले रूप देख लें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। सो मैं भगवान् गौतम की शरण जाता हूँ, धर्म तथा संघ की भी। मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा लेना चाहता हूँ।"

सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, **उपसम्पदा*** पाई। उपसम्पदा के कुछ समय बाद आयुष्मान् **सुन्दरिक भारद्वाज** एकान्त में अप्रमत्त, उद्योगी तथा तत्पर हो, जिस अर्थ के लिए कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से घर से बेघर हो विहरता है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के अन्त को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरने लगे। उन्होंने जान लिया—"जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, कृतकृत्य हो गया और पुनर्जन्म रुक गया।"

आयुष्मान् **सुन्दरिक भारद्वाज अर्हन्तों*** में एक हुए।

सुन्दरिकभारद्वाजसुत्त समाप्त।

३१—माघ-सुत्त

[दानी माघ माणवक भगवान् से दक्षिणार्ह के विषय में पूछता है। भगवान् निष्काम मनुष्य को दक्षिणार्ह बताते हैं।]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् **राजगृह** में **गृद्धकूट** पर्वत पर विहार करते थे। उस समय **माघ** माणवक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर कुशल-संवाद पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे **माघ** माणवक ने भगवान् से यह कहा—

दानपति वदञ्ञू याचयोगो, धम्मेन भोगे परियेसामि, धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्माधिगतेहि एकस्स'पि ददामि, द्विन्नम्पि ददामि, तिण्णम्पि ददामि, चतुन्नम्पि ददामि, पञ्चन्नम्पि ददामि, छन्नम्पि ददामि, सत्तन्नम्पि ददामि, अट्ठन्नम्पि ददामि, नवन्नम्पि ददामि, दसन्नम्पि ददामि, वीसाय'पि ददामि, तिंसाय'पि ददामि, चत्तारीसाय'पि ददामि, पञ्ञासाय'पि ददामि, सतस्स'पि ददामि, भिय्यो'पि ददामि। कच्चाहं, भो गोतम, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्ञं पसवामी"ति ? "तग्घ त्वं, माणव, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्ञं पसवसि । यो खो, माणव, दायको दानपति वदञ्ञू याचयोगो धम्मेन भोगे परियेसति, धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्माधिगतेहि एकस्स'पि ददाति पे०" सतस्स'पि ददाति, भिय्यो'पि ददाति, बहुं सो पुञ्ञं पसवती'ति । अथ खो माघो माणवो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

पुच्छामहं भो[1] गोतमं वदञ्ञुं (इति माघो माणवो),
कासायवासिं अगहं[2] चरन्तं ।
यो याचयोगो दानपति गहट्ठो, पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो ।
ददं परेसं इध अन्नपानं, कथं हुतं यजमानस्स सुज्झे ॥१॥
(यो) याचयोगो दानपति[3] गहट्ठो (माघोति भगवा)
पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो ।
ददं परेसं इध अन्नपानं, आराधये दक्खिणेय्ये हि तादि ॥२॥
यो याचयोगो दानपति गहट्ठो (इति माघो माणवो),
पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो ।
ददं परेसं इध अन्नपानं, अक्खाहि मे भगवा दक्खिणेय्ये ॥३॥
ये वे असत्ता[4] विचरन्ति लोके, अकिञ्चना केवलिनो यतत्ता ।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो[5] यजेथ ॥४॥
ये सब्बसंयोजनबन्धनच्छिदा, दन्ता विमुत्ता अनिघा निरासा ।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥५॥

---

१. म० गोतमो वदेथ । २. अगिहं—सी । अगेहं—रो० । ३ दायको—सी स्या० रो । ४. अलग्गा—स्या । ५ पुञ्ञपेखो—सी रो क ।

"गौतम ! मैं दायक हूँ, दानपति हूँ, याचकों को समझनेवाला हूँ, याचने योग्य हूँ। धार्मिक रीति से धन कमाकर, धर्म से लब्ध, धर्म से प्राप्त धन एक को भी देता हूँ, दो को भी देता हूँ, तीन को भी देता हूँ, चार को भी देता हूँ, पाँच को भी देता हूँ, छः को भी देता हूँ, सात को भी देता हूँ, आठ को भी देता हूँ, नौ को भी देता हूँ, दस को भी देता हूँ, बीस को भी देता हूँ, तीस को भी देता हूँ, चालीस को भी देता हूँ, पचास को भी देता हूँ, सौ को भी देता हूँ, बहुतों को भी देता हूँ। क्या, गौतम ! इस प्रकार देनेवाला, चढानेवाला मैं बहुत पुण्य कमाता हूँ ?"

"हाँ माणवक ! इस प्रकार देनेवाले, चढानेवाले तुम बहुत पुण्य अवश्य कमाते हो। हे माणवक ! जो दायक दानपति, याचकों को समझनेवाला, याचने योग्य (मनुष्य) धर्म से धन लाभकर, धर्म से धन प्राप्तकर एक को भी देता है, दो को भी देता है, तीन को भी देता है, चार को भी देता है, पाँच को भी देता है, छः को भी देता है, सात को भी देता है, आठ को भी देता है, नौ को भी देता है, दस को भी देता है, बीस को भी देता है, तीस को भी देता है, चालीस को भी देता है, पचास को भी देता है, सौ को भी देता है, बहुतों को भी देता है, वह बहुत पुण्य कमाता है।"

तब माघ माणवक ने गाथा में भगवान् से कहा :—

काषायवस्त्रधारी, याजकों को जाननेवाले आप गौतम से पूछता हूँ कि पुण्यार्थी हो, पुण्य का अपेक्षी हो, दूसरों को अन्न-पान दान करनेवाले, याचने योग्य, दानपति, गृहस्थ का दान किसे देने से महत्फल होता है ? ॥१॥

बुद्धः—

पुण्यार्थी हो, पुण्यापेक्षी हो, जो याचने योग्य, दानपति गृहस्थ, दूसरों को अन्न-पान का दान देता है, (उसे) चाहिए कि स्थिर दक्षिणार्हों को (दान से) प्रसन्न करें ॥२॥

माघः—

पुण्यापेक्षी हो, याचने योग्य, दानपति गृहस्थ दूसरों को अन्न-पान का दान करता है। भगवान् ! (दानी) मुझे दक्षिणार्ह बतावें ॥३॥

बुद्धः—

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है (उसे चाहिए कि) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे, जो कि अकिंचन हैं, केवली हैं, सयमी हैं (और) अनासक्तभाव से ससार में विचरते हैं ॥४॥

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है (उसे चाहिए कि) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे, जिन्होंने सब मानसिक बन्धनों को तोड दिया है, (और जो) दान्त हैं, विमुक्त हैं, दुःखरहित हैं, तृणारहित हैं ॥५॥

यो वेदगू ञानरतो सतीमा, सम्बोधिपत्तो सरणं बहूनं ।
कालेन तम्हि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥१७॥

अद्धा अमोघा मम पुच्छना अहु, अक्खासि मे भगवा दक्खिणेय्ये ।
त्वं हेत्थ जानासि यथातथा इदं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥१८॥

यो याचयोगो दानपति गहट्ठो (इति माघो माणवो),
पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो ।
दद परेसं इध अन्नपानं, अक्खाहि मे भगवा यञ्ञसम्पदं ॥१९॥

यजस्सु यजमानो (माघोति भगवा), सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं ।
आरम्मणं यजमानस्स यञ्ञं,[1] एत्थ पतिट्ठाय जहाति दोसं ॥२०॥

सो वीतरागो पविनेय्य दोसं, मेत्तं चित्तं भावयं अप्पमाणं ।
रत्तिं दिवं सततं अप्पमत्तो, सब्बा दिसा फरते अप्पमञ्ञं ॥२१॥

को सुज्झति मुच्चति बज्झति च केनत्तना गच्छति ब्रह्मलोकं ।
अजानतो मे मुनि ब्रूहि पुट्ठो, भगवा हि मे सक्खि ब्रह्मज्ज दिट्ठो ।
तुवं हि नो ब्रह्मसमोति सच्चं, कथं उपपज्जति ब्रह्मलोकं (जुतीमा[2]) ॥२२॥

यो यजति तिविधं यञ्ञसम्पदं (माघोति भगवा),
आराधये दक्खिणेय्येहि तादि ।
एवं यजित्वा सम्मा याचयोगो, उपपज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रूमीति ॥२३॥

एवं वुत्ते माघो माणवो भगवन्तं एतदवोच-अभिक्कन्तं भो गोतम' पे० 'अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतन्ति ।

माघसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. यञ्ञं—सी० म० । २ जुतिमा—म० ।

"जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है (उने चाहिए कि) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे, जो कि ज्ञानी है, ध्यान मे रत हैं, स्मृतिमान् हैं, सम्बोधिप्राप्त है और बहुतो की शरण है" ॥१७॥

माघ :—

सचमुच मेरा प्रश्न खाली नहीं गया। भगवान् ने मुझे दक्षिणार्ह बताये है। यहाँ आप ही इस यथार्थता को जानते है, इसलिए आपही को यह धर्म विदित है ॥१८॥

पुण्यार्थी हो, पुण्यापेक्षी हो, याचने योग्य, दानपति गृहस्थ दूसरों को अन्न-पान का दान करता है। भगवान् मुझे दान का सुपरिणाम बताव ॥१९॥

बुद्ध :—

माघ! दान करो और सर्वत्र अपने मन को प्रसन्न रखो। दान ही दायक का आरम्मण है। इसमे प्रतिष्ठित हो (उसका मन) द्वेष छोडता है ॥२०॥

वह वीतरागी हो, द्वेप का दमन कर, असीम मैत्रीभावना करनेवाला हो, रात दिन सतत अप्रमत्त हो, सब दिशाओं में असीम (मैत्री) भाव फैलाता है ॥२१॥

माघ :—

मुझ अज्ञानी को मुनि बतावें कि कौन शुद्ध होता है, मुक्त होता है, बन्धन में पडता है और ब्रह्मलोक को जाता है? भगवान् मेरे देखे साक्षात् ब्रह्म हैं। यह सत्य है कि आप हमारे लिए ब्रह्म सम हैं। धृतिमान्! ब्रह्मलोक मे उत्पत्ति किस प्रकार होती है? ॥२२॥

बुद्ध :—

माघ! मैं कहता हूँ। जो तीन प्रकार का दान देता है वह दक्षिणार्हों को प्रसन्न रखता है। इस प्रकार अच्छी तरह दान देकर दाता ब्रह्मलोक में जन्म लेता है ॥२३॥

"आश्चर्य है! हे **गौतम**! आश्चर्य है! हे **गौतम**! हे **गौतम**! जिस प्रकार औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले भटके को राह बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप धारण करे, जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। हम आप गौतम की शरण जाते हैं, धर्म तथा भिक्षु सघ की भी। आप गौतम हमें आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

माघसुत्त समाप्त।

३२—सभिय-सुत्त

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन सभियस्स परिब्बाजकस्स पुराणसालोहिताय देवताय पञ्हा उद्दिट्ठा होन्ति—“यो ते, सभिय, समणो वा ब्राह्मणो वा इमे पञ्हे पुट्ठो ब्याकरोति, तस्स सन्तिके ब्रह्मचरियं चरेय्यासी”ति। अथ खो सभियो परिब्बाजको तस्सा देवताय सन्तिके पञ्हे उग्गहेत्वा, ये ते समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स सेय्यथीदं—पूरणो[1] कस्सपो, मक्खलिगोसालो अजितो केसकम्बली,पकुधो[2] कच्चायनो[3],सञ्चयो[4] बेलट्ठिपुत्तो[5],निगण्ठो नातपुत्तो[6], ते उपसङ्कमित्वा ते पञ्हे पुच्छति। ते सभियेन परिब्बाजकेन पञ्हे पुट्ठा न संपायन्ति असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोन्ति, अपि च सभियं येव परिब्बाजकं पटिपुच्छन्ति। अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि- “ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथीदं–पूरणो कस्सपो पे० निगण्ठो नातपुत्तो ते मया पञ्हे पुट्ठा न संपायन्ति असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोन्ति, अपि च मञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छन्ति- यन्नूनाहं हीनायावत्तित्वा कामे परिभुञ्जेय्य”न्ति। अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—“अयम्पि[7] समणो गोतमो[8] सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पञ्हे पुच्छेय्य”न्ति। अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—“ये पि[9] खो ते[10] भोन्तो समणब्राह्मणा जिण्णा वुड्ढा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता थेरा रत्तञ्ञू चिरपब्बजिता सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स सेय्यथीदं–पूरणो कस्सपो पे० निगण्ठो नातपुत्तो ते’पि मया पञ्हे पुट्ठा न संपायन्ति, असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोन्ति अपि च मञ्ञेवेत्थ

---

१ पुराणो–स्या० । २ पकुधो–सी ; पकुधो–स्या क । ३ कच्चानो–म०, स्या । ४ सञ्चयो–म । ५ बेलट्ठपुत्तो–म०; बेलट्ठिपुत्तो–स्या । ६ नातपुत्तो–म० स्या । ७-८ ममम्पि खो समणो–सी० । ९-१० येपि खो ते–सी म०; ये खो ते–क ।

३२—सभिय-सुत्त

[सभिय परिव्राजक उस समय के छ नामी धर्म-प्रवर्तकों के पास जाकर श्रमण, ब्राह्मण, स्नातक, क्षेत्रजिन, कुशल, पण्डित, मुनि, वेदज्ञ, अनुविज्ञ, वीर्य्यवान्, आजानीय, श्रोत्रिय, आर्य, आचारवान् तथा परिव्राजक के विषय में पूछता है। उनसे सन्तुष्ट न हो वह भगवान् के पास जाता है। भगवान् के उत्तरों से प्रसन्न सभिय भिक्षु-सघ में सम्मिलित हो जाता है।]

ऐसा मैंने सुनाः—

एक समय भगवान् **राजगृह** में **वेलुवन कलन्दकनिवाप** में विहार करते थे। उस समय **सभिय** परिव्राजक के एक हितैपी देवता ने उसे कुछ प्रश्न सिखा कर कहा—'**सभिय !** जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन प्रश्नों के उत्तर देंगे उन्हीं के पास ब्रह्मचर्य का पालन करो। तब **सभिय** परिव्राज उस देवता के पास प्रश्न सीखकर **पूरण कश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्वली, प्रकुध कत्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्र और निर्ग्रन्थ नाथपुत्र** जैसे संघवाले गणवाले, गण चार्य, नामी, यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों से सम्मानित श्रमण-ब्राह्मणों के पास जाकर प्रश्न पूछने लगा। **सभिय** परिव्राजक के प्रश्न पूछने पर वे उत्तर न दे सके, उत्तर न दे सकने पर कोप, द्वेष तथा अप्रसन्नता प्रकट करने और उलटा **सभिय** से ही प्रश्न करने लगे। तब **सभिय** परिव्राजक को ऐसा (विचार) हुआ—**पुराण कश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्वली, प्रकुध कात्यायन, सजय वेलट्ठिपुत्र और निर्ग्रन्थ नाथपुत्र** जैसे सघवाले, गणवाले, गणाचार्य, नामी, यशस्वी, तीर्थङ्कर, बहुत लोगों से सम्मानित जो श्रमण-ब्राह्मण हैं, प्रश्न पूछने पर वे उत्तर नहीं दे सकते, उत्तर न दे सकने पर कोप, द्वेष तथा अप्रसन्नता प्रकट करते है और उल्टा मुझसे ही प्रश्न करते हैं। इसलिए अच्छा है कि गृहस्थ होकर विषयों का भोग करूँ।

तब सभिय परिव्राजक को ऐसा (विचार) हुआ—यह श्रमण गौतम भी सघी हैं, गणी हैं, गणाचार्य हैं, यशस्वी हैं और बहुत जनों से सम्मानित हैं। इसलिए अच्छा हो कि श्रमण गौतम के पास जाकर इन प्रश्नों को पूछूँ। तब **सभिम** परिव्राजक को ऐसा (विचार) हुआ—पूरण कश्यक, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्वली, प्रकुधकात्यायन, सजय वेलट्ठिपुत्र और निर्गन्थ नाथपुत्र जैसे जीर्ण, वृद्ध वयस्क, चिरजीवी, अवस्थाप्राप्त, स्थविर, अनुभवी, चिरप्रव्रजित, सघी, गणी, गणाचार्य, नामी, यशस्वी, तीर्थङ्कर, बहुत लोगों से सम्मानित श्रमण-ब्रह्मण भी मेरे प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकते, न दे सकने पर कोप, द्वेष तथा अप्रसन्नता

पटिपुच्छन्ति । किं पन मे समणो गोतमो इमे पञ्हे पुट्ठो ब्याकरिस्सति ।
समणो हि[1] गोतमो दहरो चेव जातिया नवो च पब्बज्जाया"ति । अथ खो
सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"समणो खो दहरोति न परि
भोतब्बो । दहरो'पि चे समणो होति, सो होति महिद्धिको महानुभावो
यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पञ्हे पुच्छेय्य"न्ति । अथ खो
सभियो परिब्बाजको येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि । अनुपुब्बेन
चारिकं चरमानो येन राजगहं वेळुवनं कलन्दकनिवापो येन भगवा
तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं
सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो
सभियो परिब्बाजको भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

कङ्खी वेचिकिच्छी आगमं (इति सभियो), पञ्हे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो ।
तेसन्तकरो भवाहि[2] पुट्ठो अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकरोहि मे ॥ १ ॥

दूरतो आगतोसि (सभियाति भगवा), पञ्हे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो ।
तेसन्तकरो[4] भवामि[5] पुट्ठो, अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकरोमि ते ॥ २ ॥

पुच्छ[6] मं सभिय पञ्हं, यं किञ्चि मनसिच्छसि ।
तस्स तस्सेव पञ्हस्स, अहं अन्तं करोमि ते'ति ॥ ३ ॥

अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत
भो, अब्भुतं वत भो, यावताहं अञ्ञेसु समणब्राह्मणेसु ओकासमत्तम्पि[7]
नालत्थं तं मे इदं समणेन गोतमेन ओकासकम्मं कत"न्ति अत्तमनो
पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं पञ्हं पुच्छि—

किं पत्तिनमाहु भिक्खुनं (इति सभियो) सोरतं केन कथं च दन्तमाहु ।
बुद्धो'ति कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥४॥

पज्जेन कतेन अत्तना (सभियाति भगवा) परिनिब्बानगतो वितिण्णकङ्खो ।
विभवं च भवं च विप्पहाय, वुसितवा खीणपुनब्भवो स भिक्खु ॥५॥

सब्बत्थ उपेक्खको सतीमा न सो हिंसति किञ्चि सब्बलोके ।
तिण्णो समणो अनाविलो, उस्सदा यस्स न सन्ति सोरतो सो ॥६॥

यस्सिन्द्रियानि भावितानि अज्झत्तं बहिद्धा च सब्बलोके ।
निब्बिज्झ इमं परं च लोकं, कालं कङ्खति भावितो स दन्तो ॥७॥

---

१ यो—स्या क । २ अमासतो—म । ३ एत्थ 'भवामि पञ्हे मे' ति पाठो न स्या पोत्थकेसु दिस्सति । ४-५. तेसन्तकरोमि ते—क । ६. पुच्छसि स्या । ७ ओकासकम्मम्पमत्तम्पि—म स्या ।

प्रकट करते हैं और उलटा मुझसे ही प्रश्न करते हैं। क्या श्रमण गौतम मेरे इन प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे? वे तो आयु में भी छोटे है और प्रव्रज्या मे भी नये हैं। (लेकिन) युवक श्रमण भी ऐसे होते हैं जो कि बड़े सिद्धिवाले और प्रतापी हैं। इसलिए अच्छा हो कि श्रमण गौतम के पास जाकर मैं प्रश्न पूछूँ।

तब **सभिय** परिव्राजक राजगृह की ओर चल दिया। क्रमश. चारिका करते हुए राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा, पहुँच कर भगवान् से कुशल सवाद पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे **सभिय** परिव्राजक ने भगवान् को गाथा में कहा :—

सशय और विचिकित्सा सहित हो प्रश्न पूछने की इच्छा से (यहाँ) आया हूँ। भगवान्! पूछने पर धार्मिक रीति से इसका उत्तर मुझे देकर (शकाओं का) समाधान करें ॥१॥

बुद्ध:—

सभिय! प्रश्न पूछने की इच्छा से तुम दूर से आये हो। (तुम्हारे) पूछने पर उनका समाधान कर सकता हूँ। तुम्हें क्रमशः धार्मिक रीति से उत्तर देता हूँ ॥२॥

सभिय! तुम्हारे मन में जो कुछ प्रश्न हैं, मुझसे पूछो। मैं तुम्हारे एक-एक प्रश्न का (उत्तर देकर सशय का) अन्त करता हूँ ॥३॥

तब **सभिय** परिव्राजक को ऐसा (विचार) हुआ—'आश्चर्य है! अद्भुत है! जहाँ दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों ने अवकाश तक नहीं दिया, वहाँ श्रमण गौतम ने मुझे यह अवकाश दिया'—ऐसा सोच प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, हर्षित हो, खुश हो, आनन्दित हो भगवान् से यह प्रश्न किया'—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को भिक्षु कहते हैं? शान्त और दान्त किसे कहते हैं? बुद्ध किसे कहते हैं? पूछने पर भगवान् इन प्रश्नों का मुझे उत्तर दें ॥४॥

बुद्ध —

जो स्वय मार्ग पर चलकर, शकाओं से परे हो, जन्म-मृत्यु को दूर कर परिनिर्वाणप्राप्त है, ब्रह्मचर्यवास समाप्त, पुनर्जन्म रहित वह भिक्षु है ॥५॥

सर्वत्र उपेक्षा-भाव सहित, स्मृतिमान् वह ससार मं किसी को नहीं सताता, (ससार) पारङ्गत, निर्मल, तृष्णा रहित जो श्रमण है, वह शान्त है ॥६॥

जिसकी इन्द्रियाँ सारे संसार में भीतर और बाहर वश में हैं, (जो) इस लोक तथा परलोक को जानकर (कृतकृत्य हो) मृत्यु की अपेक्षा करता है, सयमी वह शान्त है ॥७॥

कप्पानि विचेय्य केवलानि, संसारदुभयं[1] चुतूपपातं ।
विगतरजमनङ्गणं विसुद्धं, पत्तं जातिक्खयं तमाहु बुद्धन्ति ॥८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा अत्तमनो पमोदितो[2] उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—

किं पत्तिनमाहु ब्राह्मणं (इति सभियो), समणं केन कथं च न्हातको[3]ति ।
नागो'ति कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥९॥

बाहेत्वा[4] सब्बपापानि[5] (सभियाति भगवा), विमलो साधुसमाहितो ठितत्तो ।
संसारमतिच्च केवली सो, असितो तादि पवुच्चते स ब्रह्मा ॥१०॥

समितावि पहाय पुञ्ञपापं, विरजो ञत्वा इमं परं च लोकं ।
जातिमरणं उपातिवत्तो, समणो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥११॥

निन्हाय[6] सब्बपापकानि अज्झत्तं बहिद्धा च सब्बलोके ।
देवमनुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पं नेति तमाहु न्हातकोति ॥१२॥

आगुं न करोति किञ्चि लोके, सब्बसंयोगे[7] विसज्ज बन्धनानि ।
सब्बत्थ न सज्जति विमुत्तो, नागो तादि पवुच्चते[8] तथत्ताति ॥१३॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको प० भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—
कं खेत्तजिनं वदन्ति बुद्धा (इति सभियो), कुसलं केन कथं च पण्डितो ति ।
मुनि नाम कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥१४॥

खेत्तानि विचेय्य केवलानि (सभियाति भगवा),

दिब्बं मानुसकं च ब्रह्मखेत्तं ।

सब्बखेत्तमूलबन्धना पमुत्तो, खेत्तजिनो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥१५॥

कोसानि विचेय्य केवलानि, दिब्बं मानुसकं च ब्रह्मकोसं ।
(सब्ब) कोसमूलबन्धना पमुत्तो, कुसलो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥१६॥

तदुभयानि विचेय्य पण्डरानि अज्झत्तं बहिद्धा च सुद्धिपञ्ञो ।
कण्हं सुक्कं उपातिवत्तो, पण्डितो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥१७॥

असतं च सतं च ञत्वा धम्मं अज्झत्तं च बहिद्धा च सब्बलोके ।
देवमनुस्सेहि पूजियो[9] सो सङ्गं जालमतिच्च सो मुनीति ॥१८॥

---

१ संसारं दुभयं—म । २ पमुदितो—म । ३ नहातको—सी । ४ बाहित्वा—म स्या । ५ सब्बपापकानि—म स्या । ६ निन्हाय—स्या० । ७ सब्बसंयोगे—म । ८ पवुच्चती—सी । ९ पूजनीयो—म । पूजियो—सी ।

सर्व त्रिकालदर्शी, जन्म-मृत्यु रूपी द्वन्दात्मक ससार को जाननेवाले, रज और पास रहित, विशुद्ध, जन्म-क्षय को प्राप्त उन्हें बुद्ध कहते हैं ॥८॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, हर्षित हो, खुश हो, आनन्दित हो भगवान् से आगे भी प्रश्न किया—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को ब्राह्मण कहते है ? श्रमण और स्नातक किसे कहते हैं ? नाग किसे कहते हैं । पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ॥९॥

बुद्धः—

जो सब पापों को बहाकर निर्मल, साधु, सामाधिस्थ, स्थितात्मा, ससार-पारङ्गत, केवली, अनासक्त और स्थिर है, वह ब्राह्मण कहलाता है ॥१०॥

जो पुण्य और पाप को दूरकर शान्त हो गया है, इसलोक और परलोक को जानकर रज रहित हो गया है, जो जन्म के परे हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह श्रमण कहलाता है ॥११॥

जिसने ससार में अन्दर और बाहर के सब पापों को धो डाला है, और जो आवागमन में पडे देवताओं और मनुष्यों में (फिर) जन्म ग्रहण नहीं करता, वह स्नातक कहलाता है ॥१२॥

जो ससार में किसी प्रकार का पाप नहीं करता, जिसने सब बन्धनों को तोड डाला है (और जो) कहीं भी आसक्त नहीं होता, विमुक्त, स्थिर स्थितात्मा वह नाग कहलाता है ॥१३॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् से आगे प्रश्न किया:—

बुद्ध किसे क्षेत्रजिन बताते हैं ? कुशल कौन है ? पण्डित कौन है ? और मुनि किसे कहते हैं ? पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ॥१४॥

बुद्धः—

जो सब देव, मनुष्य और ब्रह्म क्षेत्रों (=लोकों) को जानकर सब क्षेत्रों के मूलबन्धन से मुक्त हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह क्षेत्रजिन कहलाता है ॥१५॥

जो सब देव, मनुष्य और ब्रह्म-कोषों को जानकर सब कोषों के मूलबन्धन से मुक्त हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह कुशल कहलाता है ॥१६॥

जो शुद्ध-प्रज्ञ अन्दर और बाहर के विषयों को जानकर पुण्य तथा पाप के परे हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह पण्डित कहलाता है ॥१७॥

जो सारे ससार में अन्दर और बाहर के सत् और असत् बातों को जानकर देवमनुष्यों से पूजित है, (और जो) आसक्ति रूपी जाल से परे है, वह मुनि कहलाता है ॥१८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको पे० 'भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि-
किं पत्तिनमाहु वेदगुं(इति सभियो),अनुविदितं केन कथं च विरियवा'ति ।
आजानीयो किन्ति नाम होति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥१९॥
वेदानि विचेय्य केवलानि (सभिया ति भगवा),
समणानं यानिपत्थि[1] ब्राह्मणानं ।
सब्बवेदनासु वीतरागो, सब्बं वेदमतिच्च वेदगू सो ॥२०॥
अनुविच्च पपञ्चनामरूपं, अज्झत्तं बहिद्धा च रोगमूलं ।
सब्बरागमूलबन्धना पमुत्तो, अनुविदितो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥२१॥
विरतो इध सब्बपापकेहि निरयदुक्खमतिच्च विरियवा[2] सो ।
सो विरियवा पधानवा, धीरो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥२२॥
यस्सस्सु लुतानि[3] बन्धनानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सङ्गमूलं ।
(सब्ब)सङ्गमूलबन्धना पमुत्तो,आजानियो तादि पवुच्चते तथत्ता'ति ॥२३॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको पे० भगवन्तं उत्तरि पञ्हं पुच्छि—
किं पत्तिनमाहु सोत्तियं (इति सभियो), अरियं केन कथं च चरणवा'ति ।
परिब्बाजको किन्ति नाम होति पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥२४॥
सुत्वा सब्बधम्मं अभिञ्ञाय लोके (सभिया'ति भगवा),
सावज्जानवज्जं यदत्थि किञ्चि ।
अभिभुं अकथंकथिं विमुत्तं अनीघं सब्बधिमाहु सोत्तियो'ति ॥२५॥
छेत्वा आसवानि आलयानि, विद्वा सो न उपेति गब्भसेय्यं ।
सञ्ञं तिविधं पनुज्ज पङ्कं, नेति तमाहु अरियो'ति ॥२६॥
यो इध चरणेसु पत्तिपत्तो, कुसलो सब्बदा आजानाति धम्मं ।
सब्बत्थ न सज्जति विमुत्तो[4], पटिघा यस्स न सन्ति चरणवा सो ॥२७॥
दुक्खवेपक्कं यदत्थि कम्मं, उद्धं अधो च तिरियं वापि मज्झे ।
परिवज्जयित्वा[5] परिञ्ञचारी, मायं मानमथो'पि लोभकोधं ।
परियन्तमकासि नामरूपं, तं परिब्बाजकमाहु पत्तिपत्तन्ति ॥२८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा अत्तमनो पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

१ यानिधत्थि—सी स्या रो । २ वीरियवा—म । ३ छुतानि—म । ४ विद्व [illegible]—म । ५ नीति—म सी । ६ परिब्बाजकमिच्चा—सी

तब **सभिय** परिव्राजक ने भगवान् से आगे प्रश्न किया:—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को वेदज्ञ कहते हैं? अनुविज्ञ कौन है? वीर्यवान् कौन है? और आजानीय किसका नाम है? पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ॥१९॥

बुद्धः—

जो श्रमण तथा ब्राह्मणों की (समाधिगत) सभी अवस्थाओं को जान गया है, जो सब वेदनाओं में अनासक्त है, जो सब वेदनाओं से परे है, वह वेदज्ञ है ॥२०॥

जो अन्दर और बाहर के रोगमूल रूपी नाम-रूप के बन्धन को जान गया है, (और जो) सब रोगों के मूलबन्धन से मुक्त है, स्थिर, स्थितात्मा वह अनुविदित कहलाता है ॥२१॥

जो सब पापों से विरत है और निरय-दुःख से परे है, पराक्रमी, धीर, स्थितात्मा वह वीर्यवान् कहलाता है ॥२२॥

जिसने अन्दर और बाहर के सब बन्धनों को तोड़ डाला है, जो आसक्ति के मूल बन्धन से मुक्त है, स्थिर, स्थितात्मा वह आजानीय कहलाता है ॥२३॥

तब **सभिय** परिव्राजक ने आगे प्रश्न किया :—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को श्रोत्रिय कहते हैं? आर्य कौन है? आचारवान् कौन है? परिव्राजक किसका नाम है? पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ॥२४॥

बुद्धः—

जो संसार में दोषी, निर्दोषी सब बातों को सुनकर अच्छी तरह जान गया है, जो विजेता है, संशय से मुक्त है, पाप रहित है, सब बन्धनों से मुक्त वह श्रोत्रिय है ॥२५॥

जो विज्ञ वासना रूपी आलयों को नष्टकर फिर जन्म ग्रहण नहीं करता, जो त्रिविध काम को नष्टकर फिर काम-चक्र में नहीं आता, वह आर्य है ॥२६॥

जो शीलवान् है, कुशल है, सदा धर्म को जाननेवाला है, (जो) कहीं आसक्त नहीं, सर्वत्र विमुक्त है और जिसमें द्वेषभाव नहीं, वह आचारवान् है ॥२७॥

जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान कालिक कर्म, और माया, मान, लोभ तथा क्रोध को दूरकर विचार पूर्वक विचरता है, जिसने नामरूप का अन्त किया है, प्राप्ति को प्राप्त उसे परिव्राजक कहते हैं ॥२८॥

तब **सभिय** परिव्राजक ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, हर्षित हो, खुश हो, आनन्दित हो, आसन से उठकर एक कन्धे पर उपरनी को सभाल कर, भगवान् को अभिवादन कर, भगवान् के सम्मुख अनुकूल गाथाओं में उनकी प्रशंसा की—

यानि च तीणि यानि च सट्ठि, समणप्पवादसितानि[1] भूरिपञ्ञ ।
सञ्ञक्खरसञ्ञनिस्सितानि, ओसरणानि विनेय्य ओघतमगा ॥२९॥

अन्तगूसि पारगूसि[2] दुक्खस्स, अरहासि सम्मासम्बुद्धो खीणासवं तं मञ्ञे । जुतिमा मुतिमा पहूतपञ्ञा, दुक्खस्सन्तकर अतारयि मं ॥३०॥

यं मे कङ्खितमञ्ञासि, विचिकिच्छं[3] मं अतारेसि[4] नमो ते ।
मुनि मोनपथेसु पत्तिपत्त, अखिल आदिच्चबन्धु सोरतो'सि ॥३१॥

या मे कङ्खा पुरे आसि, तं मे ब्याकासि चक्खुमा ।
अद्धा मुनिसि सम्बुद्धो, नत्थि नीवरणा तव ॥३२॥

उपायासा च ते सब्बे, विद्धस्ता विनळीकता ।
सीतिभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सच्चनिक्कमो ॥३३॥

तस्स ते नागनागस्स, महावीरस्स भासतो ।
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता ।३४॥

नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम ।
सदेवकस्मि लोकस्मि, नत्थि ते पटिपुग्गलो ॥३५॥

तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू[5] मुनि ।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसि मं पजं ॥३६॥

उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता ।
सीहासि अनुपादानो, पहीनभयभेरवो ॥३७॥

पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिप्पति[6] ।
एवं पुञ्ञे च पापे च, उभये त्वं न लिप्पसि ।
पादे वीर पसारेहि, सभियो वन्दति सत्थुनो'ति ॥३८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच-"अभिक्कन्तं गोतम"'''प '''धम्मं च भिक्खुसंघञ्च,लभेय्याहं,भन्ते,

१ समणप्पवादनिस्सितानि—स्या । २ पारगू—म, सी । ३ विचिकिच्छा—म । ४ तारयि—म । ५ माराभिभू—स्या । ६ उपलिम्पति—म ।

"हे महाप्रज्ञ ! आप श्रमणों के व्यवहार तथा कल्पना-आश्रित तिरसठ दृष्टियों तथा नाना योनि रूपी घाटों के प्रवाह को पारकर गये हैं ॥२९॥

"आप दु:ख का अन्त कर गये हैं, पार कर गये हैं। (मैं) आपको **क्षीणाश्रव* अर्हत्*** सम्यक् सम्बुद्ध मानता हूँ। ज्योतिष्मान्, मतिमान्, महाप्रज्ञ ! दु:ख के अन्त करनेवाले आपने मुझे (भवसागर से) पार लगाया है ॥३०॥

"संशय सहित जानकर आपने मुझे संशयों से पार कर दिया, आप को नमस्कार है। ज्ञान के पथ पर चलकर निर्वाण-प्राप्त, द्वेष रहित, आदित्यबन्धु मुनि आप शान्त हैं ॥३१॥

"चक्षुष्मान् ! पहले मुझमें जो शंकाएँ थीं, आप ने उनका समाधान कर दिया। सम्बुद्ध आप अवश्य मुनि हैं। आप में नीवरण (= मानसिक आवरण) नहीं है ॥३२॥

"आप की सब परेशानियाँ नष्ट और विनष्ट हैं। आप शान्त हैं, दान्त हैं, धृतिमान् हैं और सत्यवादी हैं ॥३३॥

"श्रेष्ठों में श्रेष्ठ महावीर ! दोनों नारद पर्वत तथा अन्य सब देवता आपके भाषण का अनुमोदन करते हैं ॥३४॥

"श्रेष्ठ पुरुष ! आप को मेरा नमस्कार है, हे उत्तम पुरुष ! आप को मेरा नमस्कार है। देवता और मनुष्य सहित सारे संसार में आप के समान कोई नहीं है ॥३५॥

"आप बुद्ध हैं। आप शास्ता हैं। आप मार-विजयी मुनि हैं। आप ने समूल वासनाओं को नष्ट कर भवसागर को पार किया है और इस प्रजा को भी पार लगाया है ॥३६॥

"आप ने वासनाबन्धनों को पार किया है, वासनाओं को नष्ट किया है, (आप) अनासक्त भयभीति रहित सिंह हैं ॥३७॥

"जिस प्रकार सुन्दर पुण्डरीक पानी में लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार पुण्य, पाप दोनों में आप लिप्त नहीं होते। वीर ! पाँवों को पसारिए, सभिय शास्ता की वन्दना करता है" ॥३८॥

तब **सभिय** परिव्राजक भगवान् के पाँवों पर नतमस्तक हो ऐसा कहने लगा—"आश्चर्य है ! गौतम ! आश्चर्य है ! गौतम ! जिस प्रकार कोई औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले भटके को मार्ग बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप धारण करे, जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। इसलिए मैं भगवान् गौतम की

भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पद"न्ति । "यो खो, सभिय, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय; अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता"ति । "सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं, आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया"ति ।

अलत्थ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं पे० अञ्ञतरो खो पनायस्मा सभियो अरहतं अहोसीति ।

सभियसुत्तं निट्ठितं ।

३२—सेल-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा अंगुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि येन आपणं नाम अङ्गुत्तरापानं निगमो तदवसरि । अस्सोसि खो केणियो जटिलो—"समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु

शरण जाता हूँ, धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी। मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या तथा **उपसम्पदा** लेना चाहता हूँ"।

"**सभिय!** यदि कोई अन्यतीर्थक इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या और **उपसम्पदा** की आकांक्षा करे तो उसे चार महीने का **'परिवास'*** करना होता है। चार महीने के बाद प्रसन्न (होने पर) भिक्षु प्रव्रज्या और **उपसम्पदा** देते हैं। फिर भी इसमें व्यक्तियों का भी विचार है।"

"भन्ते! यदि इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या तथा **उपसम्पदा** की आकांक्षा करनेवाले अन्यतीर्थक को चार महीने का **'परिवास'** करना होता है, और चार महीने के बीतने पर प्रसन्न भिक्षु उसे प्रव्रज्या और **उपसम्पदा** देते हैं तो मैं चार वर्ष तक **परिवास** करूँगा। चार वर्ष के बाद प्रसन्न भिक्षु (मुझे) भिक्षु के रूप में प्रव्रजित करें, **उपसम्पदा** दें।"

सभिय परिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, **उपसम्पदा** पाई। **उपसम्पदा** के कुछ समय बाद आयुष्मान् **सभिय** एकान्त में, अप्रमत्त, उद्योगी तथा तत्पर हो, जिस अर्थ के लिए कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से घर से बेघर हो विहरता है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के अन्त को इसी जीवन में स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरने लगे। उन्होंने जान लिया—"जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, कृतकृत्य हो गया और पुनर्जन्म रुक गया।"

आयुष्मान् सभिय **अर्हन्तों*** में से एक हुए।

सभियसुत्त समाप्त।

३३—सेल-सुत्त

[केणिय जटिल अपने आश्रम में भिक्षु-संघ सहित भगवान् के लिए भोजन तैयार कर रहा है। इस तैयारी को देख सेल ब्राह्मण अपनी शिष्य-मण्डली के साथ वहाँ पहुँच जाता है। केणिय से भगवान् के आगमन के विषय में जानकर सेल उनके पास जाता है। भगवान् के सदुपदेश से प्रसन्न सेल अपने तीन सौ शिष्यों के साथ संघ में सम्मिलित होता है।]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली के साथ **अङ्गुत्तराप** में चारिका करते हुए जहाँ **अङ्गुत्तरापों** का **आपण** नामक कस्बा था, वहाँ पहुँचे। **केणिय** जटिल ने सुना—'शाक्यकुल से प्रव्रजित **शाक्य-पुत्र** श्रमण **गौतम** साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली के साथ **अङ्गुत्तराप**

चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो–इति'पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवाति' सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति; सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति' साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती''ति। अथ खो केणियो जटिलो येन भगवा तेनु-पसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्प हंसेसि। अथ खो केणियो जटिलो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो भगवन्तं एतदवोच—''अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना''ति। एवं वुत्ते भगवा केणियं जटिलं एतदवोच–''महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि त्वं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो''ति। दुतियम्पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच— ''किञ्चापि, भो गोतम, महाभिक्खु-सङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि अहञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो, अधिवा सेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना''ति। दुतियम्पि खो भगवा केणियं जटिलं एतदवोच—''महा खो केणिय भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि त्वं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो''ति। ततियम्पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच– 'किञ्चापि भो गोतम, महाभिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि अहं च खो ब्राह्मणेसु अभि-प्पसन्नो, अधिवासेत्वेव मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घे ना''ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो केणियो जटिलो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना येन सको अस्समो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा मित्तामच्चे ञातिसालोहिते आमन्तेसि–''सुणन्तु मे भोन्तो मित्तामच्चा ञातिसालोहिता, समणो मे गोतमो निमन्तितो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेन न येन मे कायवेय्यावटिकं करेय्याथा''ति। ''एवं भो''ति

मे चारिका करते हुए आपण में पहुँचे हैं। उन भगवान् गौतम के विषय में ऐसी कीर्ति फैली है—वे भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुन्दर गतिवाले हैं, लोक को जाननेवाले हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, पुरुषो को दमन करनेवाले सारथी हैं, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं, बुद्ध हैं और भगवान् हैं। वे देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित इस लोक को, देव-मनुष्य सहित इस प्रजा को स्वय जान कर, साक्षात् कर उपदेश देते हैं। वे आरम्भ में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अन्त में कल्याणकारी, अर्थ सहित, व्यञ्जन सहित, सर्वथा परिपूर्ण धर्म तथा परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं। इस प्रकार के अर्हन्तों का दर्शन कल्यणकारी है।'

तब केणिय जटिल जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जा भगवान् से कुशल मङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिल को भगवान् ने धार्मिक उपदेश कर दिखा दिया, बता उत्साहित कर दिया, हर्षित कर दिया। तब धार्मिक कथा से शिक्षित, उपदेशित, उत्साहित, हर्षित केणिय जटिल ने भगवान् से यह कहा—आप गौतम! भिक्षुसघ के साथ कल के लिए मेरा भोजन स्वीकार करें।

ऐसा कहने पर भगवान् केणिय जटिल से यह बोले—केणिय! साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बडी मण्डली है, और तुम तो ब्राह्मणों में श्रद्धा रखते हो।

दूसरी बार भी केणिय जटिल ने भगवान् से यह कहा—गौतम! यद्यपि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बडी मण्डली है, और मैं ब्राह्मणो में श्रद्धा रखता हूँ, फिर भी आप कल के लिए भिक्षुसघ के साथ मेरा भोजन स्वीकार करें।

तीसरी बार भी भगवान् ने केणिय जटिल से यह कहा—केणिय! साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बडी मण्डली है, और तुम तो ब्राह्मणों में श्रद्धा रखते हो।

तीसरी बार भी केणिय जटिल ने भगवान् से यह कहा—हे गौतम! यद्यपि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बडी मण्डली है, और मैं ब्राह्मणों में श्रद्धा रखता हूँ, फिर भी आप कल के लिए भिक्षुसघ के साथ मेरा भोजन स्वीकार करें। भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार किया।

तब केणिय जटिल भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठकर अपने आश्रम पर गया, जाकर मित्रों, सलाहकारों, बन्धुओं तथा हितैषियों को सम्बोधित कर कहा—मेरे मित्र, सलाहकार, बन्धु तथा हितैषी सुनें। मैंने भिक्षुसघ सहित श्रमण गौतम को कल भोजन के लिए निमन्त्रित किया है, इसलिए आप लोग मेरा हाथ बटावें।

सो केणियस्स जटिलस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता केणियस्स जटिलस्स पटिस्सुत्वा अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ति, अप्पेकच्चे कट्ठानि फालेन्ति, अप्पेकच्चे भाजनानि धोवन्ति, अप्पेकच्चे उदकमणिकं पतिट्ठापेन्ति, अप्पेकच्चे आसनानि पञ्ञापेन्ति' केणियो पन जटिलो सामं येव मण्डलमालं पटियादेति। तेन खो पन समयेन सेलो ब्राह्मणो आपणे पटिवसति, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डु केटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो तीणि माणवकसतानि मन्ते वाचेति। तेन खो पन समयेन केणियो जटिलो सेले ब्राह्मणे अभिप्पसन्नो होति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि परिवुतो जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो केणियस्स जटिलस्स अस्समे अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ते' पे॰ 'अप्पेकच्चे आसनानि पञ्ञापेन्ते, केणियं पन जटिलं सामं येव मण्डलमालं पटियादेन्तं, दिस्वान केणियं जटिलं एतदवोच—"किन्नु भोतो केणियस्स आवाहो वा भविस्सति, विवाहो वा भविस्सति, महायञ्ञो वा पच्चुपट्ठितो, राजा वा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेना"ति? "न मे सेल, आवाहो भविस्सति नपि विवाहो भविस्सति, नपि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेन, अपि च खो मे महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो अत्थि। समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं' पे॰ 'बुद्धो भगवाति। सो मे निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेना"ति। "बुद्धो'ति भो, केणिय वदसि"? "बुद्धो'ति, भो सेल, वदामि"। "बुद्धो'ति, भो केणिय वदसि?" "बुद्धो'ति भो सेल, वदामी"ति। अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"घोसो'पि खो एसो दुल्लभो लोकस्मिं यदिदं बुद्धो'ति। आगतानि खो पन अम्हाकं मन्तेसु द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनञ्ञा। सचे अगारं अज्झावसति राजा होति चक्कवत्ति धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति सेय्यथीदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं अस्सरतनं मणिरतनं, इत्थिरतनं गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्प

१ १. केणियस्सजटिलस्स अस्समे।

'बहुत अच्छा' कह **केणिय** जटिल के मित्रों, सलाहकारों, बन्धुओं तथा हितैषियों में से कुछ लोग चूल्हे बनाने लगे, कुछ लोग लकडी फाडने लगे, कुछ लोग बर्तन धोने लगे, कुछ लोग आसन बिछाने लगे, और **केणिय** जटिल स्वय मडप ठीक करने लगा।

उस समय **सेल** ब्राह्मण **आपण** में रहता था। वह तीनों वेदों, निघण्टु, कैटुभ, निरुक्ति, पाचवें वेद रूपी इतिहास में पारङ्गत हो, काव्य, व्याकरण, लोकायत शास्त्र तथा महापुरुष-लक्षणों में निपुण हो, तीन सौ माणवकों को मन्त्र पढाता था। उस समय **केणिय** जटिल **सेल** ब्राह्मण में श्रद्धा रखता था। इसलिए **सेल** ब्राह्मण तीन सौ माणवकों को साथ लेकर टहलते हुए, विचरते हुए जहाँ **केणिय** जटिल का आश्रम था वहाँ पहुँचा। **सेल** ब्राह्मण **केणिय** जटिल के आश्रम में कुछ लोगों को चूल्हे बनाते''पे॰ ' स्वय **केणिय** जटिल को मण्टप ठीक करते देखा, देख कर **केणिय** जटिल से बोला—क्या जी **केणिय**! तुम्हारे यहाँ कोई आवाह-विवाह होगा? या कोई यज्ञ होनेवाला है? या सेना सहित **मगधराज सेनिय बिम्बिसार** कल के लिए निमन्त्रित है?

केणिय—**सेल**! न तो मेरे यहाँ आवाह (=कन्या ग्रहण) होगा, न विवाह (=कन्या दान) होगा, और न सेना सहित **मगधराज सेनिय बिम्बिसार** ही कल के लिए निमन्त्रित हैं, किन्तु मेरे यहाँ महायज्ञ होनेवाला है। शाक्य कुल से प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढे बारह सौ भिक्षुओं की बडी मण्डली के साथ **अंगुत्तराप** में चारिका करते हुए **आपण** में पहुँचे हैं। उन भगवान् के विषय में ऐसी कीर्ति फैली है ' पे॰ भिक्षुसघ सहित वे कल के लिए मेरे यहाँ निमन्त्रित हैं।

सेल—क्या केणिय! बुद्ध बताते हो?

केणिय—हाँ, सेल! बुद्ध बताता हूँ।

सेल—क्या केणिय! बुद्ध बताते हो?

केणिय—हाँ, सेल! बुद्ध बताता हूँ।

तब **सेल** ब्राह्मण को ऐसा (विचार) हुआ—यह बुद्ध शब्द भी ससार में दुर्लभ है। हमारे शास्त्रों में बत्तीस महापुरुष-लक्षणों के विषय में आया है। उनसे युक्त महापुरुषों की दो ही गतियाँ हो सकती हैं, दूसरी नहीं। यदि गार्हस्थ में रहें तो वे धार्मिक, धर्मराज, चारों दिशाओं के विजेता, जनपद-स्थावर प्राप्त, **सात रत्नों** से युक्त चक्रवर्ती राजा होंगे। उनके सात रत्न ये होंगे—चक्र-रत्न, हस्तिरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न और सातवाँ परिणायक-रत्न। दूसरी सेनाओं को मर्दन करनेवाले हजार से अधिक उनके सूर वीर पुत्र

मद्दना । सा इमं पठवि सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति । सचे खो पनागारस्मा अनगारियं पब्बजति अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवत्तच्छदो । कहं पन, भो केणिय एतरहि सो भवं गोतमो विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो"ति ? एवं वुत्ते केणियो जटिलो दक्खिणं बाहं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदवोच—"येन सा, भो सेल, नीलवनराजी"ति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि । अथ खो सेलो ब्राह्मणो ते माणवके आमन्तेसि—

अप्पसद्दा भोन्तो आगच्छन्तु पदे पदं निक्खिपन्ता, दुरासदा हि ते भगवन्तो सीहा'व एकचरा यदा चाहं भो समणेन गोतमेन सद्धिं मन्तेय्यं मा मे भोन्तो अन्तरन्तरा कथं ओपातेथ, कथापरियोसानं मे भवन्तो आगमेन्तू"ति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि सम्मन्नेसि[1] । अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि येभुय्येन ठपेत्वा द्वे । द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे पहूतजिव्हताय च । अथ खो भगवतो एतदहोसि— 'पस्सति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि येभुय्येन ठपेत्वा द्वे द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे पहूतजिव्हताय चा"ति । अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि यथा अद्दस सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुय्हं । अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभोपि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि उभोपि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि केवलम्पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि । अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि— 'समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुण्णेहि, नो अपरिपुण्णेहि नो च खो नं जानामि बुद्धो वा नो वा । सुतं खो पन मे तं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं— ये ते भवन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते सके वण्णे भञ्ञमाने अत्तानं पातुकरोन्तीति यन्नूनाहं समणं गोतमं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं"ति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

---

१. सम्मन्नेसि—म० ।

होंगे। वे सागर पर्यन्त इस पृथ्वी को विना दण्ड के, विना शस्त्र के, धर्म से जीत लेंगे। यदि वे बेघर हो प्रव्रजित होंगे तो ससार में तृष्णा रहित अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होंगे।

केणिय ! वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध गौतम आज इस समय कहाँ रहते हैं ?

तव केणिय जटिल ने दाहिनी बाँह पकड कर सेल ब्राह्मण से यह कहा—हे सेल ! जहाँ वह नील वृक्ष पंक्ति है।

तव सेल ब्राह्मण तीन सौ माणवकों के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। तव सेल ब्राह्मण ने माणवकों से कहा—अल्प शब्द के साथ कदम पर कदम रखते हुए आना, सिंह जैसे एकचारी उन भगवानों के पास पहुँचना कठिन है। जब मैं श्रमण गौतम के साथ बातचीत करूँगा तो तुम लोग बीच बीच में बाधा न डालना। तुम लोग मेरी बातचीत के बाद आ जाना।

तव सेल ब्राह्मण भगवान् के पास गया और भगवान् से कुशल मगल पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सेल ब्राह्मण भगवान् के शरीर के बत्तीस महापुरुष लक्षण देखने लगा। सेल ब्राह्मण ने दो लक्षणों को छोड और सब लक्षणों को भगवान् के शरीर में देखा। कोपनिहित वस्त्रगुह्य (= लिंग) तथा बडी जीभ के विषय में उसे शका हुई, विचिकित्सा हुई, विश्वास नहीं हुआ, प्रसन्नता नहीं हुई।

तब भगवान् ने ऐसी ऋद्धि की जिससे सेल ब्राह्मण उनके वस्त्रगुह्य को देख सके। तब भगवान् ने जीभ को निकाल कर उससे दोनों कर्णस्थलों को स्पर्श किया, दोनों नासिका-स्थलों को स्पर्श किया और उससे सारे ललाटको ढँक दिया।

तब सेल ब्राह्मण को ऐसा हुआ—श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष लक्षणों से परिपूर्ण हैं, न कि अपरिपूर्ण। लेकिन मैं यह नहीं जानता कि वे बुद्ध हैं या नहीं। वृद्ध, वयस्क, आचार्य, प्राचार्य ब्राह्मणों को मैंने यह कहते सुना है—जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होते हैं, वे अपनी प्रशंसा सुनकर अपने आप को प्रकट करते हैं।

तब सेल ब्राह्मण ने अनुरूप गाथाओं में भगवान् के सम्मुख (उनकी) प्रशसा की :—

"परिपुण्णकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो ।
सुवण्णवण्णो'सि भगवा, सुसुक्कदाठो'सि विरियवा ॥१॥
नरस्स हि सुजातस्स, ये भवन्ति वियञ्जना ।
सब्बे ते तव कायस्मिं, महापुरिसलक्खणा ॥२॥
पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पतापवा ।
मज्झे समणसङ्घस्स, आदिच्चो'व विरोचसि[1] ॥३॥
कल्याणदस्सनो भिक्खु कञ्चनसन्निभत्तचो ।
किं ते समणभावेन, एवं उत्तमवण्णिनो ॥४॥
राजा अरहसि भवितुं चक्कवत्ती रथेसभो ।
चातुरन्तो विजितावी, जम्बुसण्डस्स[2] इस्सरो ॥५॥
खत्तिया भोजराजानो[3], अनुयुत्ता[4] भवन्ति ते ।
राजाभिराजा मनुजिन्दो, रज्जं कारेहि गोतम" ॥६॥
"राजाहमस्मि सेला (ति भगवा), धम्मराजा अनुत्तरो ।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पतिवत्तियं ' ॥७॥
"सम्बुद्धो पटिजानासि (इति सेलो ब्राह्मणो), धम्मराजा अनुत्तरो ।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, इति भाससि गोतम ॥८॥
को नु सेनापति भोतो सावको सत्थुरन्वयो ।
को ते इमं अनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं" ॥९॥
"मया पवत्तितं चक्कं (सेलाति भगवा), धम्मचक्कं अनुत्तरं ।
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतं ॥१०॥
अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं भावेतब्बं च भावितं ।
पहातब्बं पहीनं मे तस्मा बुद्धो'स्मि ब्राह्मण ॥११॥
विनयस्सु मयि कङ्खं अधिमुच्चस्सु ब्राह्मण ।
दुल्लभं दस्सनं होति, सम्बुद्धानं अभिण्हसो ॥१२॥
येसं[5] वे[6] दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो ।
सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकत्तो अनुत्तरो ॥१३॥
ब्रह्मभूतो अतितुलो मारसेनप्पमद्दनो ।
सब्बामित्ते वसी कत्वा मोदामि अकुतोभयो" ॥१४॥

---

१. विरोचति—सी । २. जम्बुमण्डस्स—क । ३ भोगिराजानो—म । ४ अनुयन्ता—म । ५. वस्स—स्या० । ६ वो—रो ।

"भगवान् ! आप परिपूर्ण शरीरवाले हैं, पवित्र हैं, सुजात हैं, सुन्दर हैं, आपका वर्ण सुवर्ण जैसा है, आप के दाँत अत्यन्त उज्ज्वल हैं और आप वीर्यवान् हैं ॥ १ ॥

"जो लक्षण सुजात मनुष्य के शरीर में होते हैं, वे सब महापुरुष लक्षण आप के शरीर में हैं ॥ २ ॥

"प्रसन्न नेत्रवाले, सुन्दर मुखवाले, महान्, ऋजु, प्रतापी (आप) सूर्य की तरह श्रमण समूह के बीच शोभायमान् हैं ॥ ३ ॥

"आप का दर्शन सुन्दर है, त्वचा आप की सुनहरी है। इतने सुन्दर आप को श्रमणभाव से क्या लाभ ? ॥ ४ ॥

"आप चार दिशाओं के विजेता, जम्बुद्वीप (=भारत) के ईश्वर, रथपति चक्रवर्ती राजा होने योग्य हैं ॥ ५ ॥

क्षत्रिय और सामन्त राजा आप के अनुकूल रहेंगे। (आप) राजाधिराज हैं, मनुजेन्द्र हैं, गौतम ! राज्य करें" ॥ ६ ॥

बुद्ध:—

सेल ! मैं राजा हूँ, अनुत्तर धर्मराज हूँ। मैं धर्म का चक्र चलाता हूँ, जिसे उल्टा नहीं जा सकता ॥ ७ ॥

सेल ब्राह्मण:—

आप अनुत्तर, धर्मराज सम्बुद्ध होने का दावा करते हैं। आप कहते हैं कि मैं धर्मचक्र का प्रवर्तन करता हूँ ॥ ८ ॥

आप का सेनापति कौन है ? आप का अनुयायी श्रावक कौन है ? आप के प्रवर्तित इस अनुत्तर धर्मचक्र का कौन अनुप्रवर्तन करता है ? ॥ ९ ॥

बुद्ध:—

मेरे प्रवर्तित इस अनुत्तर धर्मचक्र का अनुप्रवर्तन तथागत (=बुद्ध) का शिष्य सारिपुत्त करता है ॥ १० ॥

बुद्ध:—

ब्राह्मण ! जो कुछ जानना था मैंने जान लिया, जिसे सिद्ध करना था सिद्ध कर लिया, जिसे दूर करना था दूर किया, इसलिए मैं बुद्ध हूँ ॥ ११ ॥

ब्राह्मण ! मेरे विषय में शंका दूर करो, श्रद्धा लाओ, सम्यक् सम्बुद्धों का दर्शन प्रायः दुर्लभ है ॥ १२ ॥

ब्राह्मण ! जिन का संसार में प्रादुर्भाव प्रायः दुर्लभ है, वह सम्यक् सम्बुद्ध, अनुत्तर शल्यकर्ता मैं हूँ ॥१३॥

मैं ब्रह्मभूत हूँ, अतुल्य हूँ और मारसेना का मर्दन करनेवाला हूँ। मैं सब शत्रुओं को वश में कर बिना भय के प्रमोद करता हूँ ॥१४॥

"इमं भोन्तो निसामेथ, यथा भासति चक्खुमा ।
सल्लकत्तो महावीरो, सीहो'व नदति वने ॥१५॥
ब्रह्मभूतं अतितुलं, मारसेनप्पमद्दनं ।
को दिस्वा नप्पसीदेय्य, अपि कण्हाभिजातिको ॥१६॥
यो मं इच्छति अन्वेतु यो वा निच्छति गच्छतु ।
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपञ्ञस्स सन्तिके" ॥१७॥
"एतं चे' रुच्चति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासनं ।
मयम्पि पब्बजिस्साम, वरपञ्ञस्स सन्तिके" ॥१८॥
"ब्राह्मणा तिसता इमे, याचन्ति पञ्जलीकता ।
ब्रह्मचरियं चरिस्साम, भगवा तव सन्तिके" ॥१९॥
"स्वाक्खातं ब्रह्मचरियं (सेलाति भगवा), सन्दिट्ठिकमकालिकं ।
यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतो"ति ॥२०॥

अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं । अथ खो केणियो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके अस्समे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं"ति । अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन । अथ खो केणियो जटिलो बुद्धपमुखं[१] भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि । अथ खो केणियो जटिलो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

"अग्गिहुत्तमुखा यञ्ञा, सावित्ती छन्दसो मुखं ।
राजा मुखं मनुस्सानं, नदीनं सागरो मुखं ॥२१॥
नक्खत्तानं मुखं चन्दो आदिच्चो तपतं मुखं ।
पुञ्ञं आकङ्खमानानं सङ्घो वे यजतं मुखं"ति ॥२२॥

अथ खो भगवा केणियं जटिलं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि । अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्म

१ १ बुद्धे—म । १ भासामधुमचम्बे—म ।

सेलः—

शल्यकर्ता, महावीर, वन में सिंह की तरह गर्जन करनेवाले परमज्ञानी जो कह रहे हैं, उसे आप (शिष्यमण्डली) सुने ॥१५॥

ब्रह्मभूत, अतुल्य, मारसेना को मर्दन करनेवाले इन्हें देख कर कौन नीच जातिवाला पुरुष भी प्रसन्न नहीं होगा ? ॥१६॥

जो चाहे सो मेरा अनुसरण करे, जो न चाहे चला जाय। मै उत्तम प्रज्ञ (=बुद्ध) के पास प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा ॥१७॥

सेल के शिष्यः—

यदि सम्यक् सम्बुद्ध का अनुशासन आप को पसन्द हो तो हम भी महाप्रज्ञ के पास प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ॥१८॥

सेल तथा शिष्य —

ये तीन सौ ब्राह्मण हाथ जोडकर (प्रव्रज्या) की याचना करते हैं। भगवान् ! हम आप के पास ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे ॥१९॥

बुद्धः—

अच्छी तरह उपदिष्ट, अकालिक (=जो इसी जन्म मे देखते-देखते शीघ्र फल देनेवाला है) ब्रह्मचर्य का सदुपदेश मैने किया है। यहाँ अप्रमत्त हो शिक्षा प्राप्त करनेवाले की प्रव्रज्या निष्फल नहीं होती ॥२०॥

सपरिषद **सेल** ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई और उपसम्पदा पाई। तब **केणिय** जटिल उस रात्रिके बीतने पर अपने आश्रम में प्रणीत खाद्य, भोज्य तैयार कर भगवान् को समय सूचित किया—"हे गौतम ! अभी समय है, भोजन तैयार है।" तब भगवान् सुबह पहन, पात्र-चीवर लेकर जहाँ **केणिय** जटिल का आश्रम था वहाँ गये, जाकर भिक्षु-सघ के साथ बिछे आसन पर बैठ गये, तब **केणिय** जटिल ने स्वय प्रणीत खाद्य-भोज्य से बुद्ध प्रमुख भिक्षु-सघ की सेवा की। भगवान् के भोजन कर चुकने पर, पात्र से हाथ हटाने पर **केणिय** जटिल छोटा-सा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे **केणिय** जटिल को भगवान् ने इन गाथाओं में अनुमोदन किया.—

यज्ञों मे अग्निहोत्र मुख्य है। छन्दों में सावित्री मुख्य है। मनुष्यों में राजा मुख्य है। नदियों में सागर मुख्य है ॥२१॥

नक्षत्रों मे चन्द्र मुख्य है। तेजस्वियों में सूर्य मुख्य है। पुण्य की आकाक्षा से दान देनेवालों के लिए सघ ही मुख्य है ॥२२॥

भगवान् इन गाथाओं में **केणिय** जटिल को उपदेश देकर चले गये। तब सपरिषद आयुष्मान् **सेल** अकेले एकान्त में अप्रमत्त हो, प्रयत्नशील हो, लीनचित्त हो विहरते हुए जिसके लिए कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बे-घर हो

येन अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि; 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तायाऽति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च खो पनायस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि। अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"यं तं सरणमागम्म[1], इतो अट्ठमि चक्खुम ।
सत्तरत्तेन भगवा, दन्तम्ह तव सासने ॥२३॥
तुवं बुद्धो तुवं सत्था तुवं माराभिभू मुनि ।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसि'मं पजं ॥२४॥
उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता ।
सीहो'सि अनुपादानो, पहीनभयभेरवो ॥२५॥
भिक्खवो तिसता इमे तिट्ठन्ति पञ्जलीकता ।
पादे वीर पसारेहि नागा, वन्दन्तु सत्थुनो"ति ॥२६॥

सेलसुत्तं निट्ठितं ।

३४—सल्ल-सुत्तं

अनिमित्तमनञ्ञातं, मच्चानं इध जीवितं ।
कसिरं च परित्तं च, तं च दुक्खेन सञ्ञुतं ॥१॥
न हि सो उपक्कमो अत्थि, येन जाता न मिय्यरे ।
जरम्पि पत्वा मरणं, एवं धम्मा हि पाणिनो ॥२॥
फलानमिव पक्कानं पातो पतनतो[3] भयं ।
एवं जातानं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं ॥३॥
यथा'पि कुम्भकारस्स, कता मत्तिकभाजना ।
सब्बे भेदनपरियन्ता[4], एवं मच्चान जीवितं ॥४॥
दहरा च महन्ता च, ये बाला ये च पण्डिता ।
सब्बे मच्चुवसं यन्ति, सब्बे मच्चुपरायणा ॥५॥

---

१ सरणमागम–म । २ भीरवे–सी । ३ पतनतो–रो० । ४ भेदनपरियन्ता–स्या० ।

प्रव्रजित होते हैं, उस ब्रह्मचर्य के अन्त (= निर्वाण) को इसी जन्म में स्वय जान कर, साक्षात् कर प्राप्त कर विहरने लगे। उनका जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास समाप्त हुआ, (वे) कृतकृत्य हो गये और उन्होंने जान लिया कि अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। सपरिषद् आयुष्मान् सेल अर्हन्तों में से एक हो गये। तब सपरिषद् आयुष्मान् सेल भगवान् के पास गये। पास जाकर एक कन्धे पर चीवर सभाल कर भगवान् को प्रणाम कर गाथाओं में बोले :—

चक्षुष्मान्! मैं (आज से) आठ दिन पूर्व आप की शरण में आया था। आपका धर्म पालन कर इन सात रातों में मैंने अपने को जीत लिया ॥२३॥

आप बुद्ध हैं, आप शास्ता हैं, आप मारविजयी मुनि हैं। आपने समूल वासनाओं को नष्ट कर (भवसागर को) पार किया, और इस प्रजा को भी पार लगाया ॥२४॥

आप बन्धनों के परे हैं। आपने वासनाओं को नष्ट किया है। आप आसक्ति रहित हैं, भय-भीति रहित हैं ॥२५॥

ये तीन सौ भिक्षु हाथ जोड खड़े हैं। वीर! पादों को पसारिए। नाग (= श्रेष्ठ)! शास्ता की वन्दना करें ॥२६॥

सेलसुत्त समाप्त

३४—सल्ल-सुत्त

[यह सूत्र जीवन की अनित्यता के विषय में है। इसमे तृष्णा के प्रहाण और मुक्ति का मार्ग बताया गया है।]

यहाँ मनुष्यों का जीवन उद्देश्यहीन है, अज्ञात है, कठिन है, अल्प है और वह भी दु ख से युक्त है ॥ १ ॥

ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे कि उत्पन्न प्राणी न मरे। जरा को प्राप्त होकर भी मरना है। प्राणियों का स्वभाव इस प्रकार है ॥ २ ॥

जिस प्रकार पके फलों के शीघ्र गिरने का भय सदा रहता है, उसी प्रकार उत्पन्न मनुष्यों को नित्य मृत्यु-भय रहता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार कुम्भकार द्वारा बने मिट्टी के सब बर्तन फूटनेवाले है, उसी प्रकार है मनुष्यों का जीवन ॥ ४ ॥

छोटे और बड़े, मूर्ख और पण्डित सब मृत्यु के वश में जाते हैं, सब मृत्यु के अधीन हैं ॥ ५ ॥

तेसं मच्चुपरेतानं, गच्छतं परलोकतो ।
न पिता तायते पुत्तं ञाति वा पन ञातके ॥६॥
पेक्खतं येव ञातीनं, पस्स लालपतं पुथु ।
एकमेको व मच्चानं, गोवज्झो विय निय्यति[1] ॥७॥
एवमब्भाहतो लोको, मच्चुना च जराय च ।
तस्मा धीरा न सोचन्ति, विदित्वा लोकपरियायं ॥८॥
यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा ।
उभो अन्ते असम्पस्सं, निरत्थं परिदेवसि ॥९॥
परिदेवयमाना चे, कञ्चिदत्थं उदब्बहे ।
सम्मूळ्हा हिंसमत्तानं, कयिरा चेनं विचक्खणो ॥१०॥
न हि रुण्णेन सोकेन सन्तिं पप्पोति चेतसा ।
भिय्यस्सुप्पज्जते दुक्खं, सरीरं उपहञ्ञति ॥११॥
किसो विवण्णो भवति, हिंसमत्तानमत्तना ।
न तेन पेता पालेन्ति, निरत्था परिदेवना ॥१२॥
सोकमप्पजहं जन्तु भिय्यो दुक्खं निगच्छति ।
अनुत्थुनन्तो काळकतं[2], सोकस्स वसमन्वगू ॥१३॥
अञ्ञे'पि पस्स गमिने, यथा कम्मूपगे नरे ।
मच्चुनो वसमागम्म, फन्दन्ते विध पाणिना ॥१४॥
येन येन हि मञ्ञन्ति, ततो तं होति अञ्ञथा ।
एतादिसो विनाभावो, पस्स लोकस्स परियायं ॥१५॥
अपि वस्ससतं जीवे भिय्यो वा पन मानवो ।
ञातिसङ्घा विना होति जहाति इध जीवितं ॥१६॥
तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय्य परिदेवितं ।
पेतं काळकतं दिस्वा, न सो लब्भा मया इति ॥१७॥
यथा सरणमादित्तं, वारिना परिनिब्बये[3] ।
एवम्पि धीरा सप्पञ्ञा, पण्डिता कुसला नरा ।
खिप्पमुप्पतितं सोकं वातो तूलंव धंसये ॥१८॥
परिदेवं पजप्पं च दोमनस्सं च अत्तनो ।
अत्तनो सुखमेसानो अब्बहे सल्लमत्तनो ॥१९॥
अब्बूळ्हसल्ला असिता, सन्ति पप्पुय्य चेतसा ।
सब्बसोकमतिक्कन्ता, असोको होति निब्बुतोति ॥२०॥
सल्लसुत्तं निट्ठितं ।

---

१ नीयति-म । २ कालकतं-म । ३ परिनिब्बुतो-सी म ।

मृत्यु के अधीन, परलोक जानेवाले उनमें से न तो पिता पुत्र की रक्षा कर सकता है और न बन्धु बन्धुओं की रक्षा कर सकते हैं ॥ ६ ॥

बहुत-से बन्धुओ के देखते और विलपते वध के लिए ले जाये जानेवाले गौ की तरह एक-एक मनुष्य (मृत्यु के पास) जाता है ॥ ७ ॥

इस प्रकार ससार मृत्यु और जरा से पीडित है। इसलिए धीर लोक-स्वभाव को जानकर दु खित नहीं होते ॥ ८ ॥

जिसके आये या गये मार्ग को न जानते हुए, और इन दोनों अन्तो को न देखते हुए (तुम) निरर्थक विलाप करते हो ॥ ९ ॥

अपने को सताते हुए विलाप करनेवाला मूर्ख यदि कुछ फल प्राप्त करे तो विचक्षण को चाहिए कि उसका अनुसरण करे ॥ १० ॥

रोने या विलपने से चित्त-शान्ति नहीं मिलती, किन्तु अधिकाधिक दु'ख होता है और शरीर भी पीडित होता है ॥ ११ ॥

(शोक करने से) कृश होता है, विवर्ण होता है, अपने आपको बहुत कष्ट होता है। इससे प्रेतो (= मृतों) की रक्षा नहीं होती, और विलाप निरर्थक होता है ॥ १२ ॥

शोक को दूर नहीं करनेवाला मनुष्य अधिकाधिक दु ख को प्राप्त होता है। मरे हुए के विषय में सोचने से शोक के वशीभूत होता है ॥ १३ ॥

कर्मानुरूप यहाँ से जानेवाले दूसरे मनुष्यों को और मृत्यु के वश में आकर छटपटानेवाले प्राणियों को देखो ॥ १४ ॥

मनुष्य जिस बातको जैसे सोचते है वह उससे भिन्न होती है। वियोग इस प्रकार है। ससार के स्वभाव को देखो ॥ १५ ॥

मनुष्य अधिक से अधिक सौ वर्ष या उससे कुछ अधिक जीकर बन्धुओं से अलग हो जाता है, और वहाँ जीवन को छोड देता है ॥ १६ ॥

इसलिए अर्हन्त (के उपदेश) को सुनकर विलाप को छोड दे, और मृत को देखकर सोचे कि अब लौटकर मुझे नहीं मिल सकता ॥ १७ ॥

जिस प्रकार आग लगे घर को पानी से बुझाया जाता है, उसी प्रकार धीर, पण्डित, कुशल, प्राज्ञ नर उत्पन्न शोक को उस शीघ्रता से नष्ट कर देता है जिस शीघ्रता से हवा रूई को उडा ले जाती है ॥ १८ ॥

अपना सुख चाहनेवाला (मनुष्य) शल्य रूपी रोना, विलाप और मानसिक दु'ख को निकाल दे ॥ १९ ॥

जो शल्य रहित है, अनासक्त है और चित्त-शान्ति को प्राप्त है, वह सब शोक से परे हो, शोक रहित हो शान्त होता है ॥ २० ॥

सल्लसुत्त समाप्त।

३५—वासेट्ठ-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गल वनसण्डे । तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला इच्छानङ्गले पटिवसन्ति, सेय्यथीदं—चङ्की ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोक्खरसाति ब्राह्मणो जानुस्सोणि ब्राह्मणो, तोदेय्यो ब्राह्मणो, अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला । अथ खो वासेट्ठभारद्वाजानं माणवानं जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानानं[1] अनुविचर मानानं[2] अयमन्तरा कथा उदपादि—"कथं भो ब्राह्मणो होती"ति । भार द्वाजो माणवो एवमाह—"यतो खो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनु पक्कुट्ठो जातिवादेन एत्तावता खो ब्राह्मणो होती"ति । वासेट्ठो माणवो एवमाह—"यतो खो भो सीलवा च होति वतसम्पन्नो[3] च एत्तावता खो ब्राह्मणो होती"ति । नेव खो असक्खि भारद्वाजो माणवो वासेट्ठं माणवं सञ्ञापेतुं न पन असक्खि वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं सञ्ञापेतुं । अथ खो वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं आमन्तेसि—"अयं खो, भार द्वाज, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो इच्छानङ्गले विह रति इच्छानङ्गलवनसण्डे, तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्ति सद्दो अब्भुग्गतो—इति पि सो भगवा प०... बुद्धो भगवाति' आयाम, भो भारद्वाज, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमिस्साम, उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एतमत्थं पुच्छिस्साम यथा नो समणो गोतमो ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा"ति । "एवं भो"ति खो भारद्वाजो माणवो वासेट्ठस्स माणवस्स पच्चस्सोसि । अथ खो वासेट्ठभारद्वाजा माणवा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु । एकमन्तं निसिन्नो खो वासेट्ठो माणवो भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"अनुञ्ञातपटिञ्ञाता[4], तेविज्जा मयमस्मुभो ।
अहं पोक्खरसातिस्स तारुक्खस्सायं माणवो ॥१॥

---

१. अनुचङ्कमन्तानं—म० स्या० । २. अनुविचरन्तानं—म० स्या० । ३ वत सम्पन्नो—सी० स्या० । ४ अनुञ्ञातपटि ञाता—सी० ।

३५—वासेट्ठ-सुत्त

[इस सूत्र के अनुसार वृक्ष, लता तथा पशु-पक्षियों में तो जातिमय लक्षण विद्यमान हैं, लेकिन मनुष्यों में ऐसी बात नही है। मनुष्य सर्वत्र एक ही है। इसलिए मनुष्यों में जन्मगत उच्चता या नीचता को मानना बड़ा भ्रम है।]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् इच्छानङ्गल में इच्छानङ्गल वन में विहार करते थे। उस समय बहुत-से नामी और धनी ब्राह्मण इच्छानङ्गल में रहते थे, जैसे कि **चंकी** ब्राह्मण, **तारुक्ख** ब्राह्मण, **पोक्खरसाति** ब्राह्मण, **जानुस्सोणि** ब्राह्मण, **तोदेय्य** ब्राह्मण और दूसरे नामी और धनी ब्राह्मण।

तब टहलने निकले हुए **वासेट्ठ** और **भारद्वाज** माणवों के बीच यह विवाद उठा कि ब्राह्मण किस प्रकार होता है ?

भारद्वाज माणवक ने ऐसा कहा—जो दोनों-माता और पिता की ओर से सुजात है, (जिसका) परिशुद्ध गर्भधारण हुआ है और जिसका वंश सातवीं पीढी तक जातिवाद से अपमानित नहीं है, कलङ्कित नहीं है, वह ब्राह्मण होता है।

वासेट्ठ माणवक ने ऐसा कहा—जो शीलवान् और व्रतसम्पन्न है, वह ब्राह्मण है।

न तो **भारद्वाज** माणवक **वासेट्ठ** माणवक को अवगत करा सका और न **वासेट्ठ** माणवक **भारद्वाज** माणवक को अवगत करा सका।

तब **वासेट्ठ** माणवक ने **भारद्वाज** माणवक से कहा—**भारद्वाज !** शाक्य-कुल से प्रव्रजित, शाक्यपुत्र श्रमण गौतम इच्छानङ्गल में इच्छानङ्गल वन में विहार करते है। उनके विषय में ' पे०'' ऐसी कीर्ति फैली है। चलो **भारद्वाज,** जहाँ श्रमण गौतम हैं उनके पास चलें, चलकर श्रमण गौतम से यह बात पूछे। श्रमण गौतम जैसे कहेंगे हम उसे मान लेंगे।

'बहुत अच्छा' कह **भारद्वाज** माणवक ने **वासेट्ठ** माणवक को उत्तर दिया। तब **वासेट्ठ** और **भारद्वाज** माणवक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर कुशल-मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे **वासेट्ठ** माणवक ने गाथाओं में भगवान् से कहा:—

"(भन्ते !) अनुज्ञात, प्रतिज्ञात हम लोग तीनों वेदों के ज्ञाता हैं। मैं **पोक्खरसाति** का (शिष्य) हूँ और यह माणवक **तारुक्ख** का (शिष्य) है ॥ १ ॥

तेविज्जानं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे ।
पदकस्मा वेय्याकरणा, जप्पे आचरियसादिसा ॥४॥
तेसं नो जातिवादस्मिं, विवादो अत्थि गोतम ।
जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो ति[1] भासति ।
अहं च कम्मना ब्रूमि, एवं जानाहि चक्खुम ॥३॥
ते न सक्कोम सञ्ञत्तु[2], अञ्ञमञ्ञं मयं उभो ।
भगवन्तं[3] पुट्ठमागम्म, सम्बुद्धं इति विस्सुतं ॥४॥
चन्दं यथा खयातीतं, पेच्च पञ्जलिका जना ।
वन्दमाना नमस्सन्ति, एवं लोकस्मिं गोतमं ॥५॥
चक्खुं लोके समुप्पन्नं, मयं पुच्छाम गोतमं ।
जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मना ।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेमु ब्राह्मणं" ॥६॥
तेसं वो' हं ब्यक्खिस्सं, (वासेट्ठाति भगवा) अनुपुब्बं यथातथं ।
जातिविभङ्गं पाणानं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥७॥
तिणरुक्खे' पि जानाथ, न चापि पटिजानरे ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥८॥
ततो कीटे पतङ्गे च, याव कुन्थकिपिल्लिके ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥९॥
चतुप्पदे' पि[4] जानाथ, खुद्दके च महल्लके ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥१०॥
पादूदरे पि जानाथ, उरगे दीघपिट्ठिके ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥११॥
ततो मच्छे' पि जानाथ उदके वारि गोचरे ।
लिङ्गं जातियमं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥१२॥
ततो पक्खी' पि जानाथ, पत्तयाने विहङ्गमे ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥१३॥
यथा एतासु जातीसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ।
एवं नत्थि मनुस्सेसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ॥१४॥
न केसेहि न सीसेन, न कण्णेहि न अक्खिहि ।
न मुखेन न नासाय न ओट्ठेहि भमूहि वा ॥१५॥

---

१ इति—म । २ सञ्ञापेतु—म । सञ्ञपेतुं—सी । ३ भवन्त—म । ४ पुरट्ठुमागम्मा—म । ५ पक्खी—सी ।

"त्रिवेदों में जो कुछ आया है, हमें उसका पूर्ण ज्ञान है। काव्य, व्याकरण और वेद में हम आचार्यों की तरह निपुण हैं ॥ २ ॥

"**गौतम !** जातिभेद के विषय में हमारा विवाद है, **भारद्वाज** कहता है कि ब्राह्मण जन्म से होता है। मैं तो कर्म से बताता हूँ। चक्षुष्मान् आप इस प्रकार जानें ॥ ३ ॥

"हम लोग एक दूसरे को अवगत नहीं कर सकते। इसलिए सम्बुद्ध (नामसे) विख्यात आप से (इस विषय में) पूछने आये हैं ॥ ४ ॥

"जिस प्रकार लोग हाथ जोड कर पूर्णचन्द्र को नमस्कार करते हैं, इसी प्रकार (वे) इस ससार में आप **गौतम** को भी (प्रणाम) करते हैं ॥ ५ ॥

"ससार में उत्पन्न चक्षु रूप आप **गौतम** से हम पूछते हैं कि ब्राह्मण जन्म से होता है या कर्म से, आप हम नादानों को बतावें जिससे कि हम ब्राह्मण को जान सकें" ॥ ६ ॥

बुद्धः—

"**हे वासेट्ठ !** मैं क्रमशः यथार्थ रूप से प्राणियों के जातिभेद को बताता हूँ जिससे भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ७ ॥

"तृण-वृक्षों को जानो। यद्यपि वे इस बात का दावा नहीं करते, फिर भी उनमें जातिमय लक्षण है जिससे भिन्न भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ८ ॥

"कीटों, पतङ्गों और चीटियों तक मे जातिमय लक्षण है, जिससे उनमें भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ९ ॥

"छोटे, बड़े जानवरो को भी जानो, उनमें भी जातिमय लक्षण है (जिससे) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ १० ॥

"दीर्घपीठ, रेंगनेवाले कीड़ों को भी जानो, उनमें भी जातिमय लक्षण है (जिससे) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ११ ॥

"फिर पानी में रहनेवाली जलचर मछलियों को भी जानो, उनमें भी जाति-मय लक्षण है (जिससे) भिन्न भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ १२ ॥

"आकाश में पंखों द्वारा उड़ने वाले पक्षियों को भी जानो, उनमें भी जातिमय लक्षण है (जिससे) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ १३ ॥

"जिस प्रकार इन जातियों में भिन्न-भिन्न जातिमय लक्षण हैं, उसी प्रकार मनुष्यों में भिन्न-भिन्न जातिमय लक्षण नहीं हैं ॥ १४ ॥

"दूसरी जातियों की तरह न तो मनुष्यों के केशों में, न सर में, न कानों में, न आँखों में, न मुख में, न नाक में, न ओठों में, न भौहों मे, न गले में,

न गीवाय न अंसेहि, न उदरेन न पिट्ठिया।
न सोणिया न उरसा, न सम्बाधे[1] न मेथुने[2] ॥१६॥
न हत्थेहि न पादेहि, नाङ्गुलीहि नखेहि वा।
न जङ्घाहि न ऊरूहि, न वण्णेन सरेन वा।
लिङ्गं जातिमयं नेव, यथा अञ्ञासु जातिसु ॥१७॥
पच्चत्तं च[3] सरीरेसु[4], मनुस्सेस्वेतं न विज्जति।
वोकारं च मनुस्सेसु, समञ्ञाय पवुच्चति ॥१८॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो ॥१९॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, पुथु सिप्पेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो ॥२०॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, वाणिजो सो न ब्राह्मणो ॥२१॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, परपेस्सेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, पेस्सिको सो न ब्राह्मणो ॥२२॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, अदिन्नं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, चोरो एसो न ब्राह्मणो ॥२३॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, इस्सत्थं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो ॥२४॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, पोरोहिच्चेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, याजको[5] सो न ब्राह्मणो ॥२५॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, गामं रट्ठं च भुञ्जति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो ॥२६॥
न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं।
भोवादि नाम सो होति, सचे[6] होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥
सब्बसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥
छेत्वा नद्धिं वरत्तं च, सन्दानं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥
अक्कोसं वधबन्धं च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

---

१ सम्बाधे—[illegible] । २. मेथुन—[illegible] । ३-४ [illegible] पोरोहि—[illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible] ।

"न अशों में, न पेट में, न पीठ में, न श्रोणि में, न उर में, न योनि मे, न मैथुन मे, न हाथो में, न पादों में, न अँगुलियों मे, न नखों में, न जघों मे, न ऊरुओं में, न वर्ण में, न स्वर में जातिमय लक्षण है ॥ १५-१७ ॥

"(प्राणियों की) भिन्नता शरीर में है, मनुष्य में वैसी बात नहीं है। मनुष्यों में भिन्नता नाममात्र की है ॥ १८ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई गोरक्षा से जीविका करता है, उसे कृषक जानो न कि ब्राह्मण ॥ १९ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई नाना शिल्पों से जीविका करता है, उसे शिल्पी जानो न कि ब्राह्मण ॥ २० ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों मे जो कोई व्यापार से जीविका करता है, उसे बनिया जानो न कि ब्राह्मण ॥ २१ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई दूसरो की सेवा करके जीविका करता है, उसे सेवक जानो न कि ब्राह्मण ॥ २२ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई चोरी से जीविका करता है, उसे चोर जानो न कि ब्राह्मण ॥ २३ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई धनुर्विद्या से जीविका करता है, उसे योद्धा जानो न कि ब्राह्मण ॥ २४ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई पुरोहिताई से जीविका करता है, उसे पुरोहित जानो न कि ब्राह्मण ॥ २५ ॥

"**वासेट्ठ !** मनुष्यों में जो कोई ग्राम या राष्ट्र का उपभोग करता है, उसे राजा जानो न कि ब्राह्मण ॥ २६ ॥

"ब्राह्मणी माता की योनि से उत्पन्न होने से ही मैं (किसी को) ब्राह्मण नहीं कहता। जो सम्पत्तिशाली है (वह) धनी कहलाता है, जो अकिंचन है, तृष्णा रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २७ ॥

"जो सब बन्धनों को तोड कर निर्भय रहता है, जो आपत्तियों से परे है और तृष्णारहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २८ ॥

"जो रस्सी रूपी क्रोध को, पगहे रूपी तृष्णा को, मुँह पर के जालरूपी मिथ्या धारणाओं को और जुआ रूपी अविद्या को तोड़कर बुद्ध हुआ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २९ ॥

"जो कटुवचन, वध और बन्धन को बिना द्वेष के सह लेता है, क्षमाशील, क्षमा ही जिसकी सेना और बल है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३० ॥

अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥
वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिम्पति[1] कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥
यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥
गम्भीरपञ्ञं मेधाविं, मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥
असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥
निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥
अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं ।
सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥
यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥
अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे कञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥
यो[2] ध[3] दीघं व रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥
आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च ।
निरासयं[4] विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥
यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथंकथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४२॥
यो'ध पुञ्ञं च पापं च, उभो सङ्गं उपच्चगा ।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४३॥
चन्दं'व विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४४॥
यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४५॥

१ लिम्पति—म । २ ३ योध—म । ४ निरालयं—म ।

"जो क्रोध रहित है, व्रती है, शीलवान् है, तृष्णारहित है, दान्त है, अन्तिम शरीर धारण करनेवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३१ ॥

"पानी में लिप्त न होनेवाले कमल की तरह और आरे की नोक पर न टिकनेवाले सरसोंके दाने की तरह जो विषयोंमे लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३२ ॥

"जो इसी जन्म में दुःख के क्षय को जानता है, जो वासना-भार और तृष्णा रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३३ ॥

"गम्भीर प्रज्ञ, बुद्धिमान्, मार्गामार्ग को जाननेवाले, उत्तमार्थ को प्राप्त, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३४ ॥

"जो गृहस्थ प्रव्रजित दोनों से अलग है, जो बेघर हो विहरण करता है, जिसकी आवश्यकताएँ थोडी हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३५ ॥

"जो स्थावर और जङ्गम सब प्राणियों के प्रति दण्ड का त्याग कर न तो स्वय उसका वध करता है और न दूसरों से (वध) कराता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३६ ॥

"जो विरोधियों में अविरोध रहता है, हिसकों में शान्त रहता है और आसक्तों में अनासक्त रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३७ ॥

"आरे की नोक पर न टिकनेवाले सरसों के दाने की तरह जिसके राग, द्वेप, अभिमान् और म्रक्ष छूट गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३८ ॥

"जो अकर्कश, ज्ञानकारी सत्य बात बोलता है, जिससे किसी को चोट नहीं पहुँचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३९ ॥

"जो संसार में लम्बी या छोटी, पतली या मोटी, अच्छी या बुरी किसी चीज की चोरी नहीं करता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४० ॥

"जिसे इसलोक या परलोक के विषय मे तृष्णा नहीं रहती, तृष्णा रहित, आसक्ति रहित उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४१ ॥

"जो आसक्ति रहित है, ज्ञान के कारण सशय रहित हो गया है और अमृत (= निर्वाण) को प्राप्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४२ ॥

"जो दोनों पुण्य और पाप की आसक्तियों से परे है, शोक रहित, रज रहित, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४३ ॥

"जो चन्द्रमा की तरह निर्मल है, शुद्ध है, स्वच्छ है, निर्लिप्त, भव-तृष्णा रहित उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४४ ॥

"जो इस संकटमय, दुर्गम ससार रूपी मोह से परे हो गया है, जो उसे तैर कर पार कर गया है, जो ध्यानी है, पाप रहित है, संशय रहित है, तृष्णा रहित हो शान्त हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४५ ॥

योध कामे पहत्वान, अनागारो परिब्बजे ।
कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४६॥
योध तण्हं पहत्वान, अनागारो परिब्बजे ।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४७॥
हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा ।
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४८॥
हित्वा रतिं च अरतिं च, सीतिभूतं निरूपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४९॥
चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिं च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥५०॥
यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा ।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥५१॥
यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥५२॥
उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं[1] बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥५३॥
पुब्बे निवासं यो वेदि, सग्गापायं च पस्सति ।
अथो जातिक्खयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥५४॥
समञ्ञा हेसा लोकस्मिं, नामगोत्तं पकप्पितं ।
सम्मुच्चा समुदागतं तत्थ तत्थ पकप्पितं ॥५५॥
दीघरत्तमनुसयितं, दिट्ठिगतमजानतं ।
अजानन्ता नो पब्रुवन्ति, जातिया होति ब्राह्मणो ॥५६॥
न जच्चा ब्राह्मणो होति न जच्चा होति अब्राह्मणो ।
कम्मना ब्राह्मणो होति कम्मना होति अब्राह्मणो ॥५७॥
कस्सको कम्मना होति सिप्पिको होति कम्मना ।
वाणिजो कम्मना होति, पेस्सिको होति कम्मना ॥५८॥
चोरो'पि कम्मना होति योधाजीवा पि कम्मना ।
याजको कम्मना होति राजा'पि होति कम्मना ॥५९॥
एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पस्सन्ति पण्डिता ।
पटिच्चसमुप्पाददसा[3] कम्मविपाककोविदा ॥६०॥
कम्मना वत्तती लोको कम्मना वत्तती पजा ।
कम्मनिबन्धना सत्ता, रथस्साणीव यायतो ॥६१॥

---

१ नहातकं म । २ अयं गाथा ... पोत्थके न दिस्सति । ३ पटिच्चसमुप्पाददस्सा-म ।

"जो विषयों को त्याग, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, काम-तृष्णा क्षीण उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥४६॥

"जो तृष्णा को त्याग, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, तृष्णा क्षीण उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥४७॥

"जो मानुषिक तथा देव योगों से परे है, सब योगो में अलिप्त उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥४८॥

"जो रति और अरति को त्याग, शान्त हो बन्धन रहित हो गया है, जो सारे ससार का विजेता और वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥४९॥

"जिसने सर्व प्रकार से प्राणियों की मृत्यु और जन्म को जान लिया है, जो अनासक्त है, सुगत है, बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥५०॥

"जिसकी गति को देवता, गान्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो वासनाक्षीण और अर्हन्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥५१॥

"जिसको भूत, वर्तमान या भविष्यत् में किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रहती, जो परिग्रह और आसक्ति रहित है, उसे मे ब्राह्मण कहता हूँ ॥५२॥

"जो श्रेष्ठ, उत्तम, वीर, महर्षि, विजेता, स्थिर, स्नातक, बुद्ध हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥५३॥

"जिसने पूर्व जन्म के विषय में जान लिया है, जो स्वर्ग और नरक दोनों को देखाता है और जो जन्म-क्षय को प्राप्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥५४॥

"ससार मे नाम गोत्र कल्पित हैं और व्यवहार मात्र है। एक-एक के लिए कल्पित ये नाम व्यवहार से चले आये हैं ॥५५॥

"मिथ्या धारणावाले अज्ञों (के मन) में ये (नाम) घर कर गये हैं। (इसलिए) अज्ञ लोग इसे कहते हैं कि ब्राह्मण जन्म से होता है ॥५६॥

"न (कोई) जन्म से ब्राह्मण होता है और न जन्म से अब्राह्मण। ब्राह्मण कर्म से होता है और अब्राह्मण भी कर्म से ॥५७॥

"कृषक कर्म से होता है, शिल्पी कर्म से होता है, वणिक् कर्म से होता है (और) सेवक कर्म से ॥५८॥

"चोर भी कर्म से होता है, योद्धा भी कर्म से होता है, याजक भी कर्म से होता है (और) राजा भी कर्म से होता है ॥५९॥

"कर्मफल को जाननेवाले पण्डित हेतु से उत्पन्न कर्म को इस प्रकार यथार्थ रूप से देखते हैं ॥६०॥

"संसार कर्म से चलता है। प्रजा कर्म से चलती है। चालू रथ का चक्र जिस प्रकार आणी से बँधा रहता है, उसी प्रकार प्राणी भी कर्म से बँधे रहते हैं ॥६१॥

तपेन ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेन च ।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं ॥६२॥
तीहि विज्जाहि सम्पन्नो, सन्तो खीणपुनब्भवो ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, ब्रह्मा सक्को विजानतन्ति ॥६३॥

एवं वुत्ते वासेट्ठभारद्वाजा माणवा भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं भो गोतम' पे० एते मयं भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च, उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते' सरणं गते"ति ।

वासेट्ठसुत्तं निट्ठितं ।

३६—कोकालिय-सुत्त

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो कोकालियो' भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो कोकालियो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"पापिच्छा भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति । एवं वुत्ते भगवा कोकालियं भिक्खुं एतदवोच—"मा हेवं, कोकालिय, मा हेवं, कोकालिय पसादेहि कोकालिय सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना"ति । दुतियम्पि खो कोकालियो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि मे भन्ते, भगवा सद्धायिको, पच्चयिको, अथ खो पापिच्छा'व सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति । दुतियम्पि खो भगवा कोकालियं भिक्खुं एतदवोच—"मा हेवं, कोकालिय मा हेवं कोकालिय पसादेहि कोकालिय सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना"ति । ततियम्पि खो कोकालियो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि मे, भन्ते, भगवा सद्धायिको पच्चयिको, अथ खो पापिच्छा'व सारिपुत्तमोग्गल्लाना पापिकानं इच्छानं वसंगता"ति । ततियम्पि खो भगवा कोकालियं भिक्खुं एतदवोच—"मा हेवं

---

१ कोकालिको—क । २ [illegible]

"तप, ब्रह्मचर्य, सयम और दम—इनसे ब्राह्मण होता है। यही उत्तम ब्राह्मण है ॥६२॥

"जो त्रिविद्याओं* से युक्त है, शान्त है, और पुनर्जन्म-क्षीण है, विज्ञों के लिए वह ब्राह्मण है, **वासेट्ठ** इस प्रकार जानो ॥६३॥

इस प्रकार कहने पर **वासेट्ठ** और **भारद्वाज** माणव भगवान् से बोले—"आश्चर्य है ! हे **गौतम** ! आश्चर्य है ! हे **गौतम** ! हे **गौतम** ! जिस प्रकार औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले-भटके को राह बता दे या अन्धकार मे तेल-प्रदीप धारण करे, जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप **गौतम** ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। हम आप **गौतम** की शरण जाते हैं, धर्म तथा भिक्षु सघ की भी। आप **गौतम** हमें आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

वासेट्ठसुत्त समाप्त।

३८—कोकालिय-सुत्त

[**सारिपुत्त** तथा **मोग्गल्लान** के प्रति चित्त दूषित करने के कारण **कोकालिय** दुर्गति को प्राप्त होता है। इसलिए सन्तों की निन्दा करना महा पाप है। निन्दनीय की प्रशसा करना और प्रशसनीय की निन्दा करना दोनों एक प्रकार के दोष हैं।]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के **जेतवनाराम** में विहार करते थे। तब **कोकालिय** भिक्षु भगवान् के पास गया, जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कोकालिय भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** पापेच्छुक है, पापी इच्छाओं के वशीभूत हैं।" ऐसा कहने पर भगवान् **कोकालिय** भिक्षु से यह बोले—"**कोकालिय** ! ऐसा न कहो, **कोकालिय** ! ऐसा न कहो। **कोकालिय** ! **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** के प्रति श्रद्धा रखो, **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** प्रियशील हैं।"

दूसरी बार भी **कोकालिय** भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! यद्यपि मैं भगवान् में श्रद्धा रखता हूँ और प्रसन्न हूँ, फिर भी **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** पापेच्छुक हैं, पापी इच्छाओं के वशीभूत हैं।" दूसरी बार भी भगवान् **कोकालिय** भिक्षु से यह बोले—"**कोकालिय** ! ऐसा न कहो, **कोकालिय** ! ऐसा न कहो। **कोकालिय** ! **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** के प्रति श्रद्धा रखो, **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** प्रियशील हैं।"

कोकालिय, मा हेवं कोकालिय, पसादेहि, कोकालिय, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना"ति । अथ खो कोकालियो भिक्खु उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि । अचिरपक्कन्तस्स च कोकालियस्स भिक्खुनो सासपमत्तीहि पिळकाहि सब्बो कायो फुट्ठो[1] अहोसि, सासपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं, मुग्गमत्तियो हुत्वा कळायमत्तियो अहेसुं, कळायमत्तियो हुत्वा कोळट्ठिमत्तियो अहेसुं, कोळट्ठिमत्तियो हुत्वा कोलमत्तियो अहेसुं कोलमत्तियो हुत्वा आमलकमत्तियो अहेसुं आमलकमत्तियो हुत्वा बेळुवसलाटुका मत्तियो अहेसुं, बेळुवसलाटुकामत्तियो हुत्वा बिल्लमत्तियो अहेसुं, बिल्लमत्तियो हुत्वा पभिज्जिंसु, पुब्बं च लोहितं च पग्घरिंसु । अथ खो कोकालियो भिक्खु तेनेवाबाधेन कालं अकासि । कालङ्कतो च कोकालियो भिक्खु पदुमनिरयं[2] उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा ।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच— 'कोकालियो, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालियो भिक्खु पदुमनिरयं उपपन्नो सारिपुत्त मोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा"ति । इदं अवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि ।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया"पे०"आघातेत्वा"ति। इदं अवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी"ति । एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच— "कीवदीघं नु खो, भन्ते, पदुमे निरये आयुप्पमाण"न्ति ? "दीघं खो, भिक्खु पदुमे निरये आयुप्पमाणं, तं न सुकरं सङ्खातुं एत्तकानि वस्सानीति वा, एत्तकानि वस्ससतानीति वा एत्तकानि वस्ससहस्सानीति वा"ति । "सक्का पन, भन्ते, उपमा कातु"न्ति ? 'सक्का भिक्खू'ति भगवा अवोच—"सेय्यथापि भिक्खु वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो ततो

१. फुटो—सी० म । २. पदुमं निरयं—म ।

तीसरी बार भी **कोकालिय** भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—'भन्ते ! यद्यपि मैं आप में श्रद्धा रखता हूँ, फिर भी **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** पापेच्छुक हैं, पापी इच्छाओं के वशीभूत हैं।' तीसरी बार भी भगवान् **कोकालिय** भिक्षु से यह बोले—'**कोकालिय** ! ऐसा न कहो, **कोकालिय** ! ऐसा न कहो। **कोकालिय** ! सारिपुत्त और **मोग्गल्लान** के प्रति श्रद्धा रखो, **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** प्रियशील हैं।'

तब **कोकालिय** भिक्षु आसन से उठकर भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। वहाँ से चले जाने के कुछ ही समय बाद **कोकालिय** भिक्षु का सारा शरीर सरसों जैसी फुसियों से भर गया, सरसो जैसी फुसियों से मूँग जैसी हुईं, मूँग से चने जितनी हुईं, चने से बेर के बिये जितनी हुईं, बेर के बिये से बेर फल जितनी हुईं, बेर फल से आँवले जितनी हुईं, आँवले से छोटे बेल जितनी हुईं, बड़े बेल जितनी होकर फूट गईं और पीब तथा लहू बहने लगे। तब **कोकालिय** भिक्षु उसी रोग से चल बसा। **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** के प्रति चित्त दूषित कर **कोकालिय** भिक्षु **पदुम** नरक में उत्पन्न हुआ।

तब **सहम्पती** ब्रह्मा उस रात्रि के बीतने पर अपनी कान्ति से सारे **जेतवन** को आलोकित कर भगवान् के पास गया, पास जा भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया, एक ओर खड़े हो **सहम्पती** ब्रह्मा ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! **कोकालिय** भिक्षु का देहान्त हो गया है, **सारिपुत्त** और **मोग्गल्लान** के प्रति चित्त दूषित कर **कोकालिय** भिक्षु **पदुम** नरक में उत्पन्न हुआ है।" **सहम्पती** ब्रह्मा ने यह कहा। यह कहकर **सहम्पती** ब्रह्मा भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गया।

उस रात्रि के बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! ब्रह्मा **सहम्पती** 'पे०' 'यह कहकर मुझे अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गया।"

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान् से पूछा—"भन्ते ! **पदुम** नरक की आयु कितनी लम्बी है ?"

"भिक्षु ! पदुम नरक की आयु बड़ी लम्बी है। वह इतने वर्ष हैं, इतने सहस्र वर्ष हैं, इतने लाख वर्ष हैं करके गिनना आसान नहीं।"

"भन्ते ! क्या कोई उपमा दे सकते हैं ?"

"हाँ, भिक्षु ! उपमा दी जा सकती है। भिक्षु ! मान लो कि बीस खारि

पुरिसो वस्ससतस्स अच्चयेन एकं एकं तिलं उद्धरेय्य, खिप्पतरं खो सो, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव एको अब्बुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया एवं एको निरब्बुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति निरब्बुदा निरया एवं एको अबबो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अबबा निरया एवं एको अहहो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु वीसति अहहा निरया एवं एको अटटो निरयो। सेय्यथापि भिक्खु, वीसति अटटा निरया एवं एको कुमुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु वीसति कुमुदा निरया एव एको सोगन्धिको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति सोगन्धिका निरया एवं एको उप्पलको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति उप्पलका निरया एवं एको पुण्डरिको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति पुण्डरिका निरया एव एको पदुमो निरयो। पदुमं खो पन, भिक्खु, निरयं कोकालियो भिक्खु उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा' ति। इदं अवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी[1] जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं ॥१॥
यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति ॥२॥
अप्पमत्तो अयं कलि,
यो अक्खेसु धनपराजयो, सब्बस्सापि सहापि अत्तना।
अयमेव महत्तरो[2] कलि, यो सुगतेसु मनं पदोसये ॥३॥
सतं सहस्सानं निरब्बुदानं छत्तिंस च पञ्च च अब्बुदानि[3]।
य अरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनं च पणिधाय पापकं ॥४॥
अभूतवादी निरयं उपेति, यो वा'पि कत्वा न करोमीति चाह।
उभो'पि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥५॥
यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातं'व खित्तो ॥६॥

१ कुठारी—क। २ महन्ततरो—सी। ३ अब्बुदानं—क।

(=उस समय की एक माप) तिल अटनेवाली **कोशल** की जो गाडी है, एक पुरुष एक हजार वर्ष के बीतने पर उसमें से एक तिल निकाल दे, इस क्रम से कालान्तर में बीस खारि तिल भरी वह गाडी खाली हो जायेगी, समाप्त हो जायेगी, लेकिन **अब्बुद** नरक के एक जीवनकाल की आयु नहीं। भिक्षु ! **अब्बुद** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **निरब्बुद** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! **निरब्बुद** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **अबब** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! **अबब** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **अहह** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! **अहह** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **अटट** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! **अटट** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **कुमुद** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! **कुमुद** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **सोगन्धिक** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! **सोगन्धिक** नरक के बीस जीवनों के बराबर है **उप्पल** नरक का एक जीवनकाल। **उप्पल** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **पुण्डरीक** नरक का एक जीवनकाल। **पुण्डरीक** नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है **पदुम** नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! सारिपुत्त और **मोग्गलान** के विषय में चित्त दूषित कर **कोकालिय** भिक्षु **पदुम** नरक में उत्पन्न हुआ है।" ऐसा कहकर भगवान् ने आगे यह कहा :—

"(इस ससार में) जन्मनेवाले पुरुष के मुख में कुठारी उत्पन्न होती है। कटु भाषणभाषी मूर्ख उससे अपने को नाश कर देता है ॥ १ ॥

"जो निन्दनीय की प्रशसा करता है, प्रशसनीय की निन्दा करता है, वह मुख से पाप करता है, और उस पाप के कारण (वह) सुख को प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥

"जुए में अपने को और अपने सर्वस्व को जो खोना है, वह थोडी हानि है। इसकी अपेक्षा सन्तों के प्रति जो मन को दूषित करना है—वह बहुत बडी हानि है ॥ ३ ॥

"आर्य (=सन्त) पुरुष की निन्दा करनेवाला अपने मन और वचन को पाप में लगाकर उस नरक में उत्पन्न होता है जहाँ की आयु एक लाख निरब्बुद और इकतालीस अब्बुद है ॥ ४ ॥

"असत्यवादी नरक को जाता है, और जो कोई काम करके कहता है कि मैंने ऐसा नहीं किया वह भी। हीन कर्म करनेवाले वे दोनों मनुष्य परलोक में समान होते हैं ॥ ५ ॥

"जो दोष रहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है (उसका) पाप उल्टी हवा में फेंकी सूक्ष्म धूल की तरह उसी मूर्ख पर पडता है ॥ ६ ॥

यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वचसा परिभासति अञ्ञे ।
अस्सद्धो कदरियो अवदञ्ञू, मच्छरी पेसुणियस्मि अनुयुत्तो ॥७॥
मुखदुग्ग विभूतमनरियं, भूनहु[1] पापक दुक्कतकारि ।
पुरिसन्तकलि अवजात, मा बहु भाणिध नेरयिको'सि ॥८॥
रजमाकिरसि अहिताय, सन्ते गरहसि किब्बिसकारी ।
बहूनि च दुच्चरितानि चरित्वा, गच्छसि[2] खो पपतं चिररत्तं ॥९॥
न हि नस्सति कस्सचि कम्मं, एति ह तं लभतेव सुवामि ।
दुक्खं मन्दो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी ॥१०॥
अयोसङ्कुसमाहतट्ठानं, तिण्हधारमयसूलमुपेति ।
अथ तत्तअयोगुळसन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं ॥११॥
न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न ताणमुपेन्ति ।
अङ्गारे सन्थते सेन्ति[3], अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ॥१२॥
जालेन च ओनहियाना तत्थ हनन्ति अयोमयकूटेहि[4] ।
अन्धं'व, तिमिसमायन्ति, तं विततं हि यथा महिकायो ॥१३॥
अथ लोहमयं पन कुम्भिं, अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ।
पच्चन्ति हि तासु चिररत्तं, अग्गिनिसमासु समुप्पिलवासो ॥१४॥
अथ पुब्बलोहितमिस्से तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
यं यं दिसतं[5] अधिसेति, तत्थ किलिस्सति सम्फुसमानो ॥१५॥
पुळवावसथे सलिलस्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
गन्तु न हि तीरमपत्थि, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला ॥१६॥
असिपत्तवनं पन तिण्हं, तं पविसन्ति समच्छिदगत्ता[6] ।
जिव्हं बळिसेन गहेत्वा, आरचया रचया विहनन्ति ॥१७॥
अथ वेतरणिं पन दुग्गं तिण्हधारं खुरधारमुपेति ।
तत्थ मन्दा पपतन्ति, पापकरा पापानि करित्वा ॥ १८॥
खादन्ति हि तत्थ रुदन्ते, सामा सबला काकोलगणा च ।
सोणा सिगाला[8] पतिगिज्झा कुलला वायसा च वितुदन्ति ॥१९॥
किच्छा वतायं इध वुत्ति, यं जनो पस्सति[10] किब्बिसकारी ।
तस्मा इध जीवितसेसे किच्चकरो सिया नरो न च[11] पमज्जे[12] ॥२०॥

---

१ भुनहत त्वा० क । २ गच्छसि-म० । ३ सयन्ति-म । ४. अयोमयकूटेभि-म । ५. समुप्पिल्लवाते—म० । ६. दिसतं—म । ७. समुप्पिलवता—म । ८. सिवका-म । ९. पटिगिद्धा-म सी । १० दुम्मति-म । ११ १२. चप्पमज्जे-म० ।

"जो श्रद्धा रहित है, जो दूसरों को दान देना सह नहीं सकता, जो किसी की बात नहीं सुनता, कजूस है, चुगलखोरी मे लगा है और लोभ में पडा है, वह वचन से दूसरों की निन्दा करता है ॥ ७ ॥

"दुर्वच, झूठे, अनार्य, मनहूस, पापी, बुरे कर्मवाले, दोषी, अधम और नीच (तुम) बहुत मत बोलो, तुम नरकगामी हो ॥ ८ ॥

"पापकारी (तुम) सन्तों की निन्दा करके अपने अहित का कर्म करते हो। अनेक बुराइयाँ करके बहुत समय के लिए गड्ढे में गिरोगे ॥ ९ ॥

'किसी का कर्म नष्ट नहीं होता। कर्त्ता उसे प्राप्त करता ही है। पापकारी मूर्ख अपने को परलोक में दु ख मे पडा पाता है॥ १० ॥

"वह लोहे के काँटो और तीक्ष्ण धारवाली लोहे की बर्छियों से सताये जानेवाले नरक में गिरता है। वहाँ तपे लोहे के गोले के समान उसके अनुरूप भोजन है ॥ ११ ॥

"(नरकपाल) उनसे मीठी बातें नहीं करते। वे प्रसन्न मुख से रक्षार्थ उनके पास नहीं आते। (वे) बिछे हुए अंगार पर सोते हैं, और भभकती हुई आग में प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

"(नरकपाल) जाल से बन्द करके लोहे के हथौड़ों से उनको कूटते हैं। वे घोर अन्धकार मे पडते हैं जो विस्तृत पृथ्वी की तरह फैला है ॥ १३ ॥

"तब वे आग के समान जलते लोहे की कडाही में गिरते हैं, और आग के समान उसमें चिरकाल तक ऊपर-नीचे आते-जाते पचते रहते हैं ॥ १४ ॥

"तब पीब और लहू से लथपथ हो पापकारी किस प्रकार पचता है। जहाँ-जहाँ वह लेटता है, वहाँ-वहाँ उनसे लथपथ हो मलिन हो जाता है ॥ १५ ॥

"पापकारी कीडों से भरे पानी में किस प्रकार पचता है। वह (कहीं) तीर को नहीं पा सकता, क्योंकि चारों ओर कडाह हैं ॥ १६ ॥

"घायल शरीर हो वे तीक्ष्ण असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं। नरकपाल उनकी जीभ को काँटो से पकड कर (उनका) वध करते हैं ॥ १७ ॥

"तब वे छूरे की धार के समान तीक्ष्ण धारावाली दुस्तर वैतरणी (नदी) में गिरते हैं। मूर्ख पापकारी पाप कर उसी में गिरते हैं ॥ १८ ॥

"वहाँ काले और चितकबरे बड़े कौवे उनको खा जाते हैं। कुत्ते, सियार, गृद्ध, चील्ह और कौवे चाव के साथ उन्हें नोचते हैं ॥ १९ ॥

"पापकारी मनुष्य नरक में जिस जीवन का अनुभव करता है, वह दुःखमय है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने शेष जीवन में अच्छे कर्म करे और प्रमाद न करे ॥ २० ॥

यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वचसा परिभासति अञ्ञे ।
अस्सद्धो कदरियो अवदञ्ञू, मच्छरी पेसुणियस्मि अनुयुत्तो ॥७॥
मुखदुग्ग विभूतमनरियं, भूनहु[1] पापक दुक्कटकारि ।
पुरिसन्तकलि अवजात, मा बहु भाणिध नेरयिको'सि ॥८॥
रजमाकिरसि अहिताय, सन्ते गरहसि किब्बिसकारी ।
बहूनि च दुच्चरितानि चरित्वा, गच्छिसि खो पपतं चिररत्तं ॥९॥
न हि नस्सति कस्सचि कम्मं, एति ह नं लभतेव सुवामि ।
दुक्खं मन्दो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी ॥१०॥
अयोसङ्कुसमाहतट्ठानं, तिण्हधारमयसूलमुपेति ।
अथ तत्तअयोगुळसन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं ॥११॥
न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न ताणमुपेन्ति ।
अङ्गार सन्थते सेन्ति[2], अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ॥१२॥
जालेन च ओनहियाना तत्थ हनन्ति अयोमयकूटेहि[3] ।
अन्धं'व, तिमिसमायन्ति, तं वितत्तं हि यथा महिकायो ॥१३॥
अथ लोहमयं पन कुम्भिं, अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ।
पचन्ति हि तासु चिररत्तं, अग्गिनिसमासु समुप्पिलवासो ॥१४॥
अथ पुब्बलोहितमिस्से, तत्थ किं पचति किब्बिसकारी ।
यं यं दिसतं[6] अधिसेति, तत्थ किलिस्सति सम्फुसमानो ॥१५॥
पुळवावसथे सलिलस्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
गन्तुं न हि तीरमपत्थि, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला ॥१६॥
असिपत्तवनं पन तिण्हं, तं पविसन्ति समुच्छिदगत्ता[7] ।
जिव्हं बळिसेन गहेत्वा, आरचया रचया विहनन्ति ॥१७॥
अथ वेतरणिं पन दुग्गं, तिण्हधारं खुरधारमुपेति ।
तत्थ मन्दा पपतन्ति, पापकरा पापानि करित्वा ॥ १८॥
खादन्ति हि तत्थ रुदन्ते, सामा सबला काकोळगणा च ।
सोणा सिगाला[8] पटिगिद्धा[9] कुलला वायसा च वितुदन्ति ॥१९॥
किच्छा वतायं इध वुत्ति, यं जनो पस्सति[10] किब्बिसकारी ।
तस्मा इध जीवितसेसे, किच्चकरो सिया नरो न च[11] पमज्जे[11] ॥२०॥

---

१ भुनहत स्सा क । २ सन्थतेसु म । ३ कवन्नि—म । ४ अयोकूटेभि— म । ५. समुप्पिलवाते—म । ६. दिसत—म । ७. समुच्छिदगत्ता—म । ८. सिगाला— म । ९. पटिगिद्धा—म सी । १० पुनति—म । ११ ११ चप्पमज्जे—म ।

"जो श्रद्धा रहित है, जो दूसरों को दान देना सह नहीं सकता, जो किसी की बात नहीं सुनता, कंजूस है, चुगलखोरी मे लगा है और लोभ में पडा है, वह वचन से दूसरों की निन्दा करता है ॥ ७ ॥

"दुर्वच, झूठे, अनार्य, मनहूस, पापी, बुरे कर्मवाले, दोषी, अधम और नीच (तुम) बहुत मत बोलो, तुम नरकगामी हो ॥ ८ ॥

"पापकारी (तुम) सन्तो की निन्दा करके अपने अहित का कर्म करते हो। अनेक बुराइयाँ करके बहुत समय के लिए गड्ढे में गिरोगे ॥ ९ ॥

'किसी का कर्म नष्ट नहीं होता। कर्त्ता उसे प्राप्त करता ही है। पापकारी मूर्ख अपने को परलोक में दु:ख मे पडा पाता है ॥ १० ॥

"वह लोहे के काँटों और तीक्ष्ण धारवाली लोहे की बर्छियों से सताये जानेवाले नरक मे गिरता है। वहाँ तपे लोहे के गोले के समान उसके अनुरूप भोजन है ॥ ११ ॥

"(नरकपाल) उनसे मीठी बातें नहीं करते। वे प्रसन्न मुख से रक्षार्थ उनके पास नहीं आते। (वे) बिछे हुए अगार पर सोते हैं, और भभकती हुई आग मे प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

"(नरकपाल) जाल से बन्द करके लोहे के हथौडों से उनको कूटते हैं। वे घोर अन्धकार मे पडते है जो विस्तृत पृथ्वी की तरह फैला है ॥ १३ ॥

"तब वे आग के समान जलते लोहे की कडाही में गिरते है, और आग के समान उसमे चिरकाल तक ऊपर-नीचे आते जाते पचते रहते है ॥ १४ ॥

"तब पीब और लहू से लथपथ हो पापकारी किस प्रकार पचता है। जहाँ-जहाँ वह लेटता है, वहाँ-वहाँ उनसे लथपथ हो मलिन हो जाता है ॥ १५ ॥

"पापकारी कीडों से भरे पानी में किस प्रकार पचता है। वह (कहीं) तीर को नहीं पा सकता, क्योंकि चारों ओर कडाह हैं ॥ १६ ॥

"घायल शरीर हो वे तीक्ष्ण असिपत्र वन मे प्रवेश करते हैं। नरकपाल उनकी जीभ को काँटो से पकड कर (उनका) वध करते है ॥ १७ ॥

"तब वे छूरे की धार के समान तीक्ष्ण धारावाली दुस्तर वैतरणी (नदी) में गिरते हैं। मूर्ख पापकारी पाप कर उसी में गिरते हैं ॥ १८ ॥

"वहाँ काले और चितकबरे बड़े कौवे उनको खा जाते हैं। कुत्ते, सियार, गृद्ध, चील्ह और कौवे चाव के साथ उन्हें नोचते हैं ॥ १९ ॥

"पापकारी मनुष्य नरक में जिस जीवन का अनुभव करता है, वह दु:खमय है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने शेष जीवन में अच्छे कर्म करे और प्रमाद न करे ॥ २० ॥

ते गणिता विदूहि तिलवाहा, ये पदुमे निरये उपनीता ।
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादस कोटिसतानि पुनञ्ञा[1] ॥२१॥
यावदुक्खा[2] निरया इध वुत्ता, तत्थपि ताव चिरं वसितब्बं ।
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुणेसु, वाचं मनं सततं[3] परिरक्खेति ॥ २२ ॥

कोकालियसुत्तं निट्ठितं ।

३७—नालक-सुत्त

आनन्दजाते तिदसगणे पतीते, सक्कञ्च इन्दं सुचिवसने च देवे ।
दुस्सं गहेत्वा अतिरिव थोमयन्ते, असितो इसि अद्दस दिवाविहारे ॥१॥
दिस्वान देवे मुदितमने उदग्गे, चित्तिं करित्वान[4] इदमवोच[5] तत्थ ।
"किं देवसङ्घो अतिरिव कल्यरूपो दुस्सं गहेत्वा रमयथ[6] किं पटिच्च ॥२॥
यदा'पि आसि असुरेहि सङ्गमो, जयो सुरानं असुरा पराजिता ।
तदा'पि नेतादिसो लोमहंसनो, किं अब्भुतं दट्ठु मरू पमोदिता ॥३॥
सेळेन्ति गायन्ति च वादयन्ति च, भुजानि पोठेन्ति[7] च नच्चयन्ति च ।
पुच्छामि वोहं मेरुमुद्धवासिने[8], धुनाथ मे संसयं खिप्प मारिसा" ॥४॥
"सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो, मनुस्सलोके हितसुखताय[9] जातो ।
सक्यान गामे जनपदे लुम्बिनेय्ये, तेन म्ह तुट्ठा अतिरिव कल्यरूपा ॥५॥
सो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरासभो सब्बपजानं उत्तमो ।
वत्तेस्सति चक्कं इसिव्हये वने नदं'व सीहो बलवा मिगाभिभू ॥६॥

१ पनञ्ञे—म । २ दुक्खा—म ; दुक्ख—री म । ३ सतत—स्या । ४ करित्वा—सी । ५ इदमवोचापि—सी । ६ रमथ—म स्या । ७ पोथेन्ति—म ; पोथेन्ति—स । ८ मेरुमुद्धवासिनो—सी । ९ हितसुखताय—म ।

"**पदुम** निरय में जो उत्पन्न होते हैं उनकी आयु पण्डितों की गिनती के अनुसार तिल के भार (एक-एक कर) गिने जाने की तरह लम्बी है, जो पाँच नहुत कोटि और बारह सौ कोटि के बराबर है ॥ २१ ॥

"यहाँ जितने भी नरक दुःख बताये गये हैं (उसे) इन सबको चिरकाल तक भोगना पड़ता है। इसलिए पवित्र, प्रियशील साधुओं के प्रति अपना मन और वचन सयत रखे" ॥ २२ ॥

कोकालियसुत्त समाप्त।

३७—नालक-सुत्त

[दिवाविहार के लिए **तुषित** देवलोक में गये **असित** ऋषि को देवताओं के जय-घोष से **सिद्धार्थ** कुमार की उत्पत्ति की सूचना मिलती है। वे **शुद्धोदन** राजा के महल में जाकर कुमार के विषय में भविष्यवाणी करते हैं। फिर ऋषि अपने भानजे **नालक** को **सिद्धार्थ** कुमार के भविष्य के विषय में सुनाते हैं और समय आने पर उनका शिष्य बनने का आदेश देते हैं। इस आदेश के अनुसार बाद में नालक भगवान् के पास जाता है, और भगवान् उसे उपदेश देते हैं।]

दिवाविहार के लिए (**तुसित** देवलोक में) गये **असित** ऋषि ने आनन्द युक्त, प्रमुदित देवताओं और **इन्द्र** को शुद्ध वस्त्र धारण किये कपड़े उछाल-उछाल कर सत्कार पूर्वक अत्यधिक गुणानुवाद करते देखा ॥ १ ॥

प्रमुदित, हर्षित देवताओं को देखकर (ऋषि ने) आदर के साथ पूछा कि देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो कपड़े क्यों उछालते हैं ? ॥ २ ॥

जिस समय असुरों से युद्ध हुआ था, जिसमें देवताओं की जय और असुरों की पराजय हुई थी, उस समय भी ऐसा आनन्दोत्सव नहीं हुआ था। फिर कौन-सा आश्चर्य देख कर देवता प्रमुदित हैं ? ॥ ३ ॥

(देवता) चिल्लाते हैं, गाते हैं, बजाते हैं, भुजाओं को ठोंकते हैं और नाचते हैं। मेरु पर रहनेवाले आप लोगों से मैं पूछता हूँ, मार्ष ! जल्द मेरी शका को दूर करें ॥ ४ ॥

देवता :—

"प्राणियों के हित के लिए, सुख के लिए मनुष्य लोक में **शाक्य** जनपद के **लुम्बिनी** ग्राम में उत्तम, अतुल्य बोधिसत्व उत्पन्न हुए हैं, इसलिए हम अत्यन्त तुष्ट और प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

"सब प्राणियों में उत्तम, नरश्रेष्ठ सारी प्रजा में उत्तम, वे महान् व्यक्ति गर्जनेवाले मृगराज सिंह की तरह **ऋषिवन** (=ऋषि पत्तन) में धर्मचक्र का प्रवर्तन करेंगे" ॥ ६ ॥

तं सह सुत्वा तुरितमसेसरी सो, सुद्धोदनस्स घर मवनमुपागमि ।
निसज्ज तत्थ इदमवोचासि सक्ये, "कुहिं कुमारो अहमपि दट्ठुकामो" ॥७॥
ततो कुमारं जलितमिव सुवण्णं, उक्कामुखेव सुकुसलसम्पहट्ठं ।
दद्दल्लमानं सिरिया अनोमवण्णं, दस्सेसुं पुत्तं असितव्हयस्स सक्या ॥८॥
दिस्वा कुमारं सिखिमिव पज्जलन्तं, तारासभंव नभसिगमं विसुद्धं ।
सुरियं तपन्तं सरदरिवब्भमुत्तं, आनन्दजातो विपुलमलत्थ पीतिं ॥९॥
अनेकसाखञ्च सहस्समण्डलं, छत्तं मरू धारयु अन्तलिक्खे ।
सुवण्णदण्डा वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरछत्तगाहका ॥१०॥
दिस्वा जटी कण्हसिरिव्हयो इसि, सुवण्णनिक्खं विय पण्डुकम्बले ।
सेतञ्च छत्तं धारयन्तं मुद्धनि, उदग्गचित्तो सुमनो पटिग्गहे ॥११॥
पटिग्गहेत्वा पन सक्यपुङ्गवं, जिगीसको लक्खणमन्तपारगू ।
पसन्नचित्तो गिरमब्भुदीरयि, अनुत्तरायं दिपदानमुत्तमो ॥१२॥
अथत्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकल्यरूपो गलयति अस्सुकानि ।
दिस्वान सक्या इसिमवोचु रुदन्तं,नो चे कुमारे भविस्सति अन्तरायो॥१३॥
दिस्वान सक्य इसिमवोच अकल्ये, "नाहं कुमारे अहितमनुस्सरामि ।
न चापिमस्स भविस्सति अन्तरायो,न ओरकायं अधिमनसा भवाथ॥१४॥
"सम्बोधियग्गं फुसिस्सतायं कुमारो, सो धम्मचक्कं परमविसुद्धदस्सी ।
वत्तेस्सतायं बहुजनहितानुकम्पी,वित्थारिकस्स भविस्सति ब्रह्मचरियं ॥१५॥
"ममञ्च आयु न चिरमिधावसेसो, अथन्तरा मे भविस्सति कालकिरिया ।
सोहं न सुस्सं असमधुरस्स धम्मं,तेनम्हि अट्टो ब्यसनगतो अघावी" ॥१६॥
सो साकियानं विपुलं जनेत्व पीतिं, अन्तेपुरम्हा निगमा ब्रह्मचारी ।
सो भागिनेय्यं सयमनुकम्पमानो, समादपेसि असमधुरस्स धम्मे ॥१७॥

---

१. चलन्तं वततिसिरि—म । २. वरिवब्भि—म । वारिदब्भिरिस्वा । ३ जिगीसको—म० ।
४ दिस्वाजनयुतयो—म । ५. अधिमनसा—म । ६. सोस्सं—म । ७. विभागा—म०
विदत्वा—स्या ।

सम्बोधिप्राप्त, धर्ममार्ग का उपदेश देनेवाले 'बुद्ध' का घोष, जब दूसरे से सुनोगे तो उनके पास जा धर्म के विषय में पूछकर उन भगवान् के पास ब्रह्मचर्य का पालन करो ॥ १८ ॥

हितैषीभाव पूर्वक स्थिर, उत्तम, विशुद्ध भविष्य-द्रष्टा से उपदिष्ट पुण्यवान् उस **नालक** ने जिन (=बुद्ध) की प्रतीक्षा में तपस्वी हो इन्द्रियों की रक्षा की ॥ १९ ॥

धर्मचक्र-प्रवर्तन के समय जिन (=बुद्ध) का घोष सुनकर, पास जा, श्रेष्ठ ऋषि को देख, धर्म के विषय में **असित** के सिखाये प्रश्न उत्तम प्रज्ञ से पूछे ॥ २० ॥

वस्तुगाथा समाप्त ।

नालकः—

यह बात यथार्थ रूप से मैंने **असित** से जान ली। सब धर्मों में पारङ्गत आप **गौतम** से मै इस विषय में पूछता हूँ ॥ २१ ॥

बेघर हो भिक्षा पर जीनेवाले मुझे प्रश्न करने पर उत्तम पद के विषय में मुनि बतावें ॥ २२ ॥

बुद्धः—

"दुष्कर और कठिनता से प्राप्त ज्ञान मार्ग की मैं व्याख्या करूँगा। मैं अवश्य उसके विषय में तुम्हें बताऊँगा । (इसलिए) फिर और दृढ-चित्त हो जाओ ॥ २३ ॥

"ग्राम में आक्रोश तथा वन्दना के प्रति समान भाव रखे। मन को दूषित न होने दे, और शान्त तथा विनीत हो विचरण करे ॥ २४ ॥

"दावाग्नि की ज्वाला के समान इष्ट और अनिष्ट आरम्मण उपस्थित हो जाते हैं। स्त्रियाँ मुनि को प्रलोभन देती हैं, वे तुम को प्रलोभित न करें ॥ २५ ॥

"मैथुन धर्म से विरत हो, उत्कृष्ट-निकृष्ट विषयों को त्याग, स्थावर और जङ्गम प्राणियों के प्रति विरोधभाव या आसक्ति रहित होवे ॥ २६ ॥

"जैसा मै हूँ, वैसे ये (प्राणी) हैं। जैसे ये प्राणी हैं, वैसा मैं हूँ। इस प्रकार अपने समान (समझ) कर न तो (किसी का) वध करे और न करावे ॥ २७ ॥

"ससारी मनुष्य जिस इच्छा और लोभ में आसक्त है, उसे त्याग ज्ञान पूर्वक विचरण करे और इस नरक को पार करे ॥ २८ ॥

"हलका पेट, मिताहारी, अल्पेच्छ, लोलुपता रहित वह इच्छा रहित हो, सन्तोषी हो उपशान्त होता है ॥ २९ ॥

"बुद्धो'सि घोसं यद[1] परतो सुणासि, सम्बोधिपत्तो विचरति धम्ममग्गं ।
गन्त्वान तत्थ समयं[2] परिपुच्छियानो[3],
चरस्सु तस्मि भगवति ब्रह्मचरियं" ॥१८॥
तेनानुसिट्ठो हितमनसेन[4] तादिना, अनागते परमविसुद्धदस्सिना ।
सो नालको उपचितपुञ्ञसञ्चयो,
जिनं पतिक्खं परिवसि रक्खितिन्द्रियो ॥१९॥
सुत्वान घोसं जिनवरचक्कवत्तने, गन्त्वान दिस्वा इसिनिसभं पसन्नो ।
मोनेय्यसेट्ठं मुनिपवरं अपुच्छि, समागते[5] असितव्हयस्स सासने ति ॥२०॥

वत्थुगाथा निट्ठिता ।

"अञ्ञातमेतं वचनं, असितस्स यथातथं ।
तं तं गोतम पुच्छाम, सब्बधम्मान पारगुं ॥२१॥
"अनगारियुपेतस्स, भिक्खाचरियं जिगिसतो ।
मुनि पब्रूहि मे पुट्ठो, मोनेय्यं उत्तमं पदं" ॥२२॥
"मोनेय्यं ते उपञ्ञिस्सं (ति भगवा), दुक्करं दुरभिसम्भवं ।
हन्द ते नं पवक्खामि सन्थम्भस्सु दळ्हो भव ॥२३॥
समानभावं कुब्बेथ, गामे अक्कुट्ठवन्दितं ।
मनोपदोसं रक्खेय्य, सन्तो अनुण्णतो चरे ॥२४॥
उच्चावचा निच्छरन्ति, दाये अग्गिसिखूपमा ।
नारियो मुनि पलोभेन्ति, तासु तं मा पलोभयुं ॥२५॥
विरतो मेथुना धम्मा हित्वा कामे परोवरे[6] ।
अविरुद्धो असारत्तो, पाणेसु तसथावरे ॥२६॥
यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहं ।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥२७॥
हित्वा इच्छञ्च लोभञ्च, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो ।
चक्खुमा पटिपज्जेय्य तरेय्य नरकं इमं ॥२८॥
ऊनूदरो मिताहारो, अप्पिच्छस्स अलोलुपो ।
स[7] वे इच्छाय निच्छातो, अनिच्छो होति निब्बुतो ॥२९॥

---

१ वदि—स्या क । २ समयं—सी । ३ परिपुच्छमानो—म । ४ हितमनेन—क स्या । ५ समागतं—म । ६ परोवरे—म० परापरे—स्या । ७ ये—सी । मता—म ।

सम्बोधिप्राप्त, धर्ममार्ग का उपदेश देनेवाले 'बुद्ध' का घोष, जब दूसरे से सुनोगे तो उनके पास जा धर्म के विषय में पूछकर उन भगवान् के पास ब्रह्मचर्य का पालन करो ॥ १८ ॥

हितैषीभाव पूर्वक स्थिर, उत्तम, विशुद्ध भविष्य-द्रष्टा से उपदिष्ट पुण्यवान् उस **नालक** ने जिन (=बुद्ध) की प्रतीक्षा में तपस्वी हो इन्द्रियों की रक्षा की ॥ १९ ॥

धर्मचक्र-प्रवर्तन के समय जिन (=बुद्ध) का घोष सुनकर, पास जा, श्रेष्ठ ऋषि को देख, धर्म के विषय में **असित** के सिखाये प्रश्न उत्तम प्रज्ञ से पूछे ॥ २० ॥

वस्तुगाथा समाप्त।

नालकः—

यह बात यथार्थ रूप से मैंने **असित** से जान ली। सब धर्मों में पारङ्गत आप **गौतम** से मैं इस विषय में पूछता हूँ ॥ २१ ॥

बेघर हो भिक्षा पर जीनेवाले मुझे प्रश्न करने पर उत्तम पद के विषय में मुनि बतावें ॥ २२ ॥

बुद्धः—

"दुष्कर और कठिनता से प्राप्त ज्ञान मार्ग की मैं व्याख्या करूँगा। मैं अवश्य उसके विषय में तुम्हें बताऊँगा। (इसलिए) फिर और दृढ-चित्त हो जाओ ॥ २३ ॥

"ग्राम में आक्रोष तथा वन्दना के प्रति समान भाव रखे। मन को दूषित न होने दे, और शान्त तथा विनीत हो विचरण करे ॥ २४ ॥

"दावाग्नि की ज्वाला के समान इष्ट और अनिष्ट आरम्मण उपस्थित हो जाते हैं। स्त्रियाँ मुनि को प्रलोभन देती हैं, वे तुम को प्रलोभित न करें ॥ २५ ॥

"मैथुन धर्म से विरत हो, उत्कृष्ट-निकृष्ट विषयों को त्याग, स्थावर और जङ्गम प्राणियों के प्रति विरोधभाव या आसक्ति रहित होवे ॥ २६ ॥

"जैसा मैं हूँ, वैसे ये (प्राणी) हैं। जैसे ये प्राणी हैं, वैसा मैं हूँ। इस प्रकार अपने समान (समझ) कर न तो (किसी का) बध करे और न करावे ॥ २७ ॥

"ससारी मनुष्य जिस इच्छा और लोभ में आसक्त है, उसे त्याग ज्ञान पूर्वक विचरण करे और इस नरक को पार करे ॥ २८ ॥

"हलका पेट, मिताहारी, अल्पेच्छ, लोलुपता रहित वह इच्छा रहित हो, सन्तोषी हो उपशान्त होता है ॥ २९ ॥

स पिण्डचारं चरित्वा, वनन्तमभिहारये ।
उपट्ठितो रुक्खमूलस्मिं, आसनूपगतो मुनि ॥२०॥
स झानपसुतो धीरो, वनन्ते रमितो सिया ।
झायेथ रुक्खमूलस्मिं, अत्तानं अभितोसयं ॥२१॥
ततो रत्या विवसने,[1] गामन्तमभिहारये ।
अव्हानं नाभिनन्देय्य, अभिहारञ्च गामतो ॥२२॥
न मुनि गाममागम्म, कुलेसु सहसा चरे ।
घासेसनं छिन्नकथो, न वाचं पयुतं भणे ॥२३॥
अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलं इति ।
उभयेनेव सो तादी, रुक्खं'व[2] उपनिवत्तति[3] ॥२४॥
स पत्तपाणी विचरन्तो, अमूगो मूगसम्मतो ।
अप्पं दानं न हीळेय्य, दातारं नावजानिय ॥२५॥
उच्चावचा हि पटिपदा, समणेन पकासिता ।
न पारं दिगुणं यन्ति, न इदं एकगुणं मुतं ॥२६॥
यस्स च विसता नत्थि, छिन्नसोतस्स भिक्खुनो ।
किच्चाकिच्चप्पहीनस्स, परिळाहो न विज्जति ॥२७॥
मोनेय्यं ते उपञ्ञिस्सं (ति भगवा), खुरधारूपमो भवे ।
जिव्हाय तालुमाहच्च, उदरे संयतो सिया ॥२८॥
अलीनचित्तो च सिया, न चापि बहु चिन्तये ।
निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचरियपरायणो ॥२९॥
एकासनस्स सिक्खेथ, समणूपासनस्स च ।
एकत्तं मोनमक्खातं, एको चे अभिरमिस्ससि ।
अथ भासिहि[5] दस दिसा ॥४० ॥
सुत्वा धीरान निग्घोसं, झायीनं कामचागीनं ।
ततो हिरिञ्च सद्धञ्च, भिय्यो कुब्बेथ मामको ॥४१॥
तं नदीहि विजानाथ, सोब्भेसु[6] पदरेसु च ।
सणन्ता यन्ति कुसोब्भा, तुण्ही याति महोदधि ॥४२॥
यदूनकं तं सणति यं पूरं सन्तमेव तं ।
अड्ढकुम्भूपमो बालो, रहदो पूरो'व पण्डितो ॥४३॥

---

१ विवसाने—म । २-२ रुक्खं'व उपनिवत्तति—म । रुक्खं'व उपनिवत्तति—स्या ।
४ हीळेय्य—म । ५ भासिहि—म । ६ कुसोब्भा—म ।

"भिक्षा करके वह मुनि वन के समीप जाय, और पेड के नीचे पहुँच आसन लगा कर बैठे ॥ ३० ॥

"वन में रमते हुए वह धीर ध्यान तत्पर होवे, अपने को सन्तोष प्रदान कर पेड के नीचे ध्यान करे ॥ ३१ ॥

"रात्रि के बीतने पर (सुबह भिक्षा के लिए) गाँव में पैठे। वहाँ न तो किसी का निमन्त्रण स्वीकार करे और न किसी के द्वारा गाँव से लाये गये भोजन को ॥ ३२ ॥

"न मुनि गाँव में आकर सहसा विचरण करे, चुपचाप भिक्षा करे और (उसके लिए) किसी भी प्रकार का सकेत करते हुए कोई बात न बोले ॥ ३३ ॥

"यदि कुछ मिले तो अच्छा है और न मिले तो भी ठीक है। इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में अविचलित वह पेड के पास ही लौट जाता है ॥ ३४ ॥

"गूँगे की तरह मौन हो, हाथ में पात्र लेकर विचरनेवाला वह थोडा दान मिलने पर उसकी अवहेलना न करे और न दाता का तिरस्कार करे ॥ ३५ ॥

"श्रमण (= बुद्ध) ने उत्कृष्ट और निकृष्ट रूप से प्रतिपदा को दिखाया है। (लोग) दो बार (ससार सागर के) पार नहीं जाते। यह मुक्ति एक देशीय नहीं है ॥ ३६ ॥

"जिसमें तृष्णा नहीं, जिस भिक्षु ने भवस्रोत को नष्ट कर दिया है, जो कार्याकार्य से परे है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं ॥ ३७ ॥

"छुरे की धार की तरह तीक्ष्ण ज्ञानयोग को मैं बताऊँगा। जीभ से तालु दवा खान-पान में सयत रहे ॥ ३८ ॥

"अनासक्त चित्तवाला होवे, कामनाओं का बहुत चिन्तन न करे, वासना और तृष्णा रहित हो ब्रह्मचर्यपरायण होवे ॥ ३९ ॥

"श्रमणों के अनुकूल एकान्तवास का अभ्यास करे। एकान्तवास 'मोनेय्य' कहा गया है, (इसलिए) एकान्तवास में अभिरमण करे, और दस दिशाओं में चमके ॥ ४० ॥

"ध्यानी, विषय-त्यागी धीरों के घोष को सुनकर मेरा श्रावक पापकर्म करने में लज्जा माने और श्रद्धा को अधिकाधिक बढावे ॥ ४१ ॥

"उसे पोखरों और नालों के बीच नदी समझे। छोटी नदियाँ आवाज करती हुई बहती हैं, और सागर विना आवाज के बहता है ॥ ४२ ॥

"जो पूण नहीं, वह आवाज करता है, और जो पूर्ण है, वह शान्त रहता है। मूर्ख अर्धपूर्ण घडे की तरह है और पण्डित भरा जलाशय की तरह है ॥ ४३ ॥

यं समणो बहु भासति, उपेतमत्थसंहितं ।
जानं सो धम्मं देसेति, जानं सो बहु भासति ॥४४॥
यो च जानं संयतत्तो, जानं न बहु भासति ।
स मुनी मोनमरहति, स मुनी मोनमज्झगा"ति ॥४५॥

नालकसुत्तं निट्ठितं ।

३८—द्वयतानुपस्सना-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे । तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति । अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"ये ते, भिक्खवे, कुसला धम्मा अरिया निय्यानिका सम्बोधगामिनो, तेसं, वो भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं अरियानं निय्यानिकानं सम्बोधगामीनं का उपनिसा सवनायाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु एवं अस्सु ते वचनीया—यावदेव द्वयतानं धम्मानं यथा भूतं ञाणायाति । किञ्च द्वयतं वदेथ ? इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयो ति अयं एकानुपस्सना । अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा'ति-अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्माद्वयतानुपस्सिनो खो भिक्खवे भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठे व धम्मे अञ्ञा सति वा उपादि सेसे अनागामिता"ति । इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं ।
यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति ।
तञ्च मग्गं न जानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं ॥१॥
चेतोविमुत्तिहीना ते अथो पञ्ञाविमुत्तिया ।
अभब्बा ते अन्तकिरियाय, ते वे जातिजरूपगा ॥२॥
यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति ।
ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं ।
तञ्च मग्गं पजानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं ॥३॥
चेतोविमुत्तिसम्पन्ना, अथो पञ्ञाविमुत्तिया ।
भब्बा ते अन्तकिरियाय न ते जातिजरूपगा"ति ॥४॥

जो श्रमण अर्थयुक्त बहुत बात बोलता है, वह जानते हुए धर्म का उपदेश देता है और जानते हुए ही बोलता है ॥ ४४ ॥

जो जानते हुए भी सयम के कारण बहुत नहीं बोलता, वह मुनि मुनित्व के योग्य है, उस मुनि ने ज्ञान को प्राप्त कर लिया ॥ ४५ ॥

नालकसुत्त समाप्त ।

३८—द्वयतानुपस्सना-सुत्त

[यहाँ प्रतीत्य समुत्पाद के अनुलोम क्रम से दु ख का समुदय और प्रतिलोम क्रम से दुःख का निरोध दिखाये हैं ।]

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् **श्रावस्ती** में **मिगारमाता** के प्रासाद **पूर्वाराम** मे विहार करते थे । उस समय भगवान् उस पूर्णमासी के उपोसथ के दिन रात्रि मे भिक्षु-संघ से घिरे खुली जगह में बैठे थे । तब भगवान् ने शान्त, नि शब्द बैठे भिक्षु-सघ को देखकर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—'भिक्षुओ ! ये जो आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जानेवाले कल्याणकारण धर्म हैं, आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जानेवाले इन कल्याणकारक धर्मों को सुनने से क्या लाभ है ?'—ऐसे पूछनेवाले हों तो तुम्हें उन लोगों को बताना चाहिए कि (इससे) दो धर्मों के यथार्थ ज्ञान का लाभ होता है । कौन-से दो धर्मों को बताना चाहिए ? यह दुःख और दु.ख का हेतु—एक अनुपश्यना (= विचारणीय बात) है, यह दु ख निरोध और दु.खनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग—दूसरी अनुपश्यना है । भिक्षुओ ! इन दोनो बातों पर मनन करनेवाला, अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्ण ज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर **अनागामित्व*** ।' यह कहकर भगवान् फिर बोले.—

जो दु'ख, दु ख के हेतु, सर्वथा दु'ख के अशेष निरोध और दु.ख निरोध के मार्ग को नहीं जानते, मानसिक विमुक्ति से रहित, प्रज्ञा विमुक्ति से रहित, दु ख के अन्त करने में असमर्थ वे जन्म और जरा को प्राप्त होते हैं ॥ १—२ ॥

जो दु ख, दु ख के कारण, सर्वथा दु ख के अशेष निरोध और दु'ख निरोध के मार्ग को जानते हैं, मानसिक विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति से युक्त वे दु.ख के अन्त करने में समर्थ होते हैं, वे जन्म और जरा को प्राप्त नहीं होते ॥ ३-४ ॥

"सिया अञ्ञेन'पि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्सु वचनीया। कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं उपधिपच्चयाति–अयं एकानुपस्सना। उपधीनं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० अनागामिता"ति अथापरं एतदवोच सत्था—

"उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिमनेकरूपा।
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्दो।
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सी"ति ॥५॥

"सिया अञ्ञेन'पि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्स वचनीया। कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं अविज्जापच्चयाति–अयं एकानुपस्सना। अविज्जायत्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० अनागामिता'ति अथापरं एतदवोच सत्था—

"जातिमरणसंसारं, ये वजन्ति पुनप्पुनं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, अविज्जा येव सा गति ॥६॥
अविज्जा हयं[1] महामोहो, येनिदं संसितं चिरं।
विज्जागता च ये सत्ता, नागच्छन्ति[2] पुनब्भव"न्ति ॥७॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं सङ्खारपच्चयाति–अयं एकानुपस्सना। सङ्खारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० अनागमिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं सङ्खारपच्चया।
सङ्खारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥८॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं सङ्खारपच्चया।
सब्बसङ्खारसमथा, सञ्ञाय उपरोधना।
एवं दुक्खक्खयो होति, एतं ञत्वा यथातथं ॥९॥
सम्मद्दसा वेदगुनो सम्मदञ्ञाय पण्डिता।
अभिभुय्य मारसंयोगं नागच्छन्ति[3] पुनब्भव"न्ति ॥१०॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विञ्ञाणपच्चयाति–अयमेकानुपस्सना। विञ्ञाणस्स

१ हयं—म। २ न ते गच्छन्ति—म। ३ न गच्छन्ति—म।

'क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?'—ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सी है ? जो कुछ दु'ख है वह सब वासनाओं के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना। वासनाओं की निःशेष निवृत्ति और निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना पे० यह कह कर भगवान् आगे बोलेः—

ससार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं, वे वासनाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। जो अज्ञ वासनों को उत्पन्न करता है, वह बारम्बार दुःख को प्राप्त होता है। इसलिए दुःख की उत्पत्ति और हेतु को देखते हुए लोगों को चाहिए कि वासनाएँ उत्पन्न न करें ॥ ५ ॥

'क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?'—ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन-सी है ? जो कुछ दुःख होता है वह सब अविद्या के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना। अविद्या की ही नि.शेष निवृत्ति से, निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता, यह है दूसरी अनुपश्यना पे० भगवान् आगे बोलेः—

अविद्या के कारण ही (लोग) बारम्बार जन्म-मृत्यु रूपी संसार में आते और एक गति से दूसरी गति (को प्राप्त होते हैं) ॥ ६ ॥

यह आविद्या महामोह है, जिसके आश्रित हो (लोग) ससार में आते हैं। जो लोग विद्या से मुक्त हैं, वे पुनर्जन्म को प्राप्त नही होते ॥ ७ ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?'—ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। कौन-सा है ? जो कुछ दु'ख है वह संस्कारों के कारण ही होता है, यह एक अनुपश्यना है। सस्कारों के नि शेष निरोध से दु ख नहीं होता, यह दूसरी अनुपश्यना है पे० भगवान् आगे बोलेः—

जो कुछ दु ख होता है वह सब संस्कारों के कारण ही है। सस्कारो के निरोध से दु'ख उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

दु'ख के हेतुभूत सस्कारों के दुष्परिणाम को जानकर सब सस्कारों के प्रहाण करने और वासनाओं के रोकने से दु ख का क्षय होता है। इस बात को यथार्थतः जानकर सम्यक् दर्शी पण्डित संसार को जीतकर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते ॥ ९–१० ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?'–ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। कौन-सा है ? जो कुछ दु'ख है, वह सब विज्ञान के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना। विज्ञान की

त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति-अयं दुतियानु पस्सना। एवं सम्मा पे० "अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विञ्ञाणपच्चया।
विञ्ञाणस्स निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥११॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं विञ्ञाणपच्चया।
विञ्ञाणूपसमा भिक्खु निच्छातो परिनिब्बुतो"ति ॥१२॥

'सिया अञ्ञेन'पि पे कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं फस्सपच्चयाति-अयमेकानुपस्सना। फस्सस्सत्वेव असेस विरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति-अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"तेसं फस्सपरेतानं, भवसोतानुसारिनं।
कुम्मग्गपटिपन्नानं, आरा संयोजनक्खयो ॥१३॥
ये च फस्सं परिञ्ञाय अञ्ञाय[४] उपसमे[५] रता।
ते वे फस्साभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुता"ति ॥१४॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदनापच्चयाति-अयमेकानुपस्सना। वेदनानं त्वेव असेसविराग-निरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति-अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च यं किञ्चि अत्थि वेदितं ॥१५॥
एतं दुक्खन्ति ञत्वान, मोसधम्मं पलोकितं।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विरज्जति।
वेदनानं खया भिक्खु निच्छातो परिनिब्बुतो"ति ॥१६॥

"सिया अञ्ञेनपि प० कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं तण्हापच्चयाति-अयमेकानुपस्सना। तण्हाय त्वेव असेसविराग निरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति-अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे अनागामिता' ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"तण्हा दुतियो पुरिसो दीघमद्धान संसरं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तति ॥१७॥

---

१२ सम्माखुपसमे—सी म। ३ एव—सी। ४ सम्मेदिम—म। ५. विहा-मति—म।

निःशेष विरक्ति और निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता, यह है दूसरी अनुपश्यना।'' पे० भगवान् आगे बोले :—

जो कुछ दुःख होता है वह सब विज्ञान के कारण होता है। विज्ञान के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥२१॥

दुःख के हेतुभूत विज्ञान के दुष्परिणाम को जानकर विज्ञान के निरोध से भिक्षु सन्तुष्ट और शान्त हो जाता है ॥२२॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है? जो कुछ दुःख है वह सब स्पर्श के कारण होता है, यह एक अनुपश्यना है। स्पर्श के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना।

पे०''भगवान् आगे बोले —

स्पर्श से अभिभूत भवस्रोतानुगामी और कुमार्ग पर आरूढ़ लोगों के लिए बन्धनों का क्षय अति दूर है ॥२३॥

जो स्पर्श को अच्छी तरह जानकर ज्ञानपूर्वक उपशम (=निर्वाण) में रत हैं वे स्पर्श के निरोध से तृष्णारहित हो उपशान्त हो जाते हैं ॥२४॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिये कि 'है'। वह कौन सा है? जो कुछ दुःख है वह सब वेदना के कारण उत्पन्न होता है, यह है एक अनुपश्यना। वेदना के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना। ''पे०'' भगवान् आगे बोले —

सुख, दुःख और उपेक्षा के रूप में जो कुछ भी अन्दर और बाहर की वेदनायें हैं, नश्वर और भेद्य उन्हें दुःख जानकर जो उनके व्यय को अच्छी तरह देखता है, उसे उसमें वैराग्य होता है। वेदना के क्षय से भिक्षु तृष्णा रहित हो उपशान्त हो जाता है ॥२५-२६॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है? जो कुछ दुःख होता है, वह सब तृष्णा के कारण है, यह है एक अनुपश्यना। वेदना के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना।'' पे० ''भगवान् आगे बोले —

दीर्घकाल तक आवागमन में एक गति से दूसरी गति में जानेवाला तृष्णा-युक्त पुरुष संसार को पार नहीं कर सकता ॥२७॥

एवं आदीनवं ञत्वा, तण्हं[1] दुक्खस्स सम्भवं ।
वीततण्हो अनादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति ॥१८॥

"सिया अञ्ञेनपि" पे० कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना । उपादानानं त्वेव असेस विरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा पे० 'अनागामिता"ति । अथापरं एतदवोच सत्था—

"उपादानपच्चया भवो, भूतो दुक्खं निगच्छति ।
जातस्स मरणं होति, एसो दुक्खस्स सम्भवो ॥१९॥
तस्मा उपादानक्खया, सम्मदञ्ञाय पण्डिता ।
जातिक्खयं अभिञ्ञाय, नागच्छन्ति[2] पुनब्भवं"ति ॥२०॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० 'कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं आरम्भपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना । आरम्भानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा पे० 'अनागामिता"ति । अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आरम्भपच्चया ।
आरम्भानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२१॥
एवं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं आरम्भपच्चया ।
सब्बारम्भं पटिनिस्सज्ज, अनारम्भे विमुत्तिनो ॥२२॥
उच्छिन्नभवतण्हस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो ।
वितिण्णो[3] जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवो"ति ॥२३॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं आहारपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना । आहारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा" पे अनागामिता"ति । अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया ।
आहारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२४॥
एवं आदीनवं ञत्वा दुक्खं आहारपच्चया ।
सब्बाहारं परिञ्ञाय, सब्बाहारमनिस्सितो ॥२५॥
आरोग्यं सम्मदञ्ञाय, आसवानं परिक्खया ।
सङ्खाय सेवी धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू"ति ॥२६॥

---

१. तण्हा—म । २. नागच्छन्ति—स्या० क । ३. न च्छन्ति—म । ४. वितिण्णो—म । संखं—म ।

१८—दुःख के हेतुभूत तृष्णा के इस दुष्परिणाम को जानकर भिक्षु तृष्णा रहित हो, आसक्ति रहित हो स्मृति से विचरण करे ॥ १८ ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब आसक्ति के कारण उत्पन्न होता है, यह है एक अनुपश्यना। आसक्ति के अशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना।' पे० ' भगवान् आगे बोले :—

आसक्ति के कारण प्राणी संसार में आकर दुःख को प्राप्त होता है, यह जन्म दुःख का हेतु है ॥ १९ ॥

इसलिए पण्डित आसक्ति के क्षय को जानकर, जन्म क्षय को भी अच्छी तरह जान पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते ॥ २० ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब तृष्णायुक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है, यह है एक अनुपश्यना। तृष्णायुक्त प्रयत्न के अशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना। 'पे० ' भगवान् आगे बोले—

जो कुछ दुःख है, वह सब तृष्णायुक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है। प्रयत्न के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २१ ॥

दुःख के हेतुभूत तृष्णायुक्त प्रयत्न के दुष्परिणाम को जानकर सभी प्रकार के प्रयत्नों को त्याग निष्कामता द्वारा विमुक्त, भवतृष्णानष्ट शान्तचित्त भिक्षु जन्मरूपी संसार से पार है, और उसके लिए पुनर्जन्म नहीं ॥ २२–२३ ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब आहार (=विषय भोग) के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना। आहारों के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना। 'पे० ' भगवान् आगे बोलेः—

जो कुछ दुःख है वह सब आहार के कारण उत्पन्न होता है। आहार के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

दुःख के हेतुभूत आहार के दुष्परिणाम को देखकर सब आहार को अच्छी तरह जान, सब आहार से विरक्त हो, वासनाओं के नाश से उत्पन्न आरोग्यता को अच्छी तरह जानकर विचार पूर्वक (जीवन की आवश्यकताओं का) सेवन करनेवाला विज्ञ पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता ॥ २५-२६ ॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना, इञ्जितानं त्वेव असेस विरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० 'अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया।
इञ्जितानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो॥ २७॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं इञ्जितपच्चया।
तस्मा एजं वोस्सज्ज, सङ्खारे उपरुन्धिय।
अनेजो अनुपादानो सतो भिक्खु परिब्बजे"ति॥ २८॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया? निस्सितस्स चलितं होति अयमेकानुपस्सना; अनिस्सितो न चलति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० 'अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनिस्सितो न चलति, निस्सितो च उपादियं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥ २९॥
एतं आदीनवं ञत्वा, निस्सयेसु महब्भयं।
अनिस्सितो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति॥ ३०॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया? रूपेहि, भिक्खवे, आरुप्पा[1] सन्ततरा'ति अयमेकानुपस्सना। आरुप्पेहि[2] निरोधो सन्ततरो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० 'अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"ये च रूपूपगा सत्ता, ये च आरुप्पवासिनो[3]।
निरोधं अप्पजानन्ता, आगन्तारो पुनब्भवं॥ ३१॥
ये च रूपे परिञ्ञाय, अरूपेसु सुसण्ठिता।
निरोधे ये विमुच्चन्ति ते जना मच्चुहायिनो"ति॥ ३२॥

"सिया अञ्ञेन'पि पे० कथञ्च सिया? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्झायितं तदमरियानं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—अयमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स पे० सदेवमनुस्साय इदं मुसाति उपनिज्झायितं तदमरियानं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा पे० 'अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनत्तनि अत्तमानिं, पस्स लोकं सदेवकं।
निविट्ठं नामरूपस्मिं, इदं सच्चन्ति मञ्ञति॥ ३३॥

---

१ अरूपा—म। २ अरूपेहि—म। ३ अरूपट्ठायिनो—म। ४ [illegible]—म।
५ [illegible]—स्या। [illegible]—सी [illegible]।

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब चञ्चलता के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना। चञ्चलताओं के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना। ' पे० भगवान् आगे बोले.—

जो कुछ दुःख है वह सब चचलताओं के कारण उत्पन्न होता है, चञ्चलताओं के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २७ ॥

दुःख के हेतुभूत चञ्चलता के दुष्परिणाम को जानकर उसे दूर करे और संस्कारों का अन्त कर, चञ्चलता और आसक्ति रहित हो भिक्षु स्मृतिमान् हो विचरण करे ॥ २८ ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? जो लिप्त रहता है उसमें चञ्चलता आ जाती है, यह है एक अनुपश्यना। जो निर्लिप्त रहता है उसमें चञ्चलता नहीं आती, यह है दूसरी अनुपश्यना। पे० ' भगवान् आगे बोले'—

जो लिप्सा रहित है, वह चञ्चल नहीं होता और जो चञ्चल है वह आसक्त है; वह एक गति से दूसरी गति में बदलनेवाले ससार से पार नहीं होता ॥ २९ ॥

लिप्सा में इस महाभय को, दुष्परिणाम को देखकर भिक्षु लिप्सा रहित हो, आसक्ति रहित हो, स्मृति के साथ विचरण करे ॥ ३० ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? रूप लोकों से शान्ततर हैं अरूप लोक, यह है एक अनुपश्यना। अरूप लोकों से शान्ततर है निर्वाण, यह है दूसरी अनुपश्यना। पे० भगवान् आगे बोलेः—

निर्वाण को न जाननेवाले रूप योनियों में उत्पन्न और अरूप योनियों में वास करनेवाले प्राणी पुनर्भव को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

जो रूप को जानते हैं, अरूपों में अनासक्त हैं, वे निर्वाण को प्राप्त हो मुक्त होते हैं और मृत्यु का अन्त कर देते है ॥ ३२ ॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?' ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है ? भिक्षुओ ! देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः असत्य समझ लिया है, यह है एक अनुपश्यना। देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे असत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञासे उसे यथार्थतः सत्य समझ लिया है, यह है दूसरी अनुपश्यना। पे०.. भगवान् आगे बोले—

अनात्मा में आत्मा को माननेवाले देव सहित लोक को देखो। नाम और रूप में सलग्न प्राणी इसे सत्य मानता है ॥ ३३ ॥

येन येन हि मञ्ञन्ति, ततो तं होति अञ्ञथा ।
तं हि तस्स मुसा होति, मोसधम्मं हि इत्तरं ॥ ३४ ॥
अमोसधम्मं निब्बानं, तदरिया सच्चतो विदू ।
ते वे सच्चाभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुता"ति ॥ ३५ ॥

"सिया अञ्ञेनपि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्सु वचनीया । कथञ्च सिया ? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स पे० ‒ सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उप निज्झायितं, तदमरियानं एतं दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं‒ अयमेकानुपस्सना । यं, भिक्खवे सदेवकस्स पे० ‒ सदेव मनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्झायितं, तदमरियानं एतं सुखन्ति यथा भूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं‒अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्माद्वयतानु पस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं‒दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता"ति । इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था‒

रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला ।
इट्ठा कन्ता मनापा च, यावतत्थीति वुच्चति ॥ ३६ ॥
सदेवकस्स लोकस्स, एते वो सुखसम्मता ।
यत्थ चेते निरुज्झन्ति, तं तेसं दुक्खसम्मतं ॥ ३७ ॥
सुखन्ति दिट्ठमरियेहि सक्कायस्सुपरोधनं ।
पच्चनीकं इदं होति, सब्बलोकेन पस्सतं ॥ ३८ ॥
यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो ।
यं परे दुक्खतो आहु तदरिया सुखतो विदू ।
पस्स धम्मं दुराजानं सम्पमूळ्हेत्थ[1] अविद्दसु[2] ॥ ३९ ॥
निवुतानं तमो होति, अन्धकारो अपस्सतं ।
सतञ्च विवटं होति, आलोको पस्सतं इव ।
सन्तिके न विजानन्ति, मगा धम्मस्स कोविदा ॥ ४० ॥
भवरागपरेतेहि भवसोतानुसारिहि ।
मारधेय्यानुपन्नेहि नायं धम्मो सुसम्बुधो ॥ ४१ ॥
को नु अञ्ञत्रमरियेहि, पदं सम्बुद्धमरहति ।
यं पदं सम्मदञ्ञाय, परिनिब्बन्ति अनासवा"ति ॥ ४२ ॥

इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं । इमस्मिं खो[3] पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसूति ।

द्वयतानुपस्सनासुत्तं निट्ठितं ।

---

१. मेत्थ‒म । २. सम्पमूळ्हेत्थ' विद्दसु‒म । ४ च‒म ।

(लोग) जिसे जैसा मानते हैं, वह उससे भिन्न होता है। उनकी यह (धारणा) असत्य होती है। जो असत्य है, वह नश्वर है ॥३४॥

निर्वाण अनश्वर है। आर्यों ने उसे सत्य जान लिया है। सत्य को जाननेवाले वे तृष्णा रहित हो उपशान्त हो जाते हैं ॥३५॥

'क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है?' ऐसे पूछनेवाले को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन सा है? भिक्षुओ! देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सुख मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थत: दु:ख समझ लिया है, यह है एक अनुपश्यना। देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे दु:ख मान लिया है, आर्यों ने उसे दु:ख समझा है, यह है दूसरी अनुपश्यना। भिक्षुओ! इन दोनों बातों पर मनन करनेवाला अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्णज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर अनागामित्व। यह कहकर भगवान् आगे बोले :—

जितने भी इष्ट, प्रिय और मनाप रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श हैं, उन्हें देव सहित लोक ने सुख मान लिया है, और जहाँ उनका निरोध होता है, उसे दु:ख मान लिया है ॥३६–३७॥

पाँच स्कन्धों के निरोध को आर्यों ने सुख जान लिया है, सम्यक् दर्शकों का यह अनुभव (सांसारिक अनुभव से) भिन्न है ॥३८॥

दूसरों ने जिसे सुख कहा है, आर्यों ने उसे दु:ख कहा है, और दूसरों ने जिसे दु:ख कहा है, आर्यों ने उसे सुख जान लिया है। जानने में दुष्कर इस धर्म को देखो। अज्ञ जन इस विषय में सर्वथा मूढ़ हैं ॥३९॥

मोहितों के लिए (सब कुछ) तम है। अदर्शकों के लिए (सब कुछ) अन्धकार है। जिस प्रकार आँखवालों को सब कुछ मालूम होता है, उसी प्रकार सन्तों के लिए (सब कुछ) प्रकट है। धर्म को न जाननेवाले लोग पास रहने पर भी सत्य नहीं पहचानते ॥४०॥

भवराग के वशीभूत, भवस्रोत में पड़े और मार (=कामदेव) के अधीन लोगों के लिए यह धर्म समझना आसान नहीं है ॥४१॥

आर्यों के अतिरिक्त और कौन उस सम्बोधि-पद के योग्य है, जिसे अच्छी तरह समझ कर (वे) वासना रहित हो उपशान्त हो जाते हैं? ॥४२॥

भगवान् ने यह कहा। प्रसन्न भिक्षुओं ने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया। इस उपदेश के देते समय साठ भिक्षुओं के चित्त समूल वासनाओं से मुक्त हो गये।

द्वयतानुपस्सनासुत्त समाप्त।

४—अट्ठकवग्गो

३९—काम-सुत्तं

कामं कामयमानस्स, तस्स चेतं समिज्झति ।
अद्धा पीतिमनो होति, लद्धा मच्चो यदिच्छति ॥ १ ॥
तस्स चे कामयमानस्स[1], छन्दजातस्स जन्तुनो ।
ते कामा परिहायन्ति, सल्लविद्धोव रुप्पति ॥ २ ॥
यो कामे परिवज्जेति, सप्पस्सेव पदा सिरो ।
सो[2] इमं[3] विसत्तिकं लोके, सतो समतिवत्तति ॥ ३ ॥
खेत्तं वत्थुं हिरञ्ञं वा, गवास्सं[4] दासपोरिसं ।
थियो बन्धू पुथू कामे, यो नरो अनुगिज्झति ॥ ४ ॥
अबलानं बलीयन्ति, मद्दन्ते नं परिस्सया ।
ततो नं दुक्खमन्वेति, नावं भिन्नमिवोदकं ॥ ५ ॥
तस्मा जन्तु सदा सतो कामानि परिवज्जये ।
ते पहाय तरे ओघं नावं सिञ्चित्व[5] पारगू'ति ॥ ६ ॥

कामसुत्तं निट्ठितं

४०—गुहट्ठक-सुत्तं

सत्तो गुहायं बहुनाभिछन्नो तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाळ्हो ।
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, कामा हि लोके न हि सुप्पहाया ॥ १ ॥
इच्छानिदाना भवसातबद्धा, ते दुप्पमुञ्चा न हि अञ्ञमोक्खा ।
पच्छा पुरे वा'पि अपेक्खमाना, इमेव कामे पुरिमेव जप्पं ॥ २ ॥

---

१ कामयानस्स-म । २-३ सोमं-म । ४ गवस्सं-म । ५ सित्वाव-म ।

४—अट्ठकवग्ग

३९—काम-सुत्त

[इस सूत्र में काम तृष्णा के दुष्परिणाम वर्णित है ।]

यदि कामनाओं की इच्छा करनेवाले की वे इच्छाएँ पूरी हो जाती है, तो वह मनुष्य अवश्य प्रसन्नचित्त हो जाता है ॥१॥

यदि तृष्णा के वशीभूत कामनावाले मनुष्य की वे कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तो वह तीर लगे (मनुष्य) की तरह दुःखित होता है ॥२॥

जिस प्रकार पैर साँप के सर को बचाते हैं, उसी प्रकार जो विषयों को त्याग देता है, वह स्मृतिमान् इस ससार मे तृष्णा पर विजय पा लेता है ॥३॥

जो मनुष्य खेती, वस्तु, हिरण्य, गौ, अश्व, दास, बन्धु (इत्यादि) अनेक कामों की लालसा करता है, उसे वासनाएँ दबाती हैं और बाधाएँ मर्दन करती हैं। तब पानी में टूटी नाव की तरह वह दुःख मे पड़ता है ॥४-५॥

इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सदा स्मृतिमान् हो कामों का त्याग करें, उनका त्याग कर भरी नाव को खालीकर भव-सागर को पार करें ॥६॥

कामसुत्त समाप्त ।

४०—गुहट्ठक-सुत्त

[इस सूत्र में ससार की असारता को जानकर निर्वाण को प्राप्त करने का उपदेश है ।]

शरीर में आसक्त, अनेक कामनाओं से आच्छादित, मोह में सलग्न नर शान्ति से बहुत दूर है । सासारिक कामों को त्यागना सुकर नहीं ॥१॥

जो इच्छाओं के वशीभूत हैं, सासारिक सुखों में बद्ध हैं, उनकी मुक्ति अति कठिन है, क्योंकि वे दूसरों से मुक्त नहीं किये जा सकते । वे भूत और भविष्यत की बातों की अपेक्षा करते हैं, वर्तमान कामनाओं की तरह उनके लिए भी तरसते हैं ॥२॥

कामेसु गिद्धा पसुता पमूळ्हा, अवदानिया ते विसमे निविट्ठा ।
दुक्खूपनीता परिदेवयन्ति, किंसु भविस्साम इतो चुतासे ॥ ३ ॥
तस्मा हि सिक्खेथ इधेव जन्तु, यं किञ्चि जञ्ञा विसमन्ति लोके ।
न तस्स हेतु विसमं चरेय्य, अप्पं हिदं जीवितमाहु धीरा ॥ ४ ॥
पस्सामि लोके परिफन्दमानं, पजं इमं तण्हागतं भवेसु ।
हीना नरा मच्चुमुखे लपन्ति, अवीततण्हासे भवाभवेसु ॥ ५ ॥
ममायिते पस्सथ फन्दमाने, मच्छे'व अप्पोदके खीणसोते ।
एतम्पि दिस्वा अममो चरेय्य, भवेसु आसत्तिमकुब्बमानो ॥ ६ ॥
उभोसु अन्तेसु विनेय्य छन्दं, फस्सं परिञ्ञाय अनानुगिद्धो ।
यदत्तगरही तदकुब्बमानो, न लिप्पति[1] दिट्ठसुतेसु धीरो ॥ ७ ॥
सञ्ञं परिञ्ञा वितरेय्य ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो ।
अब्बूळ्हसल्लो चरमप्पमत्तो, नासिसति[2] लोकमिमं परञ्चाति ॥ ८ ॥

गुहट्ठकसुत्तं निट्ठितं ।

४१—दुट्ठट्ठक-सुत्त

वदन्ति वे दुट्ठमना'पि एके, अथो'पि वे सच्चमना वदन्ति ।
वादञ्च जातं मुनि[3] नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिञ्चि ॥१॥
सकञ्हि दिट्ठिं कथमच्चयेय्य, छन्दानुनीतो रुचिया निविट्ठो ।
सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जानेय्य तथा वदेय्य ॥ २ ॥
यो अत्तनो सीलवतानि जन्तु, अनानुपुट्ठो च परेस[4] पावा ।
अनरियधम्मं कुसला तमाहु यो आतुमानं सयमेव पावा[5] ॥ ३ ॥
सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बुतत्तो इतिहन्ति सीलेसु अकत्थमानो ।
तमरियधम्मं कुसला वदन्ति यस्सुस्सदा नत्थि कुहिञ्चि लोके ॥ ४ ॥

१ लिम्पती—स्या क । २ आसीसती—म । ३ मुनी—म । ४ परेसं—क ।
५. पाव—म० । ६. पाव—म ।

जो कामों की लालसा करते हैं, उनमें सलग्न हैं और उनसे मोहित हैं: जो कजूस हैं और विषमता में निविष्ट हैं, वे दुःख में पडकर विलाप करते हैं कि मृत्यु के बाद हम क्या होंगे ॥ ३ ॥

इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि ससार में जो कुछ विषमता है, उसे इसी जीवन में जान (दुःख का खयालकर) विषमता का आचरण न करें, क्योंकि धीरों ने इस जीवन को अल्प कहा है ॥ ४ ॥

ससार में तृष्णा के वशीभूत हो छटपटानेवाली इस प्रजा को देखता हूँ। सासारिक विषयों में तृष्णा सहित हीन नर मृत्यु के मुख में पडकर विलाप करते हैं ॥ ५ ॥

अल्प जलवाले, क्षीण जलाशय की मछलियों की तरह तृष्णा के वशीभूत हो छटपटानेवालों को देखो। इसको देखकर सासारिक विषयों में आसक्ति न रखते हुए तृष्णा रहित हो विचरण करे ॥ ६ ॥

दोनों अन्तों में इच्छा को दूरकर, स्पर्श को अच्छी तरह जान, लालायित न हो, आत्म-निन्दा की बात न करते हुए धीर दृष्टियों तथा श्रुतियों में लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

मुनि परिग्रह में लिप्त न हो, सज्ञा को अच्छी तरह जान, भव-सागर को तर जाय। (वासना रूपी) तीर को निकाल कर, अप्रमत्त हो विचरनेवाला इस लोक या परलोक की इच्छा नहीं करता ॥ ८ ॥

गुहट्ठकसुत्त समाप्त।

४१—दुट्ठट्ठक-सुत्त

[मुनि किसी दृष्टि-विशेष में न पड़कर स्वतन्त्र रूप से विचरण करते हैं।]

कुछ लोग दुष्ट मन से विवाद करते हैं और कुछ लोग विवाद करते हैं सच्चे मन से। मुनि विवाद में नहीं पड़ते, इसलिए वे (मुनि) कहीं सकीर्ण नहीं होते ॥ १ ॥

इच्छा के वशीभूत, रुचि में विनिष्ट (मनुष्य) अपनी दृष्टि को किस प्रकार त्याग सकता है ? अपने को पूर्ण घोषित करते हुए जो जाने वही बतावे ॥ २ ॥

जो मनुष्य बिना पूछे अपने शील-व्रतों की चर्चा करता है, आत्म-प्रशंसा करता है, उसे कुशलों ने अनार्यधर्म कहा है ॥ ३ ॥

जो भिक्षु शान्त है, उपशान्त है और अपने शील की चर्चा नहीं करता, जिसे ससार में कहीं तृष्णा नहीं, उसे कुशलों ने आर्यधर्म कहा है ॥ ४ ॥

पकप्पिता सङ्खता यस्स धम्मा, पुरेक्खता[1] सन्ति अवीवदाता।
यदत्तनि पस्सति आनिसंसं, तं निस्सितो कुप्पपटिच्च सन्तिं ॥ ५ ॥

दिट्ठि निवेसा न हि स्वातिवत्ता, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं।
तस्मा नरो तेसु निवेसनेसु, निरस्सति आदियती च धम्मं ॥ ६ ॥

धोनस्स हि नत्थि कुहिञ्चि लोके, पकप्पिता दिट्ठि भवाभवेसु।
मायञ्च मानञ्च पहाय धोनो, स केन गच्छेय्य अनूपयो सो ॥ ७ ॥

उपयो हि धम्मेसु उपेति वादं, अनूपयं केन कथं वदेय्य।
अत्तं निरत्तं न हि तस्स अत्थि, अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बन्ति ॥ ८ ॥

दुट्ठट्ठकसुत्त निट्ठित

४२—सुद्धट्ठक-सुत्तं

पस्सामि सुद्धं परमं अरोगं, दिट्ठेन संसुद्धि नरस्स होति।
एताभिजानं[2] परमन्ति ञत्वा, सुद्धानुपस्सी'ति पच्चेति ञाणं ॥ १ ॥

दिट्ठेन चे सुद्धि नरस्स होति, ञाणेन वा सो पजहाति दुक्खं।
अञ्ञेन सो सुज्झति सोपधीको दिट्ठीहि नं पाव तथा वदानं ॥ २ ॥

न ब्राह्मणो अञ्ञतो सुद्धिमाह, दिट्ठे सुते सीलवते मुते वा।
पुञ्ञे च पापे च अनूपलित्तो अत्तञ्जहो नयिध पकुब्बमानो ॥ ३ ॥

पुरिमं पहाय अपरं सितासे, एजानुगा ते न तरन्ति सङ्गं।
ते उग्गहायन्ति निरस्सजन्ति कपीव साखं पमुखं[5] गहाय[6] ॥ ४ ॥

---

१ पुरक्खता—म० । २. अत्ता—म । ३ निरत्ता—म । ४ एताभिजानं—म ।
५. पमुख—सी० म । ६ गहाय—सी म ।

जिसकी दृष्टियाँ कल्पित हैं, कृत हैं, तृष्णा से उत्पन्न हैं तथा उलझी हुई हैं, और जो अपनी (ऐसी) दृष्टि मे गुण देखता है, वह कृत और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों पर आश्रित है ॥५॥

दृष्टि की आसक्ति को त्यागना सुकर नहीं, क्योंकि विचार के बाद कोई दृष्टि ग्रहण की जाती है। इसलिए मनुष्य धर्म विषयक उन दृष्टियों को (बार-बार) छोडता और ग्रहण करता है ॥६॥

शुद्ध पुरुष ससार में कहीं भी कल्पित दृष्टि नहीं रखता, क्योंकि शुद्ध पुरुष ने माया और अभिमान को त्याग दिया है। इसलिए वासना रहित वह किस कारण विवाद में पड़े ? ॥७॥

वासना युक्त मनुष्य ही धर्म विषयक विवाद में पडता है। वासना रहित मनुष्य किस लिए विवाद में पडे ? वह अपनत्व-परत्व के फेर में नहीं पडता, क्योंकि उसने यहाँ सभी दृष्टियों को त्याग दिया है ॥८॥

दुट्ठट्ठकसुत्त समाप्त।

४२—सुद्धट्ठक-सुत्त

[मुक्ति किसी दृष्टि सम्बन्धी कोरे ज्ञान से नहीं, अपितु प्रज्ञा से उत्पन्न अनासक्ति से होती है।]

(मैं) विशुद्ध, परम, नीरोग (पुरुष) को देखता हूँ। दृष्टि से मनुष्य की शुद्धि नहीं होती। जो दृष्टि को सर्वश्रेष्ठ मान लेता है, शुद्धि-आकांक्षी वह उसे परम ज्ञान (=प्रज्ञा) समझता है ॥१॥

'यदि दृष्टि से मनुष्य की शुद्धि नहीं होती और (दृष्टि सम्बन्धी) 'ज्ञान' से दु.ख से मुक्ति नहीं होती, तो वासना युक्त मनुष्य की शुद्धि के लिए दूसरा मार्ग नहीं है'—जो इस प्रकार कहता है, वह किसी दृष्टि के फेर में पडकर ही ऐसा कहता है ॥२॥

दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत और विचार में से किसी एक के द्वारा ब्राह्मण ने शुद्धि नहीं कही है। (शुद्ध वही है) जो कि पुण्य-पाप में अलिप्त है और अहंकार तथा संस्कार रहित है ॥३॥

(लोग) एक दृष्टि को छोड दूसरी दृष्टि को ग्रहण करते हैं। तृष्णा के वशीभूत वे आसक्ति को पार नहीं कर सकते। वे (पीछे की शाखा को छोड) आगे की शाखा को पकडनेवाले बन्दर की तरह एक दृष्टि को छोड दूसरी को ग्रहण करते हैं ॥४॥

सयं समादाय वतानि जन्तु, उच्चावचं गच्छति सञ्ञसत्तो।
विद्वा च वेदेहि समेच धम्मं, न उच्चावचं गच्छति भूरिपञ्ञो ॥ ५ ॥
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
तमेव दस्सिं विवटं चरन्तं, केनीध लोकस्मिं विकप्पयेय्य ॥ ६ ॥
न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, अच्चन्तसुद्धीति न ते वदन्ति।
आदानगन्थं गथितं विसज्ज, आसं न कुब्बन्ति कुहिञ्चि लोके ॥ ७ ॥
सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि ञत्वा'व दिस्वा'व समुग्गहीतं।
न रागरागी न विरागरत्तो, तस्सीध नत्थि परमुग्गहीतन्ति ॥ ८ ॥

सुद्धट्ठकसुत्तं निट्ठितं

४२—परमट्ठक-सुत्त

परमन्ति दिट्ठीसु परिब्बसानो, यदुत्तरिं कुरुते जन्तु लोके।
हीनाति अञ्ञे ततो सब्बमाह, तस्मा विवादानि अवीतिवत्तो ॥ १ ॥
यदत्तनि पस्सति आनिसंसं, दिट्ठे सुते सीलवते[1] मुते वा।
तदेव सो तत्थ समुग्गहाय, निहीनतो पस्सति सब्बमञ्ञं ॥ २ ॥
तं वा'पि गन्थं कुसला वदन्ति यं निस्सितो पस्सति हीनमञ्ञं।
तस्मा हि दिट्ठं व सुतं मुतं वा, सीलब्बतं भिक्खु न निस्सयेय्य ॥३॥
दिट्ठिम्पि लोकस्मि न कप्पयेय्य ञाणेन वा सीलवतेन वा'पि।
समो'ति अत्तानमनूपनेय्य, हीनो न मञ्ञेथ विसेसि वा'पि ॥ ४ ॥
अत्तं पहाय अनुपादियाना, ञाणे'पि सो निस्सयं नो करोति।
स वे वियत्तेसु न वग्गसारी, दिट्ठिम्पि[2] सो न पच्चेति किञ्चि ॥५॥
यस्सूभयन्ते पणिधीध नत्थि, भवाभवाय इध वा हुरं वा।
निवेसना तस्स न सन्ति केचि धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं[3] ॥६॥

---

१ सीलब्बते—म । २ विसुद्धिं—सी म । ३ दिट्ठिमपि—म । ४ समुग्गहीतं—म ।

(साधारण) मनुष्य स्वय व्रतों को धारण कर, सज्ञाओं में आसक्त हो ऊँच-नीच के फेर में पड़ता है। (लेकिन) जिसने अच्छी तरह धर्म को समझ लिया है, वह महाप्रज्ञ ऊँच नीच (के फेर) में नहीं पड़ता ॥ ५ ॥

वह (महाप्रज्ञ) धर्म सम्बन्धी किसी दृष्टि, श्रुति या विचार मे पक्षग्राही नहीं होते। केवल सत्य को देखकर स्वतन्त्र रूप से विचरण करनेवाले उन्हें ससार में कौन विचलित कर सकता है? ॥ ६ ॥

न तो वे किसी दृष्टि के पक्ष में बोलते हैं, न किसी की प्रशसा में बोलते हैं और न किसी को अत्यन्त शुद्ध ही बताते हैं। वे कट्टरता रूपी ग्रथित ग्रथि को त्याग कर ससार मे कहीं भी तृष्णा नहीं करते ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण (=श्रेष्ठ पुरुष) वासना रूपी सीमाओं के परे हैं, उन्हें ज्ञान या दृष्टि के विषय मे दृढ़ग्राह नहीं है। न तो वे राग में रत हैं और न वैराग्य मे आसक्त हैं। यहाँ उनके सीखने के लिए कुछ बाकी नहीं है ॥ ८ ॥

सुद्धट्ठकसुत्त समाप्त।

४३—परमट्ठक-सुत्त

[जिसने सत्य को जान लिया है, वह दार्शनिक वाद-विवाद में नहीं पड़ता]

इस संसार में जो अपनी दृष्टि को उत्तम मान बैठता है, उसकी बड़ाई करता है और दूसरों को नीच समझता है, वह विवादो के परे नहीं है ॥ १ ॥

जो अपनी दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत और विचार में गुण देखता है, वह उसी के फेर में पड़कर और सबको नीच देखता है ॥ २ ॥

जो अपनी दृष्टि के फेर में पड़कर दूसरे को नीच देखता है, कुशलो ने उसे ग्रन्थि कहा है। इसलिए भिक्षु दृष्टि, श्रुति, विचार या शील-व्रत के फेर मे न पड़े ॥ ३ ॥

ससार में ज्ञान या शील-व्रत के विषय में किसी प्रकार का मत कल्पित न करे। न तो अपने को दूसरों के समान समझे और न उनसे नीच या श्रेष्ठ समझे ॥ ४ ॥

जो अहकार को त्याग तृष्णा रहित हो गया है, वह ज्ञान के फेर में भी नहीं पड़ता। वह दलबन्दियों में किसी का साथ नहीं देता और न वह किसी दृष्टि में आ पड़ता है ॥ ५ ॥

जिसे दोनों अन्तो में और इस लोक या परलोक में पुनर्जन्म के लिए तृष्णा नहीं रहती, उसे धार्मिक बात सम्बन्धी दृढ़ग्राह से उत्पन्न आसक्तियाँ नहीं होतीं ॥६॥

तस्सीध दिट्ठे व सुते मुते वा, पकप्पिता नत्थि अणूपि सञ्ञा ।
तं ब्राह्मणं दिट्ठिमनादियानं,[1] केनीध लोकस्मि विकप्पयेय्य ॥ ७ ॥
न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, धम्मा'पि तेसं न पटिच्छितासे ।
न ब्राह्मणो सीलवतेन नेय्यो, पारं गतो न पच्चेति तादीति ॥ ८ ॥
परमट्ठकसुत्त निट्ठितं ।

४४—जरा-सुत्त

अप्पं वत जीवितं इदं, ओरं वस्ससतापि मिय्यति[2] ।
यो चेपि अतिच्च जीवति, अथ खो सो जरसा'पि मिय्यति ॥ १ ॥
सोचन्ति जना ममायिते न हि सन्ति[3] निच्चा परिग्गहा ।
विनाभावसन्तमेविदं, इति दिस्वा नागारमावसे ॥ २ ॥
मरणेन'पि तं पहीयति[4] यं पुरिसो ममिदन्ति मञ्ञति ।
एवम्पि विदित्वा पण्डितो, न ममत्ताय[5] नमेथ मामको ॥ ३ ॥
सुपिनेन यथा'पि सङ्गतं, पटिबुद्धो पुरिसो न पस्सति ।
एवम्पि पियायितं जनं, पेतं कालकतं न पस्सति ॥ ४ ॥
दिट्ठा'पि सुता'पि ते जना, येसं नाममिदं पवुच्चति ।
नामेवावसिस्सति[6], अक्खेय्यं पेतस्स जन्तुनो ॥ ५ ॥
सोकपरिदेवमच्छरं[7], न जहन्ति गिद्धा ममायिते ।
तस्मा मुनयो परिग्गहं, हित्वा अचरिंसु खेमदस्सिनो ॥ ६ ॥
पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमासनं ।
सामग्गियमाहु तस्स तं यो अत्तानं भवने न दस्सये ॥ ७ ॥
सब्बत्थ मुनि अनिस्सितो न पियं कुब्बति नोपि अप्पियं ।
तस्मि परिदेवमच्छरं पण्णे वारि यथा न लिप्पति ॥ ८ ॥
उदबिन्दु यथा'पि पोक्खरे, पदुमे वारि यथा न लिप्पति ।
एवं मुनि नोपलिप्पति,[8] यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा ॥ ९ ॥
धोनो न हि तेन मञ्ञति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा ।
न अञ्ञेन विसुद्धिमिच्छति, न हि सो रज्जति नो विरज्जतीति॥१०॥
जरासुत्त निट्ठितं ।

---

१ दिट्ठिमनादियानं—सी । २ मीयति—सी । ३ सन्ति—सी । ४ पहीयति—सी स्या म । ५ ममताय—सी० । ६ नामंयेवावसिस्सति—म । ७ सोकपरिदेवमच्छरं—म । ८ लिम्पति—म ।

उन्हें किसी दृष्टि, श्रुति या विचार के विषय में अणुमात्र भी कल्पित धारणा नहीं रहती। किसी दृष्टि में अनासक्त उस ब्राह्मण को इस संसार में कौन विचलित कर सकता ? ॥ ७ ॥

वे किसी धर्म के फेर में पड़कर न तो उसके विषय में कोई मत देते हैं, न उसकी कोई बड़ाई करते हैं। भवसागर के पार गये हुए स्थिर ब्राह्मण फिर किसी शील व्रत के फेर में नहीं आ पड़ते ॥ ८ ॥

परमट्ठकसुत्त समाप्त।

४४—जरा-सुत्त

[तृष्णा से दुःख उत्पन्न होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने इस लघु जीवन में तृष्णा का नाशकर मुक्ति को प्राप्त करे।]

यह जीवन लघु है। सौ वर्ष के पहले भी (मनुष्य) मरता है। जो इससे भी अधिक जीता है, वह जरा को प्राप्त होकर मरता है ॥ १ ॥

तृष्णायुक्त लोग विलाप करते हैं कि उनके परिग्रह नित्य नहीं हैं। जीवन में वियोग ही है। यह जानकर गृह में वास न करे ॥ २ ॥

मनुष्य जिसे अपनाता है मृत्यु के समय उसे छोड़ जाता है। इस बात को जाननेवाला मेरा पण्डित शिष्य तृष्णा की ओर न झुके ॥ ३ ॥

जिस प्रकार स्वप्न में प्राप्त वस्तु को मनुष्य जागने पर नहीं देखता, उसी प्रकार (वह) मृत, प्रिय प्रेत जन को नहीं देखता ॥ ४ ॥

जो देखे और सुने जाते हैं उनकी चर्चा होती है। मृत मनुष्य का नाम मात्र अवशेष रह जाता है ॥ ५ ॥

तृष्णायुक्त लोभी (जन) शोक, विलाप और कंजूसी को नहीं छोड़ते। इस-लिए मुनि लोग परिग्रह को छोड़ निर्वाणदर्शी हो विचरते थे ॥ ६ ॥

कामना रहित हो विचरनेवाले अनासक्त चित्त का अभ्यास करनेवाले भिक्षु को चाहिये कि फिर अपने को संसार में प्रकट न करे ॥ ७ ॥

सर्वत्र अनासक्त मुनि न तो किसी से प्रेम करता है और न द्वेष। जिस प्रकार पानी कमल के पत्ते पर असर नहीं करता, उसी प्रकार विलाप और कंजूसी उसपर असर नहीं करते ॥ ८ ॥

जिस प्रकार कमल का या पद्म के पत्ते पर पानी नहीं टिकता, उसी प्रकार मुनि दृष्टि, श्रुति या धारणा में आसक्त नहीं होता ॥ ९ ॥

शुद्ध पुरुष दृष्टि, श्रुति या धारणा को नही अपनाता। वह दूसरे की सहायता से शुद्धि की इच्छा नहीं करता। वह न तो कहीं रत है और न विरत है ॥ १० ॥

जरासुत्त समाप्त।

४५—तिस्समेत्तेय्य-सुत्तं

मेथुनमनुयुत्तस्स (इच्चायस्मा तिस्सो मेत्तेय्यो), विघातं ब्रूहि मारिस ।
सुत्वान तव सासनं, विवेके सिक्खिस्सामसे ॥१॥

मेथुनमनुयुत्तस्स (मेत्तेय्याति भगवा), मुस्सतेवापि सासनं ।
मिच्छा च पटिपज्जति, एतं तस्मिं अनारियं ॥२॥

एको पुब्बे चरित्वान मेथुनं यो निसेवति ।
यानं भन्तं'व तं लोके, हीनमाहु पुथुज्जनं ॥३॥

यसो कित्ति च या पुब्बे, हायते वा'पि तस्स सा ।
एतम्पि दिस्वा सिक्खेथ, मेथुनं विप्पहातवे ॥४॥

संकप्पेहि परेतो सो, कपणो विय झायति ।
सुत्वा परेसं निग्घोसं, मंकु होति तथाविधो ॥५॥

अथ सत्थानि कुरुते, परवादेहि चोदितो ।
एस ख्वस्स महागेधो, मोसवज्जं पगाहति ॥६॥

पण्डितो ति समञ्ञातो एकचरियं अधिट्ठितो ।
अथा'पि मेथुने युत्तो, मन्दो'व परिकिस्सति[१] ॥७॥

एतमादीनवं ञत्वा, मुनि पुब्बापरे इध ।
एकचरियं दळ्हं कयिरा, न निसेवथ मेथुनं ॥८॥

विवेकं येव सिक्खेथ, एतदरियानमुत्तमं ।
तेन सेट्ठो न मञ्ञेथ, स वे निब्बानसन्तिके ॥९॥

रित्तस्स मुनिनो चरतो, कामेसु अनपेक्खिनो ।
ओघतिण्णस्स पिहयन्ति, कामेसु गधिता[३] पजाति ॥१०॥

तिस्समेत्तेय्यसुत्तं निट्ठितं ।

४६—पसूर-सुत्तं

इधेव सुद्धि इति वादियन्ति, नाञ्ञेसु धम्मेसु विसुद्धिमाहु ।
यं निस्सिता तत्थ सुभं वदाना, पच्चेकसच्चेसु पुथू निविट्ठा ॥१॥

---

१. परिकिलिस्सति—सी । २. अधिराय—सी । ३ गधिता—म० । ४ वादयन्ति—म ।

४५—तिस्समेत्तेय्य-सुत्त

[मुनि को चाहिए कि मैथुन से विरत हो अकेले विचरण करे ।]

तिस्स मेत्तेय्य :—

हे महान् ! यह बतावें कि मैथुन में आसक्त मनुष्य की अवनति किस प्रकार होती है ? आपके अनुशासन को सुनकर हम एकान्तवास की शिक्षा ग्रहण करेंगे ॥ १ ॥

भगवान्—

मैथुन में अनुरक्त मनुष्य की शिक्षा निष्फल होती है। वह गलत राह पर चलता है और उसके विषय में यह निकृष्ट बात है ॥ २ ॥

जो पहले अकेला विचरण कर फिर मैथुन का सेवन करता है, वह हीन, साधारण मनुष्य इस ससार में भ्रान्त रथ की तरह है ॥ ३ ॥

पहले उसकी जो यश और कीर्ति रही हैं, वह नष्ट हो जाती है। यह बात जानकर मैथुन के त्याग के लिए शिक्षा ग्रहण करे ॥ ४ ॥

चिन्ताओं के वशीभूत हो वह कृपण की तरह सोच में पढता है। ऐसा मनुष्य दूसरों की निन्दा को सुनकर उदास हो जाता है ॥ ५ ॥

दूसरों के अपवादों से उत्तेजित हो वह (अपनी रक्षा के लिए) शस्त्र तैयार करता है। इस प्रकार विषम तृष्णा के कारण वह मिथ्या भाषण में पढता है ॥६॥

पण्डित के रूप में प्रसिद्ध और एकचर्या में प्रतिष्ठित जो मनुष्य फिर मैथुन में आसक्त होता है, वह मूर्ख की तरह अवनति को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

आरम्भ और अन्त में इस दुष्परिणाम को देखकर मुनि दृढता के साथ अकेले विचरे और मैथुन का सेवन न करे ॥ ८ ॥

एकान्त का ही सेवन करे। आर्यों में यही उत्तम बात है। जो इस बात के कारण अपने को श्रेष्ठ नहीं मानता, वह निर्वाण के निकट है ॥ ९ ॥

चिन्तारहित, कामों की अपेक्षा न करनेवाले, भवसार पारगत मुनि की स्पृहा विषय-भोग में आसक्त लोग करते हैं ॥ १० ॥

तिस्समेत्तेय्यसुत्त समाप्त ।

४६—पसूर-सुत्त

[लोग प्रशंसा के इच्छुक हो धर्म-सम्बन्धी वाद-विवाद में पड़ते हैं। मुक्त पुरुष विवाद में नहीं पड़ते ।]

लोग विवाद करते हैं कि शुद्धि यहीं (= अपने धर्म में) है और विशुद्धि दूसरे धर्मों में नहीं है। वे अपने मत में आसक्त हो उसी का गुण गाते हैं। (मनुष्य) अलग-अलग धर्मों में निविष्ट हैं ॥ १ ॥

ते वादकामा परिसं विगय्ह, बालं दहन्ति मिथु अञ्ञमञ्ञं ।
वदन्ति ते अञ्ञसिता कथोज्जं, पसंसकामा कुसला वदाना ॥२॥
युत्तो कथायं परिसाय मज्झे, पसंसमिच्छं विनिघाति होति ।
अपाहतस्मिं पन मङ्कु होति, निन्दाय सो कुप्पति रन्धमेसी ॥३॥
यमस्स वादं परिहीनमाहु, अपाहतं पञ्हवीमंसकासे ।
परिदेवति सोचति हीनवादो, उपच्चगा मन्ति अनुत्थुनाति ॥४॥
एते विवादा समणेसु जाता, एतेसु उग्घाति निघाति होति ।
एतम्पि[1] दिस्वा विरमे कथोज्जं, न हञ्ञदत्थत्थि पसंसलाभा ॥५॥
पसंसितो वा पन तत्थ होति, अक्खाय वादं परिसाय मज्झे ।
सो हस्सति उण्णमति च तेन, पप्पुय्य तमत्थं यथामनो अहु ॥६॥
या उण्णति[2] सास्स विघातभूमि, मानातिमानं वदते पनेसो ।
एतम्पि दिस्वा न विवादयेथ, न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति ॥७॥
सूरो यथा राजखादाय पुट्ठो, अभिगज्जमेति पटिसूरमिच्छं ।
येनेव सो तेन पलेहि सूर, पुब्बे'व नत्थि यदिदं युधाय ॥८॥
ये दिट्ठिमुग्गय्ह विवादियन्ति, इदमेव सच्चन्ति च वादियन्ति[3] ।
ते त्वं वदस्सु न हि ते'ध अत्थि वादम्हि जाते पटिसेनिकत्ता ॥९॥
विसेनि कत्वा पन ये चरन्ति, दिट्ठीहि दिट्ठिं अविरुज्झमाना ।
तेसु त्वं किं लभेथ पसूर, येसीध नत्थि परमुग्गहीतं ॥१०॥
अथ त्वं पवितक्कमागमा मनसा दिट्ठिगतानि चिन्तयन्तो ।
धोनेन युगं समागमा, न हि त्वं सक्खसि सम्पयातवे'ति ॥११॥

पसूरसुत्तं निट्ठितं ।

---

१ एतम्पि—सी । २ उण्णती—म । ३ विवादयन्ति—म । ४ लच्छसि—म ।

विवाद के इच्छुक वे परिषद् में जाकर एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं। प्रशंसा के इच्छुक वे अपने को कुशलवादी समझकर अपने धर्म में आसक्त हो विवाद में पड़ते हैं ॥ २ ॥

प्रशंसा के इच्छुक हो परिषद् के बीच में पड़ने पर संघर्ष होता है। रन्ध्र-गवेषी दोष दिखाने पर उदास होता है, और निन्दा से कुपित होता है ॥ ३ ॥

प्रश्न पूछनेवालों से पराजित हो, पराजय को दिखाने पर वह परास्त मनुष्य विलाप करता है, पछतावा करता है, और वह दुःखित होता है कि उसने मुझे हराया है ॥ ४ ॥

ये विवाद श्रमणों में उठते हैं और उनमें प्रहार तथा प्रतिप्रहार होते हैं। इस बात को देखकर विवाद से विरत रहे। विवाद में प्रशंसा-प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं है ॥ ५ ॥

वह परिषद् के बीच अपने मत का समर्थन कर प्रशंसित होता है। वह मन के अनुसार इच्छा को पूरा कर उससे फूलकर हँसता है ॥ ६ ॥

विवाद में मानातिमान रूपी जो फूलना है, वह उसकी पराजय-भूमि भी है। इस बात को भी देखकर विवाद न करे। कुशल लोग इससे शुद्धि नहीं बताते ॥ ७ ॥

राजभोजन से पुष्ट पहलवान् की तरह (प्रतिवादी के लिए) ललकारनेवाले वादी को उस जैसे वादी के पास भेजना चाहिए, क्योंकि मुक्त पुरुषों के पास विवाद रूपी युद्ध के लिए कोई कारण ही शेष नहीं रहा ॥ ८ ॥

जो किसी दृष्टि को ग्रहणकर विवाद करते हैं और अपने मत को ही सत्य बताते हैं, उन्हें कहना चाहिए कि विवाद उत्पन्न होने पर तुम्हारे साथ बहस करने को यहाँ कोई नहीं है ॥ ९ ॥

जो लोग एक दृष्टि से दूसरी दृष्टि का विरोध न करते हुए प्रतिवादी रहित हो विचरण करते हैं, क्या पसूर शिक्षा समाप्त उन्हें तुम विवाद में पा सकते हो ॥ १० ॥

अपनी दृष्टि के समर्थन में अनेक बातें सोचते हुए जब तुम शुद्ध पुरुष के पास पहुँचते हो तो विवाद में तुम उसे नहीं पा सकते ॥ ११ ॥

पसूरसुत्त समाप्त।

४७—मागन्दिय-सुत्तं

विस्वान तण्हं अरतिं रगञ्च, नाहोसि छन्दो अपि मेथुनस्मिं ।
किमेविदं मुत्तकरीसपुण्णं, पादा'पि नं सम्फुसितुं न इच्छे ॥१॥

एतादिसं चे रतनं न इच्छसि, नारिं नरिन्देहि बहूहि पत्थितं ।
दिट्ठिगतं सीलब्बतानुजीवितं[1], भवूपपत्तिञ्च वदेसि कीदिसं ॥२॥

इदं वदामीति न तस्स होति (मागन्दियाति[2] भगवा),
धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।
पस्सञ्च दिट्ठीसु अनुग्गहाय, अज्झत्तसन्तिं पचिनमदस्सं ॥३॥

विनिच्छया यानि पकप्पितानि (इति मागन्दियो),
ते वे मुनी ब्रूसि अनुग्गहाय ।
अज्झत्तसन्तीति यमेतमत्थं, कथन्नु धीरेहि पवेदितं तं ॥४॥

न दिट्ठिया न सुतिया न ञाणेन (मागन्दियाति भगवा),
सीलब्बतेनापि न सुद्धिमाह ।
अदिट्ठिया अस्सुतिया[3] अञ्ञाणा, असीलता अब्बता नोपि तेन ।
एते च निस्सज्ज अनुग्गहाय, सन्तो अनिस्साय भवं न जप्पे ॥५॥

नो चे किर दिट्ठिया न सुतिया न ञाणेन (इति मगन्दियो),
सीलब्बतेनापि विसुद्धिमाह ।
अदिट्ठिया अस्सुतिया अञ्ञाणा, असीलता अब्बता नोपि तेन ।
मञ्ञामहं मोमुहमेव धम्मं दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं ॥६॥

दिट्ठिञ्च निस्साय अनुपुच्छमानो (मागन्दियाति भगवा),
समुग्गहीतेसु पमोहमागा[4] ।
इतो च नाद्दक्खि अणुम्पि सञ्ञं, तस्मा तुवं मोमुहतो दहासि ॥७॥

---

१ सीलब्बत नु जीवित—म । २. मागन्दियाति—म० । ३ अस्सुतिया—सी । ४ पमोहमागमा—सी । समोहमागा—स्या क ।

४७—मागन्दिय-सुत्त

[मागन्दिय ब्राह्मण भगवान् के रूप सौन्दर्य को देखकर अपनी कन्या का विवाह उनसे करना चाहता है, फिर उनकी निष्कामता को जानकर दृष्टिवाद के विषय में भगवान् से प्रश्न करता है। भगवान् दृष्टिवाद का खण्डन कर प्रज्ञा द्वारा मुक्ति साधना का मार्ग बताते हैं।]

बुद्ध:—

तण्हा, अरति और रगा को देखकर भी मैथुन की इच्छा नहीं हुई। मल-मूत्र से भरा हुआ यह शरीर क्या है ? इसे पैरों से भी छूना नहीं चाहता ॥१॥

मागन्दियः—

बहुत से नरेन्द्रों से इच्छित इस प्रकार के स्त्री-रत्न को यदि आप नहीं चाहते हैं तो बतावें कि दृष्टि, शील, व्रत, जीवन और पुनर्जन्म विषयक आपके विचार क्या है ? ॥ २ ॥

बुद्धः—

धर्मों की परीक्षा के बाद (मैं जैसा) मुक्त पुरुष किसी मत को नहीं अपनाता। दृष्टियों के दुष्परिणाम को देखकर उनमें आसक्त न हो मैंने आध्यात्मिक शान्ति की गवेषणा की और उसे पाया ॥ ३ ॥

मागन्दियः—

हे मुनि ! मतों मे आसक्त न हो उनके विषय में आप ने अनुग्रह पूर्वक अपने निर्णय बताये हैं। (अब बतावें कि) ज्ञानियों ने आध्यात्मिक शान्ति को किस प्रकार प्रकट किया है ? ॥ ४ ॥

बुद्धः—

न तो दृष्टि से, न श्रुति से, न ज्ञान से, न शील से, न व्रत से, और न अश्रुति से, अज्ञान से, अशील से और अ-व्रत से ही शुद्धि कही गई है। इनका त्याग कर, इनमें आसक्त न हो, शान्त पुरुष कहीं भी लिप्त न हो पुनर्जन्म की इच्छा न करे ॥ ५ ॥

मागन्दियः—

यदि दृष्टि, श्रुति, ज्ञान, शील और व्रत से या अदृष्टि, अश्रुति, अज्ञान, अशील और अ-व्रत से शुद्धि न होती हो, तो मैं इस धर्म को भ्रमात्मक मानता हूँ, क्योंकि कुछ लोग दृष्टि से शुद्धि बताते है ॥ ६ ॥

बुद्ध:—

(मागन्दिय) दृष्टि में आश्रित हो, आसक्त हो और मोहित हो प्रश्न करते हो। तुम्हें आध्यात्मिक शान्ति का जरा भी पता नहीं। इसलिए तुम इसे भ्रमात्मक समझते हो ॥ ७ ॥

समो विसेसी उद वा निहीनो, यो मञ्ञती सो विवदेथ तेन ।
तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसीति न तस्स होति ॥८॥
सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय्य, मुसा'ति वा सो विवदेथ केन ।
यस्मिं समं विसमञ्चापि नत्थि, सो केन वादं पटिसंयुजेय्य ॥९॥
ओकं पहाय अनिकेतसारी, गामे अकुब्बं मुनि सन्थवानि[1] ।
कामेहि रित्तो अपुरेक्खराना, कथं न विग्गय्ह जनेन कयिरा ॥१०॥
येहि विवित्तो विचरेय्य लोके, न तानि उग्गय्ह वदेय्य नागो ।
एलम्बुजं[2] कण्टकं वारिजं यथा, जलेन पङ्केन च नूपलित्तं ।
एवं मुनी सन्तिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च अनूपलित्तो ॥११॥
न वेदगू दिट्ठिया[3] न मुतिया, समानमेति न हि तम्मयो सो ।
न कम्मना नोपि सुतेन नेय्यो, अनूपनीतो सो निवेसनेसु ॥१२॥
सञ्ञाविरत्तस्स न सन्ति गन्था, पञ्ञाविमुत्तस्स न सन्ति मोहा ।
सञ्ञञ्च दिट्ठिञ्च ये अग्गहेसुं, ते घट्टयन्ता[4] विचरन्ति लोके ॥१३॥

मागन्दियसुत्तं निट्ठितं

४८—पुराभेद-सुत्तं

कथंदस्सी कथंसीलो, उपसन्तो'ति वुच्चति ।
तं मे गोतम पब्रूहि, पुच्छितो उत्तमं नरं ॥१॥
वीततण्हो पुरा भेदा (ति भगवा), पुब्बमन्तमनिस्सितो ।
वेमज्झे नूपसङ्खेय्यो[5] तस्स नत्थि पुरेक्खतं ॥२॥
अक्कोधनो असन्तासी अविकत्थी अकुक्कुचो ।
मन्तभाणी[6] अनुद्धतो, स वे वाचायतो मुनि ॥३॥

---

१ सन्थवानि—क । २ एलम्बुजं—म० । ३ दिट्ठियायो—म । ४ घट्टमाना—स्या० क । ५ नुपसङ्खेय्यो—म । ६ मन्तभाणी—स्या रो० ।

जो अपने को दूसरो के समान, उनसे उत्तम या हीन समझता है, उसके कारण वह विवाद में पडता है। जो इन तीनों अवस्थाओं में अविचलित रहता है, उसे समानता या उत्तमता का खयाल नहीं रहता ॥ ८ ॥

जिसमें समता या असमता का खयाल नहीं है, वह ब्राह्मण किसे सत्य या असत्य सिद्ध करने को बहस करे ? वह किसके साथ विवाद करे ? ॥ ९ ॥

घर का त्याग कर बेघर हो विचरण करनेवाला गाँव में अनासक्त, विषयों से रहित, पुनर्जन्म की इच्छा न करनेवाला मुनि लोगों के साथ विवादात्मक बात न करे ॥ १० ॥

उत्तम पुरुष जिन दृष्टियों से अलग हो विचरता है, फिर वह उनके फेर में पडकर विवाद न करे। जिस प्रकार जलज और कटकमय कमल जल और पक से अलिप्त है, उसी प्रकार शान्तिवादी तृष्णारहित मुनि विषयों और ससार मे लिप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

वह किसी ज्ञान, दृष्टि या विचार के कारण अभिमान नहीं करता, और न वह उससे लिप्त ही होता है। वह किसी कर्म-विशेष या श्रुति के फेर में भी नहीं पडता, क्योंकि वह दृष्टियों के अधीन नहीं है ॥ १२ ॥

विषय विमुक्त मनुष्य के लिए ग्रन्थियाँ नहीं हैं। प्रज्ञा द्वारा विमुक्त पुरुष के लिए मोह नहीं है। जो विषय और दृष्टि में लिप्त हैं, वे घर्षण करते हुए ससार में विचरण करते हैं ॥ १३ ॥

मागन्दियसुत्त समाप्त।

४८—पुराभेद-सुत्त

[इस सूत्र में शान्त पुरुष का परिचय है।]

देवता :—

किस प्रकार का दर्शनवाला और किस प्रकार का स्वभाववाला उपशान्त कहलाता है। गौतम ! पूछने पर मुझे उत्तम मनुष्य के विषय में बतावें ॥ १ ॥

बुद्ध :—

जो इस शरीर के त्यागने के पहले ही तृष्णारहित हो गया है, जो भूत तथा भविष्य पर आश्रित नहीं है और न आश्रित है वर्तमान पर ही, उसके लिए कहीं आसक्ति नहीं है ॥ २ ॥

जो क्रोध, त्रास, आत्म प्रशंसा और चचलता रहित है, जो विचारपूर्वक बोलनेवाला है, जो गर्व रहित है और वचन में सयमी है, वह मुनि है ॥ ३ ॥

निरासत्ति अनागते, अतीतं नानुसोचति ।
विवेकदस्सी फस्सेसु दिट्ठीसु च न निय्यति[1] ॥४॥

पतिलीनो अकुहको, अपिहालु अमच्छरी ।
अप्पगब्भो अजेगुच्छो, पेसुणेय्ये च नो युतो ॥५॥

सातियेसु अनस्सावी, अतिमाने च नो युतो ।
सण्हो च पटिभानवा,[2] न सद्धो न विरज्जति ॥६॥

लाभकम्या न सिक्खति, अलाभे न च कुप्पति ।
अविरुद्धो च तण्हाय, रसे च नानुगिज्झति ॥७॥

उपेक्खको सदा सतो, न लोके मञ्ञते समं ।
न विसेसी न नीचेय्यो, तस्स न सन्ति उस्सदा ॥८॥

यस्स निस्सयता[3] नत्थि, ञत्वा धम्मं अनिस्सितो ।
भवाय विभवाय वा, तण्हा यस्स न विज्जति ॥९॥

तं ब्रूमि उपसन्तो'ति, कामेसु अनपेक्खिनं ।
गन्था तस्स न विज्जन्ति, अतारि सो विसत्तिकं ॥१०॥

न तस्स पुत्ता पसवो वा, खेत्तं वत्थुं न विज्जति ।
अत्तं[4] वापि निरत्तं[5] वा, न तस्मिं उपलब्भति ॥११॥

येन नं वज्जु पुथुज्जना, अथो समणब्राह्मणा ।
तं तस्स अपुरेक्खतं, तस्मा वादेसु नेजति ॥१२॥

वीतगेधो अमच्छरी, न उस्सेसु वदते मुनि ।
न समेसु न ओमेसु, कप्पं नेति अकप्पियो ॥१३॥

यस्स लोके सकं नत्थि, असता च न सोचति ।
धम्मेसु च न गच्छति स वे सन्तो'ति वुच्चतीति ॥१४॥

पुराभेदसुत्तं निट्ठितं ।

४९—कलहविवाद-सुत्तं

कुतो पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च ।
मानातिमाना सह पेसुणा च कुतो पहूता ते तदिङ्घ ब्रूहि ॥१॥

---

१ नीयति—म । २ पटिभानवा—स्या० रो० । ३ निस्सयना—म । ४ अत्ता—म । ५ निरत्ता—म ।

जो भविष्य के विषय में आसक्ति नहीं रखता और न भूत के विषय में पछतावा करता और जो स्पर्शों में भी रत नहीं होता, वह दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता ॥ ४ ॥

जो आसक्ति, ढोंग, स्पृहा और मात्सर्य से रहित है। जो प्रगल्भी नहीं है, घृणा रहित है और चुगलखोरी में नहीं लगता, जो प्रिय वस्तुओं मे रत नही होता और अभिमान रहित है, जो शान्त और प्रतिभाशाली है, वह न तो अति श्रद्धालु होता है और न किसी से उदास ही रहता है ॥ ५-६ ॥

वह लाभ की इच्छा से शिक्षा प्राप्त नहीं करता और अलाभ के कारण कुपित भी नहीं होता। विरोधभाव रहित वह तृष्णा के वशीभूत हो स्वाद मे सलग्न नहीं होता ॥ ७ ॥

जो उपेक्षावान् है, सदा जागरूक है और ससार में किसी को समान, श्रेष्ठ या नीच नहीं मानता, उसमें तृष्णा नहीं है ॥ ८ ॥

जो अनासक्ति-भाव को जानकर आसक्ति रहित हो गया है, जिसमें भव या विभव के प्रति तृष्णा नहीं है, विषयों के प्रति उपेक्षावान् उसे मैं उपशान्त बताता हूँ। उसके लिए ग्रन्थियाँ नहीं हैं, क्योंकि वह तृष्णा से परे हो गया है ॥ ९-१० ॥

उसके पुत्र, पशु, खेत या धन नहीं हैं और न उसके लिए कुछ अपना या पराया है ॥ ११ ॥

जिस बात में साधारण मनुष्य, श्रमण और ब्राह्मण उसे दोषी ठहराते हैं, वह उसमें दोषी नहीं है। इसलिए वह अपवाद से विचलित नहीं होता ॥ १२ ॥

तृष्णा और मात्सर्य रहित मुनि अपने को श्रेष्ठ, समान या निम्न लोगों मे नहीं गिनता। समय के परे होकर वह उसके भेद को भी नहीं मानता ॥ १३ ॥

जिसका ससार में कुछ अपना नहीं, जो व्यतीत बात के लिए पछतावा नहीं करता और जो धर्मों के फेर में नहीं पड़ता, वह उपशान्त कहलाता है ॥ १४ ॥

पुराभेदसुत्त समाप्त।

४९—कलहविवाद-सुत्त

[इस सूत्र में कलह तथा वाद-विवाद इत्यादि के कारण दिखाये गये हैं।]

कृपया यह बतावें कि कलह, विवाद, विलाप, शोक, मात्सर्य, मान, अभिमान तथा चुगली कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? ॥ १ ॥

निरासत्ति अनागते, अतीतं नानुसोचति ।
विवेकदस्सी फस्सेसु, दिट्ठीसु च न निय्यति[1] ॥४॥

पतिलीनो अकुहको, अपिहालु अमच्छरी ।
अप्पगब्भो अजेगुच्छो, पेसुणेय्ये च नो युतो ॥५॥

सातियेसु अनस्सावी, अतिमाने च नो युतो ।
सण्हो च पटिभानवा,[2] न सद्धो न विरज्जति ॥६॥

लाभकम्या न सिक्खति, अलाभे न च कुप्पति ।
अविरुद्धो च तण्हाय, रसे च नानुगिज्झति ॥७॥

उपेक्खको सदा सतो, न लोके मञ्ञते समं ।
न विसेसी न नीचेय्यो, तस्स न सन्ति उस्सदा ॥८॥

यस्स निस्सयता[3] नत्थि, ञत्वा धम्मं अनिस्सितो ।
भवाय विभवाय वा, तण्हा यस्स न विज्जति ॥९॥

तं ब्रूमि उपसन्तो'ति, कामेसु अनपेक्खिनं ।
गन्था तस्स न विज्जन्ति, अतारि सो विसत्तिकं ॥१०॥

न तस्स पुत्ता पसवो वा, खेत्तं वत्थुं न विज्जति ।
अत्तं[4] वापि निरत्तं वा, न तस्मिं उपलब्भति ॥११॥

येन नं वज्जु पुथुज्जना, अथो समणब्राह्मणा ।
तं तस्स अपुरेक्खतं तस्मा वादेसु नेजति ॥१२॥

वीतगेधो अमच्छरी, न उस्सेसु वदते मुनि ।
न समेसु न ओमेसु, कप्पं नेति अकप्पियो ॥१३॥

यस्स लोके सकं नत्थि असता च न सोचति ।
धम्मेसु च न गच्छति, स वे सन्तो'ति वुच्चतीति ॥१४॥

पुराभेदसुत्तं निट्ठितं ।

४९—कलहविवाद-सुत्तं

कुतो पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च ।
मानातिमाना सह पेसुणा च कुतो पहूता ते तदिङ्घ ब्रूहि ॥१॥

---

१ नीयति—म । २ पटिभानवा—स्या टी । ३ निस्सयता—म । ४ अत्ता—म । ५. निरत्ता—म ।

जो भविष्य के विषय में आसक्ति नहीं रखता और न भूत के विषय में पछतावा करता और जो स्पर्शों में भी रत नहीं होता, वह दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता ॥ ४ ॥

जो आसक्ति, ढोंग, स्पृहा और मात्सर्य से रहित है। जो प्रगल्भी नहीं है, घृणा रहित है और चुगलखोरी में नहीं लगता, जो प्रिय वस्तुओं में रत नहीं होता और अभिमान रहित है, जो शान्त और प्रतिभाशाली है, वह न तो अति श्रद्धालु होता है और न किसी से उदास ही रहता है ॥ ५-६ ॥

वह लाभ की इच्छा से शिक्षा प्राप्त नहीं करता और अलाभ के कारण कुपित भी नहीं होता। विरोधभाव रहित वह तृष्णा के वशीभूत हो स्वाद में सलग्न नहीं होता ॥ ७ ॥

जो उपेक्षावान् है, सदा जागरूक है और ससार में किसी को समान, श्रेष्ठ या नीच नहीं मानता, उसमें तृष्णा नहीं है ॥ ८ ॥

जो अनासक्ति-भाव को जानकर आसक्ति रहित हो गया है, जिसमें भव या विभव के प्रति तृष्णा नहीं है, विषयों के प्रति उपेक्षावान् उसे मैं उपशान्त बताता हूँ। उसके लिए ग्रन्थियाँ नहीं हैं, क्योंकि वह तृष्णा से परे हो गया है ॥ ९–१० ॥

उसके पुत्र, पशु, खेत या धन नहीं हैं और न उसके लिए कुछ अपना या पराया है ॥ ११ ॥

जिस बात में साधारण मनुष्य, श्रमण और ब्राह्मण उसे दोषी ठहराते हैं, वह उसमें दोषी नहीं है। इसलिए वह अपवाद से विचलित नहीं होता ॥ १२ ॥

तृष्णा और मात्सर्य रहित मुनि अपने को श्रेष्ठ, समान या निम्न लोगों में नहीं गिनता। समय के परे होकर वह उसके भेद को भी नहीं मानता ॥ १३ ॥

जिसका ससार में कुछ अपना नहीं, जो व्यतीत बात के लिए पछतावा नहीं करता और जो धर्मों के फेर में नहीं पड़ता, वह उपशान्त कहलाता है ॥ १४ ॥

पुराभेदसुत्त समाप्त।

४९—कलहविवाद-सुत्त

[इस सूत्र में कलह तथा वाद-विवाद इत्यादि के कारण दिखाये गये हैं।]

कृपया यह बतावें कि कलह, विवाद, विलाप, शोक, मात्सर्य, मान, अभिमान तथा चुगली कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? ॥ १ ॥

पिया पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च ।
मानातिमाना सह पेसुणा च, मच्छेरियुत्ता कलहाविवादा ।
विवादजातेसु च पेसुणानि ॥२॥

पिया नु[1] लोकस्मि कुतो निदाना, ये चापि[2] लोभा विचरन्ति लोके ।
आसा च निट्ठा च कुतो निदाना, ये सम्परायाय नरस्स होन्ति ॥३॥

छन्दानिदानानि पियानि लोके, ये चा'पि लोभा विचरन्ति लोके ।
आसा च निट्ठा च इतो निदाना, सम्परायाय नरस्स होन्ति ॥४॥

छन्दो नु लोकस्मि कुतो निदानो, विनिच्छया चा'पि[3] कुतो पहूता ।
कोधो मोसवज्जञ्च कथंकथा च, ये चा'पि धम्मा समणेन वुत्ता ॥५॥

सातं असातन्ति यमाहु लोके, तमूपनिस्साय पहोति छन्दो ।
रूपेसु दिस्वा विभवं भवञ्च, विनिच्छयं कुरुते जन्तु लोके ॥६॥

कोधो मोसवज्जञ्च कथंकथा च, एते'पि धम्मा द्वयमेव सन्ते ।
कथंकथी ञाणपथाय सिक्खे, ञत्वा पवुत्ता समणेन धम्मा ॥७॥

सातं असातञ्च कुतो निदाना, किस्मिं असन्ते न भवन्ति हेते ।
विभवं भवञ्चापि यमेतमत्थं, एतं मे पब्रूहि यतो निदानं ॥८॥

फस्सनिदानं सातं असातं, फस्से असन्ते न भवन्ति हेते ।
विभवं भवञ्चापि यमेतमत्थं, एतं ते पब्रूमि इतो निदानं ॥९॥

फस्सो नु लोकस्मि कुतो निदानो, परिग्गहा चापि कुतो पहूता ।
किस्मिं असन्ते न ममत्तमत्थि, किस्मिं विभूते न फुसन्ति फस्सा ॥१०॥

नामञ्च रूपञ्च पटिच्च फस्सा, इच्छानिदानानि परिग्गहानि ।
इच्छा[4] न सन्त्या[5] न ममत्तमत्थि रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा ॥११॥

कथं समेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुखं[6] वा'पि[7] कथं विभोति ।
एतं मे पब्रूहि यथा विभोति तं[8] जानियाम इति[9] मे मनो अहु ॥१२॥

---

१ पिया सु—सी म० । २ चापि—म । ३ चापि—म । ४–५ इच्छाय सन्त्या—म० । ६–७ सुखञ्चापि—म । ८–९ तं जानियामाति—म०, तं जानितुमिच्छामाति—सी च ।

कलह, विवाद, विलाप, शोक, मात्सर्य, मान, अभिमान तथा चुगली प्रिय वस्तु से उत्पन्न होती हैं। कलह, विवाद मात्सर्ययुक्त है और विवादों में चुगली होती है ॥ २ ॥

संसार में प्रिय वस्तु कहाँ से उत्पन्न हो सकती है और किस कारण लोग लोभ के वशीभूत हो विचरते हैं ? तृष्णा और उसकी पूर्ति कैसे होती है, जो मनुष्य के पुनर्जन्म के कारण होते हैं ॥ ३ ॥

प्रिय वस्तुओं का निदान इच्छा है और इसके कारण लोग लोभ के वशीभूत हो संसार में विचरते हैं। तृष्णा और उसकी पूर्ति का हेतु भी यही है, जो मनुष्य के पुनर्जन्म के कारण होते हैं ॥ ४ ॥

संसार में इच्छा का क्या निदान है और श्रमण (= बुद्ध) के बताये विनिश्चय, क्रोध, मिथ्याभाषण तथा शंका जैसी बातें कहाँ से उत्पन्न होती हैं ? ॥ ५ ॥

संसार में जो प्रिय और अप्रिय वस्तु है, उन्हीं के कारण इच्छा होती है। रूप के विनाश और उत्पत्ति को देखकर लोग यहाँ (जीवन सम्बन्धी) किसी निश्चय पर पहुँचते हैं ॥ ६ ॥

क्रोध, मिथ्या और शंका—ये धर्म भी (प्रिय और अप्रिय) दोनों बातों से उत्पन्न होते हैं। संशययुक्त मनुष्य को चाहिए कि ज्ञान-पथ पर चलकर शिक्षा लें, क्योंकि श्रमण (= बुद्ध) ने जानकर ही इन बातों को कहा है ॥ ७ ॥

प्रियभाव और अप्रियभाव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? किसके न होने पर ये सब नहीं होते ? जो नाश और उत्पत्ति कही गई है, मुझे इसका निदान भी यथारूप बतावें ॥ ८ ॥

प्रियभाव और अप्रियभाव का निदान स्पर्श है। स्पर्श के न होने से ये सब उत्पन्न नहीं होते। जो विनाश और उत्पत्ति कही गई है—इसका निदान भी यही बताता हूँ ॥ ९ ॥

संसार में स्पर्श कहाँ से उत्पन्न होता है ? परिग्रह कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? किसके न होने से ममता नहीं होती ? और किसके न होने से स्पर्श नहीं होते ? ॥ १० ॥

स्पर्श, नाम और रूप के कारण होते हैं। इच्छा ही परिग्रहों का निदान है। इच्छा के न होने से ममता नहीं होती। रूप के न होने से स्पर्श भी नहीं होते ॥ ११ ॥

किस अवस्था में रूप का निरोध होता है और सुख-दुःख का निरोध किस प्रकार होता है ? उसका निरोध यथार्थ रूप से मुझे बतावें, मुझे उसे जानने का मन हुआ ॥ १२ ॥

न सञ्ञसञ्ञी न विसञ्ञसञ्ञी, नो'पि असञ्ञी न विभूतसञ्ञी ।
एवं समेतस्स विभोति रूपं, सञ्ञानिदाना हि पपञ्चसङ्खा ॥१३॥
यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो, अञ्ञं तं पुच्छाम तदिङ्घ ब्रूहि ।
एत्तावतग्गं नु वदन्ति हेके, यक्खस्स सुद्धिं इध पण्डितासे ।
उदाहु अञ्ञम्पि वदन्ति एत्तो ॥१४॥
एत्तावतग्गम्पि वदन्ति हेके, यक्खस्स सुद्धिं इध पण्डितासे ।
तेसं पुनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसेसे कुसला वदाना ॥१५॥
एते च ञत्वा उपनिस्सिता'ति, ञत्वा मुनी निस्सये सो विमंसी ।
ञत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भवाभवाय न समेति धीरो'ति ॥१६॥

कलहविवादसुत्तं निट्ठितं ।

५०—चूळवियूह[2]-सुत्त

सकं सकं दिट्ठिपरिब्बसाना, विग्गय्ह नाना कुसला वदन्ति ।
'यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पटिक्कोसमकेवली सो' ॥१॥
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति[3], बालो परो अक्कुसलो'ति[4] चाहु ।
सच्चो नु वादो कतमो इमेसं, सब्बे'व हिमे कुसला वदाना ॥२॥
परस्स चे धम्ममनानुजानं, बालो मगो[5] होति निहीनपञ्ञो ।
सब्बे'व बाला सुनिहीनपञ्ञा, सब्बेविमे दिट्ठिपरिब्बसाना ॥३॥
सन्दिट्ठिया चे[6] पन वीवदाता, संसुद्धपञ्ञा कुसला मुतीमा ।
न तेसं कोचि परिहीनपञ्ञो[7], दिट्ठी हि तेसम्पि तथा समत्ता ॥४॥
न वाहमेतं तथियन्ति[8] ब्रूमि, यमाहु बाला मिथु अञ्ञमञ्ञं ।
सकं सकं दिट्ठिमकंसु सच्चं, तस्मा हि बालो'ति परं दहन्ति ॥५॥
यमाहु सच्चं तथियन्ति एके, तमाहु अञ्ञे[9] तुच्छं मुसा'ति ।
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति, कस्मा न एकं समणा वदन्ति ॥६॥

---

१. न—म । २. चूळब्यूहसुत्तं—म । ३. विवादयन्ति—म । ४. अकुसलोति—म ।
५. चेव—म०। वे—सी । ६. सब्बे—म । ७. निहीनपञ्ञो—स्या० क । ८. तथियन्ति—स्या० क । ९. अञ्ञेपि—स्या ।

प्रकृत चित्त, विकृत चित्त, विलीन चित्त और व्यापक चित्त की अवस्थाओं से जो रहित है, उसमें रूप का निरोध होता है। सब प्रपञ्च चित्त से उत्पन्न हैं ॥ १३ ॥

हमने जो कुछ पूछा है, उसे आपने हमें बताया। आपसे दूसरी बात पूछना चाहता हूँ, कृपया बतावें। कुछ पण्डित प्राणी की अन्तिम शुद्धि इसी (अल्प समाधि) मे बताते है। क्या इससे आगे भी शुद्धि बतानेवाले हैं? ॥ १४ ॥

कुछ पण्डित इसी मे प्राणी की अन्तिम शुद्धि बताते हैं। उनमें से कुछ लोग (प्राणी के) उच्छेद को बताते हैं। लेकिन कुशल जन निर्वाण को ही अन्तिम शुद्धि बताते हैं ॥ १५ ॥

जो मुनि विवेकपूर्वक इन बातों को दृष्टि-आश्रित जानकर मुक्त हुआ है, वह फिर विवाद मे नहीं पडता और न वह पुनर्जन्म में ही आ पडता है ॥ १६ ॥

कलहविवादसुत्त समाप्त।

५०—चूलवियूह-सुत्त

[लोग मतों के कारण विवाद करते हैं और नाना सत्यों को बताते हैं। सत्य तो एक ही है। जो धारणाओं को छोड़ता है, वह विवाद में नहीं पड़ता।]

(लोग) अपनी-अपनी दृष्टि में स्थिर हो, विवाद में पडकर अनेक प्रकार से अपने को कुशल बताते हैं (और कहते हैं कि) जो इसे जानता है, वह धर्म को जानता है, जो इसकी निन्दा करता है, वह केवली नहीं है ॥ १ ॥

विग्रह मे पडकर वे इस प्रकार भी विवाद करते हैं। वे बताते हैं कि जो विरोधी है, वह मूर्ख है और अकुशल है। इनमे कौन वाद सत्य है? सभी अपने को कुशल बताते हैं ॥ २ ॥

जो दूसरे के धर्म को स्थान नहीं देता, वह मूर्ख, पशु और प्रज्ञाहीन बनाया जाता है। सभी मूर्ख हैं, प्रज्ञाहीन है। ये सभी दृष्टियों में स्थित हैं ॥ ३ ॥

यदि (लोग) अपनी दृष्टि से पवित्र होते हैं, तो वे शुद्ध प्रज्ञ कुशल हैं, और मतिमान् हैं। उनमें कोई प्रज्ञाहीन नहीं, क्योंकि उनकी दृष्टि परिपूर्ण है ॥ ४ ॥

मैं यह नहीं कहता कि 'यही सत्य है', जिस बात को लेकर लोग एक-दूसरे को मूर्ख बताते हैं (वे) अपनी-अपनी दृष्टि को सत्य सिद्ध करते हैं और एक-दूसरे को मूर्ख बताते है ॥ ५ ॥

कुछ लोग जिसे सत्य कहते है और लोग उसे प्रलाप और असत्य बताते है। इस प्रकार भी वे विग्रह में पडकर विवाद करते हैं। श्रमण एक ही बात क्यों नहीं बताते? ॥ ६ ॥

एकं हि सच्चं न दुतियमत्थि, यस्मिं पजानो विवदे पजानं ।
नाना[1] ते[2] सच्चानि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समणा वदन्ति ॥७॥
कस्मा नु सच्चानि वदन्ति नाना, पवादियासे कुसला वदाना ।
सच्चानि सुतानि बहूनि नाना, उदाहु ते तक्कमनुस्सरन्ति ॥८॥
न हेव सच्चानि बहूनि नाना, अञ्ञत्र सञ्ञाय निच्चानि लोके ।
तक्कञ्च दिट्ठीसु पकप्पयित्वा, सच्चं मुसा'ति द्वयधम्ममाहु ॥९॥
दिट्ठे सुते सीलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी ।
विनिच्छये ठत्वा पहस्समानो, बालो परो अकुसलो'ति चाह ॥१०॥
येनेव बालो'ति परं दहाति, तेनातुमानं कुसलो ति चाह ।
सयमत्तना सो कुसलो वदानो, अञ्ञं विमानेति तदेव[3] पावा ॥११॥
अतिसारदिट्ठिया सो समत्तो, मानेन मत्तो परिपुण्णमानी ।
सयमेव सामं मनसाभिसित्तो, दिट्ठी हि सा तस्स तथा समत्ता ॥१२॥
परस्स चे हि वचसा निहीनो, तुमो सहा होति निहीनपञ्ञो ।
अथ चे सयं वेदगू होति धीरो, न कोचि बालो समणेसु अत्थि ॥१३॥
अञ्ञं इतो याभिवदन्ति धम्मं अपरद्धा सुद्धिमकेवलीनो ।
एवं हि तित्थ्या पुथुसो वदन्ति, सन्दिट्ठिरागेन हि ते'भिरत्ता ॥१४॥
इधेव सुद्धिमिति वादियन्ति, नाञ्ञेसु धम्मेसु विसुद्धिमाहु ।
एवम्पि तित्थ्या पुथुसो निविट्ठा, सकायने तत्थ दळ्हं वदाना ॥१५॥
सकायने वापि दळ्हं वदाना कमेत्थ बालो ति परं दहेय्य ।
सयमेव सो मेधगं[4] आवहेय्य, परं वदं[5] बालमसुद्धधम्मं ॥१६॥
विनिच्छये ठत्वा सयं पमाय उद्धं सो[6] लोकस्मिं विवादमेति ।
हित्वान सब्बानि विनिच्छयानि न मेधगं कुब्बति जन्तु लोके ति ॥१७॥

चूळवियूहसुत्तं निट्ठितं

---

१ ए. अञ्ञो—स । ३ तेस—म । ४ दुतीयमेत्थ ने— । [illegible]—
[illegible] स । ६ ए. [illegible]—स ८ [illegible] ।

सत्य एक ही है दूसरा नहीं, जिसके विषय में मनुष्य-मनुष्य से विवाद करे। वे नाना सत्यों की प्रशंसा करते हैं, इसलिए श्रमण एक ही बात नहीं बताते ॥७॥

(लोग) नाना सत्यों को क्यों बताते हैं? वे (अपने को) कुशल कहकर विवाद क्यों करते हैं? क्या नाना और बहुत-से सत्य सुने जाते हैं अथवा वे तर्क का अनुसरण करते हैं? ॥ ८ ॥

धारणा के अतिरिक्त ससार में नित्य, नाना और बहुत सत्य हैं ही नहीं। दृष्टियों के विषय में तर्क लगाकर वे सत्य, असत्य-दो धर्मों को बताते हैं ॥ ९ ॥

दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत, धारणा—इनके कारण दूसरे के प्रति अवज्ञायुक्त हो, हर्ष से किसी धारणा पर स्थित हो (लोग) दूसरे को मूर्ख, अकुशल बताते हैं ॥ १० ॥

(मनुष्य) जिसके कारण दूसरे को मूर्ख बताता है, उसी कारण अपने को कुशल बताता है। अपने को कुशल बतानेवाला वह उसी कारण दूसरे की अवज्ञा करता है ॥ ११ ॥

वह सारातिरेक से पूर्ण है, मानमत्त है, पूर्ण अभिमानी है। वह स्वय अपने मन से (पाण्डित्य में) अभिषिक्त है, क्योंकि उसकी दृष्टि पूर्ण है ॥ १२ ॥

यदि दूसरे के कहने से ही हो सकते तो वह (स्वय) भी हीनप्रज्ञ हो सकता है। यदि अपने (कहने से) कोई ज्ञान पारङ्गत और बुद्धिमान् हो सके, तो श्रमणों में कोई भी मूर्ख नहीं होता ॥ १३ ॥

'जो इस धर्म के बाहर शुद्धि बताते हैं, वे अकेवली हैं'—इस प्रकार तैर्थिक प्राय कहते हैं, क्योंकि वे दृष्टिराग में रत हैं ॥ १४ ॥

'शुद्धि यहीं है, दूसरे धर्मों में शुद्धि नहीं है'—इस प्रकार अपनी दृष्टि में अति निविष्ट, दृढग्राही तैर्थिक बताते हैं ॥ १५ ॥

जो अपनी दृष्टि के दृढग्राही हो, दूसरे को मूर्ख बताता है, दूसरे धर्म को मूर्ख और अशुद्ध बतानेवाला वह स्वय कलह का आह्वान करता है ॥ १६ ॥

किसी धारणा पर स्थित हो, उसकी तुलना कर वह ससार में विवाद करता है। जो सभी धारणाओं को त्याग देता है, वह मनुष्य ससार में कलह नहीं करता ॥ १७ ॥

चूळवियूहसुत्त समाप्त

८१—महावियूह-सुत्त

ये केचि'मे दिट्ठिपरिब्बसाना, इदमेव सच्चं ति विवादियन्ति[1] ।
सब्बे'व ते निन्दमन्वानयन्ति, अथो पसंसं'पि लभन्ति तत्थ ॥१॥

अप्पं हि एतं न अलं समाय, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि ।
एतं पि दिस्वा न विवादियेथ, खेमाभिपस्सं अविवादभूमिं ॥२॥

या काचि'मा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बा'व एता न उपेति विद्वा ।
अनूपयो सो उपयं किमेय्य, दिट्ठे सुते खन्तिमकुब्बमानो ॥३॥

सीलुत्तमा संयमेनाहु सुद्धिं, वतं समादाय उपट्ठितासे ।
इधेव सिक्खेम अथ'स्स सुद्धिं, भवूपनीता कुसलावदाना ॥४॥

स चे चुतो सीलवततो होति, स[2] वेधति[3] कम्म विराधयित्वा ।
स जप्पति पत्थयतीच सुद्धिं, सत्था'व हीनो पवसं घरम्हा ॥५॥

सीलब्बतं वा'पि पहाय सब्बं, कम्मं च सावज्ज'नवज्जमेतं[4] ।
सुद्धिं असुद्धिं'ति अपत्थयानो, विरतो चरे सन्तिमनुग्गहाय ॥६॥

तमूपनिस्साय जिगुच्छितं वा, अथ वा'पि दिट्ठं'व सुतं मुतं वा ।
उद्धंसरा सुद्धमनुत्थुनन्ति अवीततण्हासे भवाभवेसु ॥७॥

पत्थयमानस्स हि जप्पितानि, संवेदितं[5] चापि पकप्पितेसु ।
चुतूपपातो इध यस्स नत्थि स केन वेधेय्य कुहिं[6] चि जप्पं[7] ॥८॥

यमाहु धम्मं परमं'ति एके, तमेव हीनं'ति पनाहु अञ्ञे ।
सच्चो नु वादो कतमो इमेसं सब्बे'व हीमे कुसला वदाना ॥९॥

सकं हि धम्मं परिपुण्णमाहु, अञ्ञस्स धम्मं पन हीनमाहु ।
एवं'पि विग्गय्ह विवादियन्ति सकं सकं सम्मुतिमाहु सच्चं ॥१०॥

परस्स चे वंभयितेन हीनो, न कोचि धम्मेसु विसेसि अस्स ।
पुथू हि अञ्ञस्स वदन्ति धम्मं निहीनतो सम्हि दळ्हं वदाना ॥११॥

सद्धम्मपूजा[8] पि नेसं तथेव[9] यथा पसंसन्ति सकायनानि ।
सब्बे[10] पवादा[11] तथिया[12] भवेय्युं सुद्धी हि नेसं पच्चत्तमेव ॥१२॥

---

१ विवादयन्ति—म । २-३ वेधती—म । ४ सावज्जनवज्जमेतं—म० । पवेधितं—म । ६-७ कुहिं च जप्पे—म कुहिं व जप्पे—रो । ८-९ सद्धम्मपूजा च पना तथेव—सी । १०-११ सब्बे च पवादा —म । १२ तथिया—म ।

५१—महावियूह-सुत्त

[जो लोग दृष्टिवाद में पड़ते हैं वे शुद्धि को प्राप्त नहीं करते। सम्यदर्शी दृष्टिवाद को त्यागकर शान्ति को प्राप्त करते हैं।]

जो इन दृष्टियों पर स्थित हो विवाद करते हैं कि 'यही सत्य है' वे सभी इसमें निन्दा पाते हैं और प्रशंसा भी पाते हैं ॥ १ ॥

यह अल्प है और शान्ति के लिए पर्याप्त नहीं। मैं विवाद के दो फल बताता हूँ। निर्वाण को निर्विवाद भूमि समझनेवाले यह भी देखकर विवाद न करें ॥२॥

साधारण मनुष्यों की जो कुछ दृष्टियाँ हैं, पण्डित इन सब में नहीं पड़ता। दृष्टि और श्रुति को ग्रहण न करनेवाला, आसक्ति रहित वह क्या ग्रहण करे ॥३॥

शील को उत्तम माननेवाले संयम से शुद्धि बताते हैं। वे व्रत ग्रहण कर बताते हैं कि उसकी शुद्धि यहीं होगी। भव में पड़े लोग अपने को कुशल बताते हैं ॥४॥

यदि वह शील व्रत से गिरता है तो वह अपना कर्म बिगड़ा समझ कम्पित होता है। काफिले से बिछुड़े या घर से भटके की तरह वह शोक करता है और शुद्धि की कामना करता है ॥ ५ ॥

सभी शील-व्रत तथा सदोष, निर्दोष कर्म त्याग कर, शुद्धि-अशुद्धि की कामना न करते हुए शान्ति के लिए विरति के साथ विचरण करे ॥ ६ ॥

कुछ लोग तप या घृणित काम द्वारा अथवा दृष्टि, श्रुति या धारणा द्वारा, पुनर्जन्म की तृष्णा को बिना छोड़े ही, उच्चस्वर से शुद्धि को बताते हैं ॥ ७ ॥

आकांक्षावाले को ही तृष्णा होती है। जो उपाय करता है वही कम्पित रहता है। जिसे मृत्यु और जन्म नहीं है, वह किसलिए और कहाँ कम्पित होवे, तृष्णा करे ॥ ८ ॥

जिसे कुछ लोग उत्तम धर्म बताते हैं, उसी को दूसरे लोग नीच बताते हैं। इनमें कौन वाद सत्य है? ये सभी (अपने को) कुशल बताते हैं ॥ ९ ॥

(लोग) अपने धर्म को परिपूर्ण बताते हैं और दूसरे के धर्म को हीन बताते हैं। इस प्रकार भिन्न मतवाले ही विवाद करते हैं और अपनी धारणा को सत्य बताते हैं ॥ १० ॥

यदि दूसरे की अवज्ञा से हीन हो जाय तो धर्मों में कोई श्रेष्ठ नहीं होता। सभी दूसरे के धर्म को हीन बताते हैं और अपने को ठोस बताते हैं ॥ ११ ॥

(लोग) जिस प्रकार अपने धर्म मार्गों की प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार उनकी पूजा भी करते हैं। (यदि इसे सत्य का प्रमाण मान लें तो) सभी वाद सत्य होंगे और उनकी शुद्धि भी अलग-अलग होगी ॥ १२ ॥

न ब्राह्मणस्स परनेय्यमत्थि, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।
तस्मा विवादानि उपातिवत्तो, न हि सेट्ठतो पस्सति धम्ममञ्ञं ॥१३॥

जानामि पस्सामि तथेव एतं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं ।
अद्दक्खि चे किं हि[1] तुमस्स तेन अतिसित्वा अञ्ञेन वदन्ति सुद्धिं ॥१४॥

पस्सं नरो दक्खिति[2] नामरूपं, दिस्वान वा ञस्सति तानिमेव ।
कामं बहुं पस्सतु अप्पकं वा, न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति ॥१५॥

निविस्सवादी न हि सुब्बिनायो, पकप्पितं दिट्ठि पुरेक्खरानो ।
यं निस्सितो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिं वदो तत्थ तथद्दसा सो ॥१६॥

न ब्राह्मणो कप्पमुपेति संखा[3], न हि दिट्ठिसारी न'पि ञाणबन्धु ।
ञत्वा च सो सम्मुतियो[4] पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहणन्तमञ्ञे ॥१७॥

विसज्ज[5] गन्थानि मुनीध लोके, विवादजातेसु न वग्गसारी ।
सन्तो असन्तेसु उपेक्खको सो अनुग्गहो उग्गहणन्ति मञ्ञे ॥१८॥

पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बं, न छन्दगू नो पि निविस्सवादी[6] ।
स विप्पमुत्तो दिट्ठिगतेहि धीरो, न लिम्पति[7] लोके अनत्तगरही ॥१९॥

स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा ।
स पन्नभारो मुनि विप्पमुत्तो,
न कप्पियो नूपरतो न पत्थियो'ति (भगवा) ॥२०॥

महावियूहसुत्तं निट्ठितं ।

५२—तुवटक-सुत्तं

पुच्छामि तं आदिच्चबन्धुं[8] विवेकं सन्तिपदं च महेसिं ।
कथं दिस्वा निब्बाति भिक्खु अनुपादियानो लोकस्मि किञ्चि ॥१॥

मूलं पपञ्चसंखाय (इति भगवा) मन्ता अस्मीति सब्बमुपरुन्धे[9] ।
या काचि तण्हा अज्झत्तं तासं विनया सदा सतो सिक्खे ॥२॥

---

१ ब. किंहि—सी । किंहि—म । २ दक्खति—म । ४ संखा—म । ५ ... सम्मुतियो—स्या । ६ निस्सज्ज—म । ७ निविस्सवादी—सी टी । ८ लिम्पति—म आदिच्चबन्धु—म । ९ सब्बमुपरुन्धे—स्या टी क ।

ब्राह्मण (सत्य के लिए) दूसरे पर निर्भर नहीं रहता। विचार के वाद (वद) धर्मों में से किसी को ग्रहण नहीं करता। इसलिए वह विवादों से परे है और (सत्य को छोड) किसी दूसरे धर्म को श्रेष्ठ नहीं समझता ॥ १३ ॥

'(मै) इसे वैसा ही जानता और देखता हूँ'—(इस प्रकार) कुछ लोग दृष्टि से शुद्धि बताते हैं। यदि उन्होंने देखा तो क्या देखा ? (वे) यथार्थ मार्ग को छोड कर दूसरे क्रम से शुद्धि बताते हैं ॥ १४ ॥

देखनेवाला मनुष्य नाम रूप को देखता है, देखकर उन्हीं को मान लेता है। वह भले ही बहुत या कम देखे। कुशल जन इसी से शुद्धि नहीं बताते ॥१५॥

जो किसी वाद में आसक्त है वह शुद्धि को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह किसी दृष्टि को मानता है। मनुष्य जिसमे आसक्त है उसी को शुभ बताता है, और जिसे शुद्धि बताता है उसे सत्य मानता है ॥ १६ ॥

ब्राह्मण विवेकी हो तृष्ण-दृष्टि मे नहीं पडता। वह दृष्टि का अनुसरण नहीं करता और न ज्ञान बन्धु है। वह साधारण जनों की धारणाओं को, जिन्हें और लोग ग्रहण करते हैं, जानकर उनकी उपेक्षा करता है ॥ १७ ॥

मुनि इस ससार में ग्रन्थियों को छोडकर वादियों में पक्षपाती नहीं होता। अशान्तों में शान्त वह जिसे और लोग ग्रहण करते हैं उसकी उपेक्षा करता है ॥ १८ ॥

जो पूर्व वासनाओं को छोडकर नई वासनाओं को उत्पन्न नहीं करता, इच्छा रहित, वाद में अनासक्त, दृष्टियों से पूर्ण रूप से मुक्त वह धीर ससार में लिप्त नहीं होता और वह अपनी गर्हा नहीं करता ॥ १९ ॥

जो कुछ दृष्टि, श्रुति या विचार है, उन सब पर वह विजयी है। पूर्ण रूप से मुक्त, भार-त्यक्त वह सस्कार, उपरति तथा तृष्णा रहित है ॥ २० ॥

महावियूहसुत्त समाप्त।

५२—तुवटक-सुत्त

[इस सूत्र में यह दिखाया गया है कि शान्ति की प्राप्ति के लिए भिक्षु को क्या करना चाहिए।]

आदित्य बन्धु, महर्षि आप से मैं विवेक तथा शान्तिपद के विषय में पूछता हूँ। उसके दर्शन से ससार में किसी में भी अनासक्त हो, भिक्षु किस प्रकार शान्त होता है ? ॥ १ ॥

बुद्ध :—

प्रपञ्च का मूल अहभाव समझकर ज्ञानी सर्व प्रकार उसका अन्त कर दे। भीतर जो कुछ तृष्णाएँ हैं, स्मृतिमान् हो सदा उनके उपरम को सीखे ॥ २ ॥

एवं किञ्चि धम्ममभिञ्ञाय, अज्झत्तं अथ वा'पि बहिद्धा ।
न तेन मानं कुब्बेथ, न हि सा निब्बुति सतं वुत्ता ॥३॥
सेय्यो न तेन मञ्ञेय्य, नीचेय्यो अथ वा'पि सरिक्खो ।
फुट्ठो[1] अनेकरूपेहि, नातुमानं[2] विकप्पयं तिट्ठे ॥४॥
अज्झत्तमेव उपसमे, नाञ्ञतो भिक्खु सन्तिमेसेय्य ।
अज्झत्तं उपसन्तस्स, नत्थि अत्तं कुतो निरत्तं वा ॥५॥
मज्झे यथा समुद्दस्स, ऊमि नो जायति ठितो होति ।
एवं ठितो अनेजस्स उस्सदं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ॥६॥
अकित्तयि विवटचक्खु सक्खिधम्मं परिस्सयविनयं ।
पटिपदं वदेहि भद्दं ते, पातिमोक्खं अथ वा'पि समाधिं ॥७॥
चक्खूहि नेव लोलस्स, गामकथाय आवरये सोतं ।
रसे च नानुगिज्झेय्य न च ममायेथ किञ्चि लोकस्मिं ॥८॥
फस्सेन यदा फुट्ठस्स परिदेवं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ।
भवं च नाभिजप्पेय्य, भेरवेसु च न संपवेधेय्य ॥९॥
अन्नानमथो पानानं, खादनीयानमथो'पि वत्थानं ।
लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो ॥१०॥
झायी न पादलोलस्स, विरमे कुक्कुच्चा नप्पमज्जेय्य ।
अथ आसनेसु सयनेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहरेय्य ॥११॥
निद्दं न बहुलीकरेय्य, जागरियं भजेय्य आतापी ।
तन्दिं मायं हस्सं खिड्डं, मेथुनं विप्पजहे सविभूसं ॥१२॥
आथब्बणं सुपिनं लक्खणं, नो विदहे अथो पि नक्खत्तं ।
विरुतं च गब्भकरणं, तिकिच्छं मामको न सेवेय्य ॥१३॥
निन्दाय नप्पवेधेय्य न उण्णमेय्य पसंसितो भिक्खु ।
लोभं सह मच्छरियेन, कोधं पेसुनियं च पनुदेय्य ॥१४॥
कयविक्कये न तिट्ठेय्य उपवादं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ।
गामे च नाभिसज्जेय्य लाभकम्या जनं न लपयेय्य ॥१५॥
न च कत्थिता सिया भिक्खु न च वाचं पयुतं भासेय्य ।
पागब्भियं न सिक्खेय्य, कथं विग्गाहिकं न कथयेय्य ॥१६॥
मोसवज्जे न निय्येथ[3] संपजानो सठानि न कयिरा ।
अथ जीवितेन पञ्ञाय, सीलब्बतेन नाञ्ञमतिमञ्ञे ॥१७॥
सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समणानं पुथुवचनानं[4] ।
फरुसेन ते न पतिवज्जा, न हि सन्तो पटिसेनिकरोन्ति ॥१८॥

---

१ बाम—म० । २ फुट्ठो—सी० स्या० क० । ३ बाभिमाय—सी० । ४ नीचेय—क० । ५ पुथुवचनानं—क० ।

(अपने) भीतर या बाहर जो कुछ गुण है उसे जानकर उसके कारण गर्व न करे, क्योंकि साधु जन उसे शान्ति नहीं बताते ॥ ३ ॥

उसके कारण न (दूसरे से) श्रेष्ठ समझे, न नीच और न समान। अनेक प्रकार का स्पर्श पाकर भी अपने को विकल्प मे न डाले ॥ ४ ॥

अपने भीतर को शान्त करे। भिक्षु दूसरे उपाय से शान्ति की गवेषणा न करे। जिसका भीतर शान्त है उसमे अपनत्व नहीं, फिर परत्व कहाँ से ? ॥५॥

जिस प्रकार समुद्र के बीच लहर नहीं उठती बल्कि स्थिरता रहती है, उसी प्रकार स्थिर, चञ्चलता रहित भिक्षु कहीं तृष्णा न करे ॥ ६ ॥

उन्मीलित चक्षु ! (आप ने) बाधाओं को दूर करने के लिए साक्षात् धर्म बताया है। अपनी भद्र प्रतिपदा को बतावे जो कि प्रातिमोक्ष या समाधि है ॥७॥

चक्षु के विषय मे लोलुपता न करे। गवारु बात मे कान को बन्द रखे, स्वाद की लोलुपता न करे और न ससार मे कुछ अपनावे ॥ ८ ॥

(दु:खद) स्पर्श पाकर भिक्षु कहीं विलाप न करे, भव की तृष्णा न करे, और भय से कम्पित न होवे ॥ ९ ॥

अन्न अथवा पान, खाद्य अथवा वस्त्र के मिलने पर उनका सग्रह न करे। उनके न मिलने पर चिन्ता न करे ॥ १० ॥

ध्यानी घुमक्कड न बने, व्याकुलता से विरत रहे, प्रमाद न करे। भिक्षु एकान्त स्थानो मे विहार करे ॥ ११ ॥

निद्रा को न बढावे, प्रयत्नशील हो जागरण का अभ्यास करे। तंद्रा, छल, हँसी, क्रीडा, मैथुन, और शृगार को दूर करे ॥ १२ ॥

मेरा शिष्य मत्र, स्वप्न, लक्षण तथा ज्योतिष का अभ्यास न करे, और पक्षिरव, गर्भकरण तथा चिकित्सा का अभ्यास भी न करे ॥ १३ ॥

भिक्षु निन्दा से विचलित न होवे, प्रशसा से न फूले, और लोभ, कञ्जूसी, क्रोध तथा चुगली को दूर करे ॥ १४ ॥

भिक्षु क्रय-विक्रय में न लगे, कहीं किसी को दोष न दे, गाँव में (किसी को) गाली न दे, और लाभ की इच्छा से लोगों से न बोले ॥ १५ ॥

भिक्षु आत्म-प्रशसी न बने, स्वार्थ की बात न करे, प्रगल्भता को न सीखे और कलह की बात न करे ॥ १६ ॥

मिथ्या भाषण में न पड़े, जान बूझकर कपट न करे, फिर जीविका, प्रज्ञा, शील व्रत के विषय मे दूसरे की अवज्ञा न करे ॥ १७ ॥

बहुभाषी श्रमणो की दोषयुक्त बहुत सी बातों को सुनकर उनको कठोर जवाब न दे, साधु जन प्रतिहिंसक नहीं होते ॥ १८ ॥

एवं च धम्ममक्खाय, विचिनं भिक्खु सदा सतो सिक्खे ।
सन्तीति निब्बुतिं ञत्वा, सासने गोतमस्स नप्पमज्जेय्य[1] ॥१९॥
अभिभू हि सो अनभिभूतो, सक्खिधम्मं अनीतिहमदस्सी ।
तस्मा हि तस्स भगवतो सासने,
अप्पमत्तो सदा नमस्समनुसिक्खे'ति (भगवा) ॥२०॥

तुवटकसुत्तं निट्ठितं ।

५३—अत्तदण्ड-सुत्तं

अत्तदण्डा भयं जातं जनं पस्सथ मेधकं[2] ।
संवेगं कित्तयिस्सामि, यथा संविजितं मया ॥१॥
फन्दमानं पजं दिस्वा मच्छे अप्पोदके यथा ।
अञ्ञमञ्ञेहि ब्यारुद्धे दिस्वा मं भयमाविसि ॥२॥
समन्तमसरो लोको दिसा सब्बा समेरिता ।
इच्छं भवनमत्तनो, नाद्दसासिं अनोसितं ॥३॥
ओसाने त्वेव ब्यारुद्धे, दिस्वा मे अरती अहु ।
अथेत्थ सल्लमद्दक्खिं, दुद्दसं हदयनिस्सितं ॥४॥
येन सल्लेन ओतिण्णो दिसा सब्बा विधावति ।
तमेव सल्लं अब्बुय्ह न धावति न सीदति ॥५॥
तत्थ सिक्खानुगीयन्ति यानि लोके गधितानि न तेसु पसुतो सिया ।
निब्बिज्झ सब्बसो कामे सिक्खे निब्बानमत्तनो ॥६॥
सच्चो सिया अप्पगब्भो, अमायो रित्तपेसुणो ।
अक्कोधनो लोभपापं, वेविच्छं वितरे मुनि ॥७॥
निद्दं तन्दिं सहे थीनं पमादेन न संवसे ।
अतिमाने न तिट्ठेय्य, निब्बाणमनसो नरो ॥८॥
मोसवज्जे न निय्येथ, रूपे स्नेहं न कुब्बये ।
मानं च परिजानेय्य, साहसा विरतो चरे ॥९॥
पुराणं नाभिनन्देय्य, नवे खन्तिं न कुब्बये ।
हीयमाने न सोचेय्य, आकासं न सितो सिया ॥१०॥
गेधं ब्रूमि महोघो ति आजवं ब्रूमि जप्पनं ।
आरम्मणं पकप्पनं, कामपंको दुरच्चयो ॥११॥

---

१ नप्पमज्जेय्य—म । २. मेधगं—म ।

इस धर्म को जानकर विवेकी भिक्षु सदा स्मृतिमान् हो सीखे। निर्वाण को शान्ति जानकर गौतम की शिक्षा में प्रमाद न करे ॥ १९ ॥

उन विजयी ने अजेय हो धर्म को साक्षात् जान लिया है। इसलिए अप्रमत्त हो उन भगवान् की शिक्षा को सम्मान पूर्वक सीखे ॥ २० ॥

तुवटकसुत्त समाप्त।

५३—अत्तदण्ड-सुत्त

[यहाँ भगवान् अपने वैराग्य का कारण बताते हैं और वितृष्ण हो निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग दिखाते हैं।]

आत्म दोष से भय उत्पन्न होता है। कलहकारी मनुष्यों को देखो। जैसा कि मैंने जाना है वैसा ही सविग्नता का वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

अल्प जल में रहनेवाली मछलियों की तरह व्याकुल, एक दूसरे के विरुद्ध लोगों को देख कर मुझे भय लगा ॥ २ ॥

सारा ससार असार है, सभी दिशाएँ विचलित हैं। अपने लिए क्षेमस्थान की इच्छा करते हुए मैंने कहीं आपत्तियों से खाली नहीं पाया ॥ ३ ॥

अन्त मे (सर्वत्र) विरोधभाव को देखकर मुझे वैराग्य हुआ। तब मैंने यहाँ देखने मे दुष्कर हृदय में लगे तीर को देखा ॥ ४ ॥

(तृष्णा रूपी) जिस तीर के लगने से (प्राणी) सभी दिशाओं मे दौडता है, उसके निकालने से वह न तो दौडता है न बैठता है ॥ ५ ॥

यहाँ ससार में आसक्तिजनक बहुत सी शिक्षाएँ दी जाती हैं, उनमें न लगे। सर्वथा कामनाओं की ओर से उदास हो अपनी मुक्ति के लिए सीखें ॥ ६ ॥

मुनि सत्यवादी हो, प्रगल्भी न हो, कपट न हो, चुगलखोर न हो, क्रोध, लोभ, पाप तथा मात्सर्य रहित हो विचरण करे ॥ ७ ॥

निर्वाणापेक्षी मनुष्य निद्रा, तद्रा तथा आलस्य को जीते, प्रमाद में न रहे, अभिमान में न पड़े ॥ ८ ॥

मिथ्या भाषण में न पड़े, रूप की लालसा न करे, अभिमान को जानकर हिसा से विरत हो विचरण करे ॥ ९ ॥

पुराने का अभिनन्दन न करे, नये की अपेक्षा न करे, खोये की चिन्ता न करे और तृष्णा में लिप्त न होवे ॥ १० ॥

मैं लोभ को महा जलाशय बताता हूँ, आसक्ति को दौड बताता हूँ। आलम्बन कम्पन है, काम रूपी पंक दुस्तर है ॥ ११ ॥

सङ्खा अयोक्म्म मुनि, थले विद्रुति भासणो ।
सव्वं सो पटिनिस्सग्ग, स वे सन्तो ति वुच्चति ॥१२॥
स वे विद्वा स वेदगू अत्वा धम्मं अनिस्सितो ।
सम्मा सो लोके इरियानो, न पिहेतीध कस्सचि ॥१३॥
योध कामे अच्चतरि, संगं लोके दुरच्चयं ।
न सो सोचति नाज्झेति छिन्नसोतो अबन्धनो ॥१४॥
यं पुब्बे तं विसासेहि, पच्छा ते मा हु किञ्चनं ।
मज्झे चे नो गहेस्ससि उपसन्तो चरिस्ससि ॥१५॥
सब्बसो नामरूपस्मि, यस्स नत्थि ममायितं ।
असता च न सोचति स वे लोके न जीयति ॥१६॥
यस्स नत्थि इदं मे ति परेसं वा पि किञ्चनं ।
ममत्तं सो असंविन्दं, नत्थि मे ति न सोचति ॥१७॥
अनिट्ठुरी अननुगिद्धो, अनेजो सब्बधीसमो ।
तमानिसंसं पब्रूमि पुच्छितो अविकम्पिनं ॥१८॥
अनेजस्स विजानतो, नत्थि काचि निसंखिति ।
विरतो सो वियारम्भा, खेमं पस्सति सब्बधी ॥१९॥
न समेसु न ओमेसु, न उस्सेसु वदते मुनि ।
सन्तो सो वीतमच्छरो, नादेति न निरस्सतीति (भगवा) ॥२०॥

अत्तदण्डसुत्तं निट्ठितं ।

५४—सारिपुत्त-सुत्त

न मे दिट्ठो इतो पुब्बे (इच्चायस्मा सारिपुत्तो) नस्सुतो उद कस्सचि ।
एवं वग्गुवदो सत्था तुसिता गणिमागतो ॥१॥
सदेवकस्स लोकस्स, यथा दिस्सति चक्खुमा ।
सब्बं तमं विनोदेत्वा एको रतिमज्झगा ॥२॥
तं बुद्धं असितं तादिं अकुहं गणिमागतं ।
बहूनमिध बद्धानं अत्थि पञ्हेन आगमं ॥३॥
भिक्खुनो विजिगुच्छतो भजतो रित्तमासनं ।
रुक्खमूलं सुसानं वा, पब्बतानं गुहासु वा ॥४॥
उच्चावचेसु सयनेसु कीवन्तो तत्थ भेरवा ।
यहि भिक्खु न वेधेय्य निग्घोसे सयनासने ॥५॥

१ १ नच्चो—स्या व । २ अनु—सी । ४ वे—न सी । वा—सी ।
५ विस्सति—म । ७ बहूनमिध—म ।

श्रेष्ठ मुनि स्तर में न रहकर (निर्वाण रूपी) स्थल पर स्थित है। सर्व त्यागी वह अवश्य शान्त कहलाता है ॥ १२ ॥

विद्वान्, ज्ञानी, अनासक्त वह धर्म को जानकर सम्यक् रूप से संसार में विचरता है, और किसी से स्पृहा नहीं करता ॥ १३ ॥

संसार में आसक्ति रूपी दुस्तर कामों को जो तर गया, वह धारा को काट-कर, बन्धन रहित हो, शोचन नहीं करता चिन्ता नहीं करता ॥१४॥

पहले को त्याग दो, बाद को न अपनाओ, बीच में ग्रहण न करो, (इस प्रकार) उपशान्त हो विचरण करोगे ॥ १५ ॥

जिसे सर्व प्रकार से नाम और रूप में आसक्ति नहीं है, जो अविद्यमान का शोचन नहीं करता, वह संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता ॥ १६ ॥

जिसे किसी वस्तु के विषय में यह (भाव) नहीं होता कि यह मेरी या पराये की है, ममता रहित वह अभाव में शोचन नहीं करता ॥ १७ ॥

अनिष्ठुरता, निर्लोभिता, वितृष्णा, सर्वत्र समता—इसे मैं, पूछने पर, निर्भयता का सुपरिणाम बताता हूँ ॥ १८ ॥

तृष्णा रहित विज्ञ को कोई संस्कार नहीं होता। प्रयत्न से विरत वह सर्वत्र क्षेम देखता है ॥ १९ ॥

मुनि समानों, नीचों या श्रेष्ठों में अपने को नहीं बताता। शान्त, मात्सर्य रहित वह न तो किसी को ग्रहण करता है, न छोडता है ॥ २० ॥

अत्तदण्डसुत्त समाप्त।

५४—सारिपुत्त-सुत्त

[सारिपुत्र के पूछने पर भगवान् भिक्षु जीवन का मार्ग निर्देश करते हैं।]

सारिपुत्त

तुषित (देवलोक) से मनुष्यों के बीच आये, सुन्दर भाषी शास्ता जैसे किसी को इसके पूर्व न मैंने देखा है, न सुना है ॥ १॥

देवता सहित संसार को चक्षुमान् एकी रूप में दिखाई देते हैं। (वे) सारे अन्धकार को दूरकर, मुक्ति-सुख को प्राप्त हो अकेले विचरते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों के बीच आये अनासक्त, स्थिर, निष्कपट बुद्ध से बहुत-से बद्ध प्राणियों की ओर से प्रश्न करने आया हूँ ॥ ३ ॥

वृक्षमूलों, श्मशानों, पर्वतों तथा गुफाओं में विविक्त-चित्त का अभ्यास करनेवाले अनासक्त भिक्षु को विविध स्थानों में कितने भय जनक शब्द होते हैं, जिनसे कि एकान्त स्थान में रहनेवाला भिक्षु कम्पित न हो ॥ ४ ५ ॥

कति परिस्सया लोके, गच्छतो अमतं दिसं ।
ये भिक्खु अभिसंभवे, पन्तम्हि सयनासने ॥ ६ ॥

क्यास्स ब्यप्पथयो अस्सु, क्यास्सस्सु इध गोचरा ।
कानि सीलब्बतानस्सु[1] पहितत्तस्स भिक्खुनो ॥ ७ ॥

कं सो सिक्खं समादाय एकोदि निपको सतो ।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो ॥ ८ ॥

विजिगुच्छमानस्स यदिदं फासु (सारिपुत्ता ति भगवा),
सयने रित्तासनं सेवतो चे ।
सम्बोधिकामस्स यथानुधम्मं,
तं ते पवक्खामि यथा पजानं ॥ ९ ॥

पञ्चन्नं धीरो भयानं न भाये भिक्खु सतो सपरियन्तचारी ।
डंसाधिपातानं सिरिंसपानं, मनुस्सफस्सानं चतुप्पदानं ॥ १० ॥

परधम्मिकानं न सन्तसेय्य, दिस्वा'पि तेसं बहुभेरवानि ।
अथापरानि अभिसम्भवेय्य, परिस्सयानि कुसलानुएसी ॥ ११ ॥

आतंकफस्सेन खुदाय फुट्ठो, सीतं अच्चुण्हं[2] अधिवासयेय्य ।
सो तेहि फुट्ठो बहुधा अनोको, विरियं परक्कमं दळ्हं करेय्य ॥१२।

थेय्यं न करेय्य[3] न मुसा भणेय्य, मेत्ताय फस्से तसथावरानि ।
यदाविलत्तं मनसो विजञ्ञा, कण्हस्स पक्खो'ति विनोदयेय्य ॥१३॥

कोधातिमानस्स वसं न गच्छे मूलं'पि तेसं पलिखञ्ञ तिट्ठे ।
अथप्पियं वा पन अप्पियं वा, अद्धा भवन्तो अभिसंभवेय्य ॥१४॥

पञ्ञं पुरक्खत्वा कल्याणपीति, विक्खम्भये तानि परिस्सयानि ।
अरतिं सहेथ सयनम्हि पन्ते, चतुरो सहेथ परिदेवधम्मे ॥१५॥

किं सु असिस्सामि कुवं वा असिस्सं दुक्खं वत सेत्थ कुवज्ज सेस्सं ।
एते वितक्के परिदेवनेय्ये, विनयेथ सेखो अनिकेतसारी ॥१६॥

अन्नं च लद्धा वसनं च काले, मत्तं स जञ्ञा इध तोसनत्थं ।
सो तेसु गुत्तो यतचारि गामे रुसितो'पि वाचं फरुसं न वज्जा ॥१७॥

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो झानानुयुत्तो बहुजागरस्स ।
उपेक्खमारब्भ[4] समाहितत्तो तक्कासयं कुक्कुच्चियूप छिन्दे ॥१८॥

---

[1] सीलब्बतानास्सु—म । [2] अच्चुण्ह—म । [3] कारे—च । [4] उपेक्खमारब्भ—सी ।

अमृत (=निर्वाण) की ओर जानेवाले (के मार्ग) में कितनी बाधाएं हैं जिनको कि एकान्त स्थान में भिक्षु दूर करे ॥ ६ ॥

सत्य गवेषणा में रत भिक्षु के वाक्य कौन से हैं? विषय कौन-से हैं? और शील-व्रत कौन-से हैं? ॥ ७ ॥

समाधिस्थ, ज्ञानी, स्मृतिमान् वह कौन सी शिक्षा को ग्रहण कर अपने मल को (वैसे ही) दूर करे जैसे कि सोनार चाँदी को (साफ करता है) ॥ ८ ॥

बुद्ध'—

विरक्त चित्त, एकान्त स्थान सेवी, धर्मानुसार सम्बोधि की इच्छा करनेवाले के लिए जो अनुकूल है, उस के विषय मे अनुभव के अनुसार तुम्हें बताता हूँ ॥ ९ ॥

धीर, स्मृतिमान्, सयत आचरणवाला भिक्षु पाँच भयों से भीत न होवे, डसनेवाली मक्खियों से, सर्पों से, (पापी) मनुष्यों के स्पर्श से तथा चतुष्पदों से ॥ १० ॥

जो दूसरे धर्मावलम्बी हैं उनके बहुत-से भयावह भेषों को देखकर न डरे। कुशल गवेषक दूसरी बाधाओं का भी सामना करे ॥ ११ ॥

रोग-पीडा, भूख-वेदना, शीत (तथा) अधिक उष्ण को सहे। वह अनेक प्रकार से पीडित हो, बेघर हो वीर्य तथा पराक्रम को दृढ करे ॥ १२ ॥

चोरी न करे, असत्य न बोले, दुर्बलों तथा सबलो के प्रति मैत्री करे। यदि मन को व्याकुल जाने तो (उसे) मार का पक्षपाती जान दूर करे ॥ १३ ॥

क्रोध तथा अभिमान् के वश में न आवे, उनके मूल को उखाड दे। अवश्य वह प्रिय अप्रिय दोनों को दूर करे ॥ १४ ॥

प्रज्ञा पूर्वक कल्याणरत हो उन बाधाओं को दूर करे। एकान्त स्थान मे अरति पर विजय पा ले, चार विलाप की बातों पर विजय पा ले ॥ १५ ॥

क्या खाऊँ? कहाँ खाऊँ? (कल) दुख से सोया था, आज कहाँ सोऊँ?—परिदेवनीय इन वितर्कों को बेघर हो विचरनेवाला शिष्य दूर करे ॥१६॥

समय पर अन्न तथा वस्त्र पाकर वह वहाँ अपने सतोष की मात्रा को जान ले। वह उनके विषय में सयत हो, सयम से गाँव में विचरे। रुष्ट होने पर भी कठोर बात न करे ॥ १७ ॥

नीचे की हुई आँख हो, घुमक्कड न हो, ध्यानानुरत हो, सदा जागरूक हो, उपेक्षावान हो, समाधिस्थ हो, सशय के आश्रय तथा व्याकुलता का नाश करे ॥ १८ ॥

चुदितो वचीभि सतिमाभिनन्दे, सब्रह्मचारीसु खिलं पभिन्दे ।
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं, जनवादधम्माय न चेतयेय्य ॥१९॥

अथापरं पञ्च रजानि लोके, येसं सतिमा विनयाय सिक्खे ।
रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु, गन्धेसु फस्सेसु सहेथ रागं ॥२०॥

एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं, भिक्खु सतीमा सुविमुत्तचित्तो ।
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,
एकोदिभूतो विहने तमं सो'ति (भगवा) ॥२१॥

सारिपुत्तसुत्तं निट्ठितं ।

(आचार्यादि द्वारा) दोष दिखाने पर स्मृतिमान् (उनका) अभिनन्दन करे, साथी ब्रह्मचारियो की चित्त शिथिलता का नाश करे, कल्याणकारी वचन कहे जो कि असङ्गत न हो, लोगों में विवाद उठाने को न सोचे ॥ १९ ॥

ससार में और पॉच रज हैं जिनको दूर करना स्मृतिमान् सीखे। रूप, शब्द, रस, गन्ध तथा स्पर्श के राग पर विजय पा ले ॥ २० ॥

इन बातों के प्रति अनुराग त्याग कर भिक्षु स्मृतिमान् तथा विमुक्त चित्त बने। वह समय पर धर्म का अनुशीलन कर, एकाग्रचित्त हो अन्धकार का नाश करे ॥ २१ ॥

सारिपुत्तसुत्त समाप्त।

५—पारायणवग्गो

५५—वत्थुगाथा

कोसलानं पुरा रम्मा, अगमा दक्खिणापथं ।
आकिञ्चञ्ञं पत्थयानो, ब्राह्मणो मन्तपारगू ॥१॥

सो अस्सकस्स विसये, मळकस्स[1] समासने ।
वसी गोधावरी कूले उञ्छेन च फलेन च ॥२॥

तस्सेव उपनिस्साय, गामो च विपुलो अहु ।
ततो जातेन आयेन, महायञ्ञमकप्पयि ॥३॥

महायञ्ञं यजित्वान पुन पाविसि अस्समं ।
तस्मिं पतिपविट्ठम्हि, अञ्ञो आगञ्छि ब्राह्मणो ॥४॥

उग्घट्टपादो तसितो, पंकदन्तो रजस्सिरो ।
सो च नं उपसंकम्म, सतानि पञ्च याचति ॥५॥

तमेनं बावरी दिस्वा आसनेन निमन्तयि ।
सुखं च कुसलं पुच्छि, इदं वचनमब्रवि ॥६॥

यं खो मम[2] देय्यधम्मं, सब्बं विस्सज्जितं मया ।
अनुजानाहि मे ब्रह्मे नत्थि पञ्च सतानि मे ॥७॥

सचे मे याचमानस्स, भवं नानुपदस्सति ।
सत्तमे दिवसे तुय्हं, मुद्धा फलतु सत्तधा ॥८॥

अभिसंखरित्वा कुहको, भेरवं सो अकित्तयि ।
तस्स तं वचनं सुत्वा, बावरी दुक्खितो अहु ॥९॥

---

१ अळकस्स—सी, मुळकस्स—स्या । २. ममं—म० ।

५—परायणवर्ग

५५-वत्थु गाथा

[इस वर्ग में बावारी ब्राह्मण के शिष्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं। कोशलदेशवासी बावारी ब्राह्मण दक्षिणपथ में गोदावरी के तट पर एक आश्रम बनाकर रहता था। एक दिन बावारी ने महायज्ञ किया। यज्ञ के बाद ही दूसरे ब्राह्मण ने आकर धन माँगा। बावारी ने कहा कि सब धन यज्ञ में खर्च हो गया है। तिस पर वह ब्राह्मण बावारी को शाप देकर चला गया। बावारी चिंता में पड़ गया। उस समय एक देवता ने बावारी को समझाया कि उक्त ब्राह्मण एक ढोंगी है। तब उसने उत्तरापथ में उत्पन्न भगवान् बुद्ध की चर्चा की। यह शुभ समाचार पाकर बावारी ने अपने सोलह शिष्यों को भगवान् के पास भेजा। वे पारी-पारी से भगवान् से प्रश्न करते गये और भगवान् उत्तर देते गये।]

मन्त्र पारङ्गत एक ब्राह्मण अकिञ्चनत्व की कामना करता हुआ कोशल-वासियों के रम्य नगर (श्रावस्ती) से दक्षिणापथ में गया ॥ १ ॥

अलक निकटस्थ अस्सक के राज्य के मध्य गोदावरी के तट पर (वह) उछ तथा फल से जीता था ॥ २ ॥

उसके पास एक बड़ा गाँव था और उससे उत्पन्न आमदनी से (उसने) महायज्ञ किया ॥ ३ ॥

महायज्ञ करके (उसने) फिर आश्रम में प्रवेश किया। उसके प्रविष्ट होने पर दूसरा ब्राह्मण वहाँ पहुँचा ॥ ४ ॥

घिसे पैर, कम्पित (शरीर), मैले दाँत, धूसरित सरवाले उसने (बावारी) के पास जाकर पाँच सौ (कर्षापण) माँगे ॥ ५ ॥

उसे देखकर बावारी ने आसन दिया और कुशल-मङ्गल पूछकर यह बात कही ॥ ६ ॥

जो दक्षिणा थी वह सब मैंने दान की। ब्राह्मण ! मेरी क्षमा करें, मेरे पास पाँच सौ (कर्षापण) नहीं हैं ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः—

यदि याचनेवाले मुझे तुम न दोगे तो सातवें दिन तुम्हारा सर सात टुकड़ों में फूट जाय ॥ ८ ॥

ढोंगी बनावटी क्रिया करके भय दिखाकर (कुछ) बोला। उसकी उस बात को सुनकर बावारी दुःखित हुआ ॥ ९ ॥

उस्सुस्सति अनाहारो, सोकसल्लसमप्पितो ।
अथो'पि एवं चित्तस्स, झाने न रमती मनो ॥१०॥

उत्रस्तं दुक्खितं दिस्वा, देवता अत्थकामिनी ।
बावरिं उपसंकम्म, इदं वचनमब्रवी ॥११॥

न सो मुद्धं पजानाति, कुहको सो धनत्थिको ।
मुद्धनि मुद्धपाते वा, ञाणं तस्स न विज्जति ॥१२॥

भोती चरहि जानाति, तं मे अक्खाहि पुच्छिता ।
मुद्धं मुद्धाधिपातं च, तं सुणोम वचो तव ॥१३॥

अहम्पेतं न जानामि, ञाणं म'त्थ न विज्जति ।
मुद्धं[1] मुद्धाधिपातो च[2], जिनानं हेतं[3] दस्सनं ॥१४॥

अथ को चरहि जानाति, अस्मिं पुथविमण्डले[4] ।
मुद्धं मुद्धाधिपातं च, तं मे अक्खाहि देवते ॥१५॥

पुरा कपिलवत्थुम्हा, निक्खन्तो लोकनायको ।
अपच्चो ओक्काकराजस्स, सक्यपुत्तो पभंकरो ॥१६॥

सो हि ब्राह्मण संबुद्धो, सब्बधम्मान पारगू ।
सब्बाभिञ्ञाबलप्पत्तो, सब्बधम्मेसु चक्खुमा ।
सब्बधम्मक्खयं[5] पत्तो, विमुत्तो उपधिसंखये ॥१७॥

बुद्धो सो भगवा लोके, धम्मं देसेति चक्खुमा ।
तं त्वं गन्त्वान पुच्छस्सु, सो ते तं ब्याकरिस्सति ॥१८॥

संबुद्धो'ति वचो सुत्वा, उदग्गो बावरी अहु ।
सोकस्स तनुको आसि, पीतिं च विपुलं लभि ॥१९॥

सो बावरी अत्तमनो उदग्गो, तं देवतं पुच्छति वेदजातो ।
कतमम्हि गामे निगमम्हि वा पुन, कतमम्हि वा जनपदे लोकनाथो ।
यत्थ गन्त्वा[6] नमस्सेमु[7], सम्बुद्धं दिपदुत्तमं[8] ॥२ ॥

सावत्थियं कोसलमन्दिरे जिनो पहूतपञ्ञो वरभूरिमेधसो ।
सो सक्यपुत्तो विधुरो अनासवो,मुद्धाधिपातस्स विदू नरासभो ॥२१॥

ततो आमन्तयी सिस्से, ब्राह्मणे मन्तपारगे ।
एथ माणवा अक्खिस्सं सुणोथ वचनं मम ॥२२॥

१-२. मुद्धनि मुद्धाधिपाते च—म०। मुद्धं मुद्धाधिपातञ्च—सी०। ३ हेतं—म०।
४ पथविमण्डले—म०। ५. सब्बधम्मक्खयप्पत्तो—म०। ६ गन्त्वान। ७. नमस्सेम—म०।
८ दिपदुत्तम—म०।

वह शोकरूपी तीर के लगने से अनाहारी हो सूखता था। इसलिए उसका मन ध्यान में नहीं लगता ॥१०॥

बावारी को त्रस्त, दुःखित देखकर एक हितैषी देवता ने उसके पास आकर यह बात कही ॥११॥

धनेच्छुक वह ढोंगी 'सर' नहीं जानता, सर और सर-भेदन का ज्ञान उसे नहीं है ॥१२॥

बावारीः—

यदि आप जानते हों तो, मेरे पूछने पर, सर और सर-भेदन के विषय में बतावें। (हम) आपकी बात सुनना चाहते हैं ॥१३॥

देवताः—

मैं भी इसे नहीं जानता, इसका ज्ञान मुझे नहीं है। सर और सर-भेदन बुद्धों का ही विषय है ॥१४॥

बावारीः—

तब इस पृथ्वी-मण्डल में कौन (इसे) जानता है? हे देव! सर और सर-भेदन के विषय में मुझे अवश्य बतावें ॥१५॥

देवताः—

(कुछ वर्ष हुए) **इक्ष्वाकुवंशज**, **शाक्यपुत्र**, प्रभाकारी लोकनायक **कपिलवस्तु** से निकले थे ॥१६॥

ब्राह्मण! वे सम्बुद्ध सभी बातों में पारङ्गत हैं, सर्वाभिज्ञाबल प्राप्त हैं, सभी बातों में चक्षुमान् हैं, सभी क्लेशों के क्षय को प्राप्त हैं और (सभी) अवस्थाओं से मुक्त हैं ॥१७॥

चक्षुमान् वे भगवान् बुद्ध संसार में धर्म का उपदेश करते हैं। उनके पास जाकर तुम प्रश्न करो, वे तुम्हें बतावेंगे ॥१८॥

'बुद्ध' यह शब्द सुनकर **बावारी** प्रमुदित हुआ। उसका शोक कम हुआ और (उसे) बड़ा आनन्द हुआ ॥१९॥

बावारीः—

किस गाँव में, निगम (=कस्बे) में या जनपद में लोकनायक हैं जहाँ जाकर (हम) मनुष्यों में श्रेष्ठ सम्बुद्ध को नमस्कार करें? ॥२०॥

देवताः—

कोशल नगर-श्रावस्ती में महाप्रज्ञ, उत्तमप्रज्ञ, भारमुक्त, वासना रहित, सर-भेदन के ज्ञाता, नर श्रेष्ठ वे **शाक्यपुत्र** जिन हैं ॥२१॥

तब (बावारी) ने मंत्रपारङ्गत शिष्यों को सम्बोधित किया, 'माणवक! आओ (कुछ) बताता हूँ, मेरी बात सुनो ॥२२॥

यस्सेसो दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो ।
स्वज्ज लोकम्हि उप्पन्नो, संबुद्धो इति विस्सुतो ।
खिप्पं गन्त्वान सावत्थिं, पस्सव्हो द्विपदुत्तमं ॥२३॥
कथं चरहि जानेमु, दिस्वा बुद्धो'ति ब्राह्मण ।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेमु तं मयं ॥२४॥
आगतानि हि मन्तेसु, महापुरिसलक्खणा ।
द्वत्तिंसा[1] च ब्याख्याता, समत्ता अनुपुब्बसो ॥२५॥
यस्सेते होन्ति गत्तेसु महापुरिसलक्खणा ।
द्वे'व[2] तस्स गतियो, ततिया हि न विज्जति ॥२६॥
सचे अगारं अज्झावसति[3], विजेय्य पठविं इमं ।
अदण्डेन असत्थेन, धम्मेनमनुसासति[4] ॥२७॥
सचे च सो पब्बजति, अगारा अनगारियं ।
विवत्तच्छदो[5] संबुद्धो, अरहा भवति अनुत्तरो ॥२८॥
जातिं गोत्तं च लक्खणं, मन्ते सिस्से पुनापरे ।
मुद्धं मुद्धाधिपातं च, मनसा येव पुच्छथ ॥२९॥
अनावरणदस्सावी यदि बुद्धो भविस्सति ।
मनसा पुच्छिते पञ्हे, वाचाय विस्सज्जेस्सति ॥३०॥
बावरिस्स वचो सुत्वा सिस्सा सोळस ब्राह्मणा ।
अजितो तिस्समेत्तेय्यो, पुण्णको अथ मेत्तगू ॥३१॥
धोतको उपसीवो च, नन्दो च अथ हेमको ।
तोदेय्यकप्पा दुभयो, जतुकण्णी च पण्डितो ॥३२॥
भद्रावुधो उदयो च, पोसालो चापि ब्राह्मणो ।
मोघराजा च मेधावी, पिङ्गियो च महा इसि ॥३३॥
पच्चेकगणिनो सब्बे सब्बलोकस्स विस्सुता ।
झायी झानरता धीरा, पुब्बवासनवासिता ॥३४॥
बावरिं अभिवादेत्वा, कत्वा च नं पदक्खिणं ।
जटाजिनधरा सब्बे, पक्कामुं उत्तरामुखा ॥३५॥
अळकस्स पतिट्ठानं पुरिमं[6] माहिस्सतिं तदा ।
उज्जेनिं चापि गोनद्धं, वेदिसं वनसव्हयं ॥३६॥
कोसम्बिं चापि साकेतं सावत्थिं च पुरुत्तमं ।
सेतब्यं कपिलवत्थुं कुसिनारं च मन्दिरं ॥३७॥
पावं च भोगनगरं वेसालिं मागधं पुरं ।
पासाणकं चेतियं च, रमणीयं मनोरमं ॥३८॥

---

१ द्वत्तिंसानि—म । २ द्वेव—म । दुवे च—सी । ३ अज्झावसति—म । ४ धम्मेन अनुसासति—सी । ५ विवटच्छदो—म । ६-६ पुरिमाहिस्सतिं—म० पुरं माहिस्सतिं—स्या ।

ससार में जिनका प्रादुर्भाव प्रायः दुर्लभ है, सम्बुद्ध नाम से विख्यात वे इस समय ससार में उत्पन्न है। शीघ्र **श्रावस्ती** जाकर नरश्रेष्ठ का दर्शन करो ॥२३॥

शिष्यः—

ब्राह्मण (उनको) देखकर कैसे जानें कि (ये) बुद्ध हैं ? न जाननेवाले हमें बतावें जिससे कि हम उनको जान सकें ॥ २४ ॥

बावारीः—

शास्त्रों में महापुरुष लक्षणों का उल्लेख आया है। क्रमशः पूरे बत्तीस लक्षणों का वर्णन है ॥ २५ ॥

जिसके शरीर में ये महापुरुष लक्षण हैं उसके लिए दो ही गतियाँ हैं, तीसरी नहीं ॥ २६ ॥

यदि (वह) घर में रहा तो, बिना दण्ड के, बिना शस्त्र के, इस पृथ्वी को जीतकर धर्म से शासन करेगा ॥ २७ ॥

यदि वह घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ तो तृष्णा रहित, श्रेष्ठ अर्हत् सम्बुद्ध होगा ॥ २८ ॥

जाति, गोत्र, लक्षण, शिष्यों और फिर सर तथा सर-भेदन के विषय में (अपने) मन में प्रश्न करो ॥ २९ ॥

यदि बुद्ध आवरण रहित द्रष्टा हों तो मन में पूछे प्रश्न का वचन से उत्तर देंगे ॥ ३० ॥

बावारी की बात को सुनकर **अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक, मेत्तगू, धोतक, उपसीव, नन्द, हेमक, तोदेय्य-कप्प** दोनों, तथा पण्डित **जतुकण्णि, भद्रावुध, उदय, पोसाल** ब्राह्मण, बुद्धिमान् **मोघराज** तथा महर्षि **पिङ्गिय,** प्रत्येक गणी, सारे ससार में विश्रुत, ध्यानी, ध्यानरत, पूर्व सस्कारों से सस्कृत ये सोलह ब्राह्मण शिष्य **बावारी** का अभिवादन कर, उसकी प्रदक्षिणा कर, जटा तथा मृगचर्म धारण कर उत्तर की ओर रवाना हुए ॥ ३१-३५ ॥

वे प्रथम **अलक** का **प्रतिष्ठान** और तब क्रमश' **उज्जैन, गोनद्ध, विदिशा, वनसह्वय, कोशाम्बी, साकेत,** श्रेष्ठ **श्रावस्ती** नगर, **सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली** (होते हुए) **मगध** राजधानी के रमणीय, मनोरम्य पाषाण चैत्य में पहुँचे ॥ ३६-३८ ॥

तसितो उदकं सीतं, महालाभं'व वाणिजो ।
छायं घम्माभितत्तो'व, तुरिता पब्बतमारुहुं ॥३९॥

भगवा च तम्हि समये, भिक्खुसंघपुरक्खतो ।
भिक्खूनं धम्मं देसेति, सीहो'व नदती वने ॥४०॥

अजितो अद्दस सम्बुद्धं, वीतरंसी'व[1] भानुमं ।
चन्दं यथा पन्नरसे, पारिपूरिं[2] उपागतं[3] ॥४१॥

अथ'स्स गत्ते दिस्वान, परिपूरं च ब्यंजनं ।
एकमन्तं ठितो हट्ठो, मनोपञ्हे अपुच्छथ ॥४२॥

आदिस्स जम्मनं[4] ब्रूहि, गोत्तं ब्रूहि सलक्खणं ।
मन्तेसु पारमिं ब्रूहि, कति वाचेति ब्राह्मणो ॥४३॥

वीसं वस्ससतं आयु, सो च गोत्तेन बावरि ।
तीणिस्स[5] लक्खणा गत्ते, तिण्णं वेदान पारगू ॥४४॥

लक्खणे इतिहासे च, सनिघण्डुसकेटुभे ।
पञ्चसतानि वाचेति, सधम्मे पारमिं गतो ॥४५॥

लक्खणानं पविचयं, बावरिस्स नरुत्तम ।
कङ्खच्छिद पकासेहि, मा नो कंखायितं अहू ॥४६॥

मुखं जिव्हाय छादेति, उण्णस्स भमुकन्तरे ।
कोसोहितं वत्थगुय्हं, एवं जानाहि माणव ॥४७॥

पुच्छं हि किंचि असुणन्तो, सुत्वा पञ्हे वियाकते[6] ।
विचिन्तेति जनो सब्बो, वेदजातो कतञ्जलि ॥४८॥

को नु देवो वा ब्रह्मा वा, इन्दो वा'पि सुजंपति ।
मनसा पुच्छिते पञ्हे, कमेतं पटिभासति ॥४९॥

मुद्धं मुद्धाधिपातं च, बावरी परिपुच्छति ।
तं ब्याकरोहि भगवा, कंखं विनय नो इसे ॥५०॥

अविज्जा मुद्धा ति जानाहि, विज्जा मुद्धाधिपातिनी ।
सद्धासतिसमाधीहि, छन्दविरियेन संयुता ॥५१॥

---

१. वीतरंसि व—म । २ ३ परिपूरिमुपागत—सी । ४ जप्पनं—म० । ५ तीणस्स—सी । ६. ब्याकते—म ।

जैसे पिपासित मनुष्य शीतल जल की, वणिक महा लाभ की और गर्मी से पीडित (जन) छाया की इच्छा करते है, वैसे ही वे शीघ्र पर्वत पर चढ गये ॥३९॥

उस समय भगवान् भिक्षुसघ के बीच भिक्षुओ को वैसे ही धर्मोपदेश देते थे जैसे कि सिह वन मे गर्जता है ॥४०॥

अजित ने (प्रखर) रश्मि रहित सूर्य तथा पूर्णिमा के दिन पूर्णता को प्राप्त चन्द्रमा जैसे सम्बुद्ध को देखा ॥४१॥

तब उनके शरीर मे परिपूर्ण लक्षणों को देखकर, हर्षित हो, एक ओर खड़े हो (वह) मन में प्रश्न करने लगा ॥४२॥

मेरे आचार्य की आयु बतावें, जाति बतावें, गोत्र बतावे, लक्षण बतावें, मन्त्रों की योग्यता बतावें (और बतावे कि) ब्राह्मण कितने (मन्त्रों) का पाठ करते हैं ॥४३॥

बुद्धः—

(उसकी) आयु सौ वर्ष की है, और वह गोत्र से बावारी है। उसके शरीर में तीन लक्षण हैं और वह त्रिवेद-पारगत है ॥४४॥

लक्षण (शास्त्र) में, इतिहास में तथा निघटु सहित कैटुभ में पॉच सौ (मन्त्रों) का पाठ करता है और वह अपने धर्म में पारङ्गत है ॥४५॥

अजित·—

हे नरश्रेष्ठ ! तृष्णा का छेदन करनेवाले (आप) बावारी के लक्षणों का वर्णन करें (जिससे कि) हमारे लिए कोई शका न रहे ॥४६॥

बुद्धः—

वह जीभ से मुख को ढक देता है, भौहों के बीच ऊर्ण रोम है, लिंग कोष में छिपा है—माणवक ! इस प्रकार जानो ॥४७॥

किसी प्रश्न को बिना सुने ही प्रश्न का उत्तर देते सुनकर सभी लोग प्रमुदित हो, अञ्जलिबद्ध हो सोचने लगे ॥४८॥

किस देव, ब्रह्म, इन्द्र या सुजपति द्वारा मन में किये गये प्रश्नों के उत्तर ये देते हैं ? ॥४९॥

सर और सरभेदन (के विषय में) बावारी पूछता है। भगवान् उसका उत्तर दें, ऋषि हमारी शका दूर करें ॥५०॥

बुद्धः—

अविद्या को सर जानो और श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छन्द तथा वीर्य से युक्त विद्या को सरभेदन जानो ॥५१॥

ततो वेदेन महता, संधम्भित्वान माणवो ।
एकंसं अजिनं कत्वा, पादेसु सिरसा पति ॥५२॥

बावरी ब्राह्मणो भोतो, सह सिस्सेहि मारिस ।
उदग्गचित्तो सुमनो, पादे वन्दति चक्खुम ॥५३॥

सुखितो बावरी होतु, सह सिस्सेहि ब्राह्मणो ।
त्वं चापि सुखितो होहि, चिरं जीवाहि माणव ॥५४॥

बावरिस्स च तुय्हं वा, सब्बेसं सब्बसंसयं ।
कतावकासा पुच्छव्हो, यं किञ्चि मनसिच्छथ ॥५५॥

संबुद्धेन कतोकासो, निसीदित्वान पञ्जलि ।
अजितो पठमं पञ्हं, तत्थ पुच्छि तथागतं ॥५६॥

वत्थुगाथा निट्ठिता ।

५६—अजितमाणवपुच्छा

केन'स्सु निवुतो लोको (इच्चायस्मा अजितो), केन'स्सु नप्पकासति ।
किस्साभिलेपनं ब्रूसि किं सु तस्स महब्भयं ॥१॥

अविज्जाय निवुतो लोको (अजिताति भगवा) वेविच्छा पमादा नप्पकासति ।
जप्पाभिलेपनं ब्रूमि, दुक्खं अस्स महब्भयं ॥२॥

सवन्ति सब्बधी सोता (इच्चायस्मा अजितो), सोतानं किं निवारणं ।
सोतानं संवरं ब्रूहि, केन सोता पिधिय्यरे[1] ॥३॥

यानि सोतानि लोकस्मिं (अजिताति भगवा), सति तेसं निवारणं ।
सोतानं संवरं ब्रूमि पञ्ञायेत पिधिय्यरे ॥४॥

पञ्ञा चेव सती च[2] (इच्चायस्मा अजितो) नामरूपं च मारिस ।
एतं मे पुट्ठो पब्रूहि, कत्थेतं उपरुज्झति ॥५॥

यं एतं पञ्हं अपुच्छि, अजित तं वदामि ते ।
यत्थ नामं च रूपं च असेसं उपरुज्झति ।
विञ्ञाणस्स निरोधेन एत्थेतं उपरुज्झति ॥६॥

---

१. पिधिय्यरे—बम० पिधीयरे—स्या० सी० । २-२ सति चाव—म०; सती चेव—स्या० ।

तब माणवक बड़े आनन्द से (अपने को) सभालकर, एक कन्धे पर मृगचर्म रखकर (भगवान् के) पादों में नतमस्तक हो कहने लगा ॥ ५२ ॥

हे महान्! शिष्य सहित बावारी ब्राह्मण हर्षित हो, प्रसन्न हो चक्षुमान् आप के चरणों की वन्दना करता है ॥ ५३ ॥

बुद्ध :—

शिष्य सहित बावारी ब्राह्मण सुखी हो! माणवक! तुम भी सुखी हो, चिरजीवी हो ॥ ५४ ॥

बावारी तथा तुम सबों की सभी शंकाओं के विषय में पूछने के लिए अवकाश दिया जाता है। जो चाहो सो पूछो ॥ ५५ ॥

सम्बुद्धके अवकाश देने पर बैठकर अञ्जलि बद्ध हो अजित ने वहाँ तथागत से पहला प्रश्न किया ॥ ५६ ॥

वत्थुगाथा समाप्त।

५६—अजितमाणव-प्रश्न

अजित :—

ससार किससे आच्छादित है? किस कारण वह अप्रकाशित है? मुझे इसका मल बतावें, इसका महा भय क्या है? ॥ १ ॥

बुद्ध :—

ससार अविद्या से आच्छादित है, लोभ तथा प्रमाद के कारण वह अप्रकाशित है। तृष्णा को मैं मल बताता हूँ, दु ख इसका महा भय है ॥ २ ॥

अजित :—

सर्वत्र (तृष्णा की) धाराएँ बहती हैं। धाराओं का क्या निवारण है? धाराओ के आवरण को बतावें। धाराओं को कैसे बन्द किया जाता है ॥ ३ ॥

बुद्ध :—

ससार में जितनी धाराएँ है स्मृति उनका निवारण है, (इसे) धाराओं का आवरण बताता हूँ। प्रज्ञा से ये बन्द की जाती है ॥ ४ ॥

अजित :—

हे महान्! प्रज्ञा, स्मृति और नामरूप—इनका अन्त कहाँ होता है! पूछने पर मुझे यह बतावें ॥ ५ ॥

बुद्ध :—

अजित जो प्रश्न (तुम ने) किया है, मैं तुम्हें उसे बताता हूँ। जहाँ विज्ञानका निरोध होता है वहाँ नामरूप का नि शेष अन्त होता है ॥ ६ ॥

ये च संखतधम्मासे, ये च सेखा पुथू इध ।
तेसं मे निपको इरियं, पुट्ठो पब्रूहि मारिस ॥७॥
कामेसु नाभिगिज्झेय्य, मनसा'नाविलो सिया ।
कुसलो सब्बधम्मानं सतो भिक्खु परिब्बजे'ति ॥८॥

अजितमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

५७—तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा

को'ध सन्तुसितो लोके (इच्चायस्मा तिस्सो मेत्तेय्यो)
कस्स नो सन्ति इञ्जिता ।
को उभ'न्तमभिञ्ञाय, मज्झे मन्ता न लिप्पति ।
कं ब्रूसि महापुरिसो'ति को इध सिब्बनिमच्चगा ॥१॥
कामेसु ब्रह्मचरियवा (मेत्तेय्याति भगवा), वीततण्हो सदा सतो ।
संखाय निब्बुतो भिक्खु, तस्स नो सन्ति इञ्जिता ॥२॥
सो उभन्तमभिञ्ञाय, मज्झे मन्ता न लिप्पति ।
तं ब्रूमि महापुरिसो'ति, सो इध सिब्बनिमच्चगा'ति ॥३॥

तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

५८—पुण्णकमाणवपुच्छा

अनेजं मूलदस्साविं (इच्चायस्मा पुण्णको), अत्थि[1] पञ्हेन आगमं ।
किं निस्सिता इसयो मनुजा, खत्तिया ब्राह्मणा देवतानं ।
यञ्ञमकप्पयिंसु पुथू इध लोके पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मेतं ॥१॥
ये केचि'मे इसयो मनुजा (पुण्णकाति भगवा), खत्तिया ब्राह्मणा
देवतानं यञ्ञमकप्पयिंसु पुथू इध लोके आसिंसमाना[2] पुण्णक
इत्थत्तं[3] जरं सिता यञ्ञमकप्पयिंसु ॥२॥
ये केचि'मे इसयो मनुजा (इच्चायस्मा पुण्णको)
खत्तिया ब्राह्मणा देवतानं । यञ्ञमकप्पयिंसु पुथू'ध लोके,
कच्चि सु ते भगवा यञ्ञपथे अप्पमत्ता
अतारुं जातिं च जरं च मारिस ।
पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥३॥

१. अत्थी—स्या । २. आसीसमाना—म० । ३ इत्थत्तं—म ।

अजित :—

जो सभी बातों को जान गये हैं, जो शैक्ष हैं, और जो साधारण जन हैं, हे महान्! पूछने पर, ज्ञानी आप उनकी चर्या को बतावें ॥ ७ ॥

बुद्ध :—

कामों की लालसा न करे, मन को शान्त रखे। स्मृतिमान् भिक्षु सभी बातों में कुशल हो विचरण करे ॥ ८ ॥

अजितमाणव-प्रश्न समाप्त।

५७—तिस्समेत्तेय्यमाणव-प्रश्न।

तिस्समेत्तेय्यः—इस संसार में कौन सन्तुष्ट है? किसे चञ्चलताएँ नहीं हैं? कौन ज्ञानी दोनों अन्तों को जानकर बीचमें लिप्त नहीं होता? महापुरुष किसे कहते हैं? यहाँ कौन तृष्णाके परे है? ॥ १ ॥

बुद्धः—

जो कामों को त्याग ब्रह्मचारी है, वीततृष्ण है, स्मृतिमान् है और जो भिक्षु ज्ञान द्वारा मुक्त है, उसे चञ्चलताएँ नहीं हैं ॥ २ ॥

वह ज्ञानी दोनों अन्तों को जानकर बीचमें लिप्त नहीं होता। मैं उसे महापुरुष बताता हूँ जो कि तृष्णाके परे हो गया है ॥ ३ ॥

तिस्समेत्तेय्यमाणव-प्रश्न समाप्त।

५८—पुण्णकमाणव-प्रश्न

पुण्णकः—

तृष्णा रहित, (पाप के) मूल को देखनेवाले आप के पास प्रश्न करने आया हूँ। किस कारण ऋषियों, मनुष्यो, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम इस संसार में बहुत यज्ञ किये थे। भगवान्! आप से यह पूछता हूँ, आप इसे बतावें ॥ १ ॥

बुद्धः—

पुण्णक! जरा को प्राप्त होने पर जीवन की कामना करते हुए इस संसार में ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत-से यज्ञ किये थे ॥ २ ॥

पुण्णकः—

इस संसार में जिन ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत यज्ञ किये थे, भगवान्! क्या वे यज्ञपथमें अप्रमत्त हो जन्म और जराके पार हो गये? हे महान्! मैं यह पूछता हूँ, भगवान्! आप इसे बतावें ॥ ३ ॥

आसिसन्ति थोमयन्ति अभिजप्पन्ति जुहन्ति (पुण्णकाति भगवा),
कामाभिजप्पन्ति पटिच्च लाभं ।
ते याजयोगा भवरागरत्ता, नातरिंसु जातिजरं'ति ब्रूमि ॥४॥
ते चे नातरिंसु याजयोगा (इच्चायस्मा पुण्णको)
यञ्जेहि जातिं च जरं च मारिस ।
अथ को चरहि देवमनुस्सलोके, अतारि जातिं च जरं च मारिस ।
पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥५॥
संखाय लोकस्मिं परोवरानि (पुण्णकाति भगवा),
यस्सिञ्जितं नत्थि कुहिञ्चि लोके ।
सन्तो विधूमो अनिघो निरासो, अतारि सो जातिजरं'ति ब्रूमी ति ॥६॥
पुण्णकमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

५९—मेत्तगूमाणवपुच्छा

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं (इच्चायस्मा मेत्तगू),
मञ्ञामि तं वेदगुं भावितत्तं ।
कुतो नु दुक्खा समुदागता इमे ये केचि लोकस्मि अनेकरूपा ॥१॥
दुक्खस्स[1] वे मं पभवं अपुच्छसि (मेत्तगूति भगवा)
तं ते पवक्खामि यथा पजानं ।
उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा ये केचि लोकस्मिं अनेकरूपा ॥२॥
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्दो ।
तस्मा हि जानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सी ॥३॥
यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो अञ्ञं तं पुच्छामि[2] तदिंघ ब्रूहि ।
कथं नु धीरा वितरन्ति ओघं जातिजरं सोकपरिद्दवं च ।
तं मे मुनी साधु वियाकरोहि तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥४॥

---

१ दुक्खस्स—सी० । २ पुच्छाम—म ।

बुद्धः—

हे पुण्णक ! लाभ के कारण (वे देवताओं के) गुण गाते हैं, प्रशंसा करते हैं, चर्चा करते हैं, यज्ञ करते हैं और कामों की इच्छा करते हैं। मैं बताता हूँ कि यज्ञ में आसक्त, भवतृष्णा में रत वे जन्म तथा जरा के पार नहीं गये हैं ॥ ४ ॥

पुण्णकः—

हे महान् ! दान में रत लोग यज्ञों द्वारा जन्म तथा जरा के पार नहीं गये तो फिर, महान् ! देव-मनुष्य लोक में कौन जन्म तथा जरा के पार गया है ? मैं यह पूछता हूँ, भगवान् ! मुझे यह बतावें ॥ ५ ॥

बुद्धः—

जो संसार के आर-पार को जान गया है, जिसमें संसार के प्रति कहीं भी तृष्णा नहीं है, शान्त, वासना रहित, पाप रहित, आसक्ति रहित वह जन्म तथा जरा के पार गया है—ऐसा मैं बताता हूँ ॥ ६ ॥

पुण्णकमाणव-प्रश्न समाप्त ।

५९—मेत्तगूमाणव-प्रश्न

मेत्तगूः—

भगवान् ! आप से पूछता हूँ, मुझे बतावें। (मैं) आप को ज्ञानी तथा संयमी मानता हूँ। संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं ये कहाँ से उत्पन्न हुए हैं ? ॥ १ ॥

बुद्धः—

मेत्तगू ! तुम मुझसे दुःख का कारण पूछते हो, ज्ञान के अनुसार मैं तुम्हें बताता हूँ। संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं, वे स्थितियों से उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

जो अविद्या के कारण स्थितियों को उत्पन्न करता है, वह मूर्ख बारम्बार दुःख को प्राप्त होता है। इसलिए (इसे) दुःख की उत्पत्ति और प्रभव जानकर ज्ञानी स्थितियों को उत्पन्न न करें ॥ ३ ॥

मेत्तगूः—

जो कुछ मैंने पूछा है सो आपने मुझे बताया है। मैं आप से दूसरी (बात) पूछता हूँ, कृपया बतावें। जन्म, जरा, शोक तथा विलाप रूपी बाढ को कैसे पार करते हैं ? मुनि ! इस बात को जैसे आप जानते हैं वैसे सम्यक् रूप से मुझे बतावें ॥ ४ ॥

कित्तयिस्सामि ते धम्मं (मेत्तगूति भगवा), दिट्ठे[1] धम्मे अनीतिहं ।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥५॥
तं चाहं अभिनन्दामि महेसी धम्ममुत्तमं ।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥६॥
यं किञ्चि संपजानासि (मेत्तगूति भगवा),
उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।
एतेसु नन्दिं च निवेसनं च, पनुज्ज विञ्ञाणं भवे न तिट्ठे ॥७॥
एवं विहारी सतो अप्पमत्तो, भिक्खु चरं हित्वा ममायितानि ।
जातिजरं सोकपरिद्दवं च, इधेव विद्वा पजहेय्य दुक्खं ॥८॥
एताभिनन्दामि वचो महेसिनो, सुकित्तितं गोतम'नूपधीकं ।
अद्धा हि भगवा पहासि दुक्खं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥९॥
ते चापि नून[1] पजहेय्यु[1] दुक्खं, ये त्वं मुनि अट्ठितं ओवदेय्य ।
तं तं नमस्सामि समेच्च नाग,
अप्पेव मं भगवा अट्ठितं ओवदेय्य ॥१०॥
यं ब्राह्मणं वेदगुं आभिजञ्ञा, अकिञ्चनं कामभवे असत्तं ।
अद्धा हि सो ओघमिमं अतारि, तिण्णो च पारं अखिलो अकंखो ॥११॥
विद्वा च सो[४] वेदगू नरो इध, भवाभवे संगमिमं विसज्ज ।
सो वीततण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जातिजरं'ति ब्रूमि ति ॥१२॥
मेत्तगूमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

६०—धोतकमाणवपुच्छा

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं (इच्चायस्मा धोतको),
वाचाभिकंखामि महेसि तुय्हं ।
तव सुत्वान निग्घोसं, सिक्खे निब्बानमत्तनो ॥१॥

---

१ दिट्ठि—म । २-३ नूनप्पजहेय्य—म । ४ वी—म सी ।

बुद्ध:—

मेत्तगू! मैं तुम्हें वह धर्म बताऊँगा जिसे इसी जन्म में साक्षात् कर, जानकर स्मृतिमान् हो विचरनेवाला ससार में तृष्णा को पार करता है ॥५॥

मेत्तगू:—

महर्षि! मैं उस उत्तम धर्म का अभिनन्दन करता हूँ जिसे जानकर स्मृतिमान् हो विचरनेवाला ससार में तृष्णा को पार करता है ॥६॥

बुद्ध:—

ऊपर, नीचे, तिर्यक् तथा बीच में जो भी जानते हो उनमें तृष्णा तथा आसक्ति को त्याग कर मन को भव में न लगने दे ॥७॥

इस प्रकार विहरनेवाला, स्मृतिमान्, अप्रमत्त भिक्षु कामनाओं, जन्म, जरा, शोक तथा विलाप को छोडकर ज्ञानी हो यहीं दु:ख को दूर करे ॥८॥

मेत्तगू:—

महर्षि की इस बात का अभिनन्दन करता हूँ। गौतम! (आप द्वारा) निर्वाण सुन्दर रूप से वर्णित है। अवश्य भगवान् ने दु:ख को दूर किया है, क्योंकि आपने इस धर्म को जान लिया है ॥९॥

वे भी अवश्य दु:ख दूर करेंगे जिन्हें आप मुनि निरन्तर उपदेश देते है। हे महापुरुष! पास आकर मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवान्! कृपया मुझे निरन्तर उपदेश दें ॥१०॥

बुद्ध:—

जिस ब्राह्मण को मैं ज्ञानी, अकिञ्चन और कामभव में अनासक्त समझता हूँ, वह अवश्य इस बाढ़ को तर गया है, (इसके) पार गया है और वह मल रहित है, शका रहित है ॥११॥

विज्ञ, ज्ञानी वह मनुष्य पुनर्जन्म की आसक्ति को छोडकर, तृष्णा रहित हो, पाप रहित हो, कामना रहित हो जन्म तथा जरा के परे हो गया है—ऐसा मैं कहता हूँ ॥१२॥

मेत्तगूमाणव-प्रश्न समाप्त।

६०—धोतकमाणव-प्रश्न

धोतक:—

भगवान्! आप से मैं यह बात पूछता हूँ, मुझे बतावें। महर्षि! आप की बात की आकाक्षा करता हूँ। आपके उपदेश को सुनकर (मनुष्य) अपनी विमुक्ति सीखे ॥१॥

तेन हातप्पं करोहि (धोतकाति भगवा), इधेव निपको सतो ।
इतो सुत्वान निग्घोसं, सिक्खे निब्बानमत्तनो ॥२॥
पस्सामहं देवमनुस्सलोके, अकिञ्चनं ब्राह्मणं इरियमानं ।
तं तं नमस्सामि समन्तचक्खु पमुञ्च मं सक्क कथंकथाहि ॥३॥
नाहं गमिस्सामि[1] पमोचनाय कथंकथिं धोतक कञ्चि लोके ।
धम्मं च सेट्ठं आजानमानो[2], एवं तुवं ओघमिमं तरेसि ॥४॥
अनुसास ब्रह्मे करुणायमानो, विवेकधम्मं यमहं विजञ्ञं ।
यथाहं आकासो'व अब्यापज्जमानो, इधेव सन्तो असितो चरेय्यं ॥५॥
कित्तयिस्सामि ते सन्तिं (धोतकाति भगवा), दिट्ठे धम्मे अनीतिहं ।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥६॥
तं चाहं अभिनन्दामि महेसि[3] सन्तिमुत्तमं ।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥७॥
यं किञ्चि संपजानासि (धोतकाति भगवा), उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।
एतं विदित्वा संगो'ति लोके, भवाभवाय मा'कासि तण्हं'ति ॥८॥

धोतकमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

६१—उपसीवमाणवपुच्छा

एको अहं सक्क महन्तमोघं (इच्चायस्मा उपसीवो),
अनिस्सितो नो विसहामि तारितुं ।
आरम्मणं ब्रूहि समन्तचक्खु, यं निस्सितो ओघमिमं तरेय्यं ॥१॥
आकिञ्चञ्ञं पेक्खमानो सतीमा (उपसीवाति भगवा),
नत्थीति निस्साय तरस्सु ओघं ।
कामे पहाय विरतो कथाहि, तण्हक्खयं रत्तमहाभिपस्स[4] ॥२॥

---

१ छमिस्सामि—म ; समिस्सामि—स्या । २ आजानमानो—म । ३ महेसि ।
४ नत्तमहाभिपस्स—म सी ।

बुद्धः—

प्रज्ञावान्, स्मृतिमान् यही प्रयत्न करे। मेरा उपदेश सुनकर अपनी मुक्ति को सीखे ॥ २ ॥

धोतकः—

मैं देव-मनुष्य लोक में विचरनेवाले अकिञ्चन ब्राह्मण को देखता हूँ। हे सर्वदर्शी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे श्रेष्ठ! मुझे सशयों से मुक्त कर दें ॥ ३ ॥

बुद्धः—

धोतक! मैं ससार में किसी सशयी को मुक्त करने नहीं जाऊँगा। जब तुम श्रेष्ठ धर्म को जानोगे तो इस बाढ के पार होगे ॥ ४ ॥

धोतकः—

हे श्रेष्ठ! अनुकम्पा पूर्वक मुझे उपदेश करें जिससे कि मैं विवेकी धर्म को जान लूँ और आकाश की तरह निर्मल हो यहीं शान्त हो, अनासक्त हो विचरण करूँ ॥ ५ ॥

बुद्धः—

मैं तुम्हें शान्ति बताऊँगा जिसे इसी जन्म में साक्षात् कर, जान कर, स्मृतिमान् हो विचरण करोगे और ससार में तृष्णा को पार करोगे ॥ ६ ॥

धोतकः—

महर्षि! मैं उस उत्तम शान्ति को भी अभिवादन करता हूँ जिसे जानकर (मनुष्य) स्मृतिमान हो विचरण करे और ससार में तृष्णा को पार करे ॥ ७ ॥

बुद्धः—

ऊपर, नीचे, तिरछा तथा बीच में जो कुछ भी जानते हो, इसे ससार में आसक्ति जानकर पुनर्जन्म के लिए तृष्णा न करे ॥ ८ ॥

धोतकमाणव-प्रश्न समाप्त।

६१—उपसीवमाणव-प्रश्न

उपसीव :—

हे श्रेष्ठ! मैं अकेला, विना सहायता के, इस विशाल प्रवाह को पार नहीं कर सकता। सर्वदर्शी! कोई आलम्बन बतावें जिसकी सहायता से मैं इस प्रवाह को पार करूँ ॥ १ ॥

बुद्ध :—

अकिञ्चनत्व को देखते हुए, स्मृतिमान् हो 'शून्यता' की सहायता से प्रवाह को पार करे। कामों को त्याग कर, सशयों से विरत हो, रात दिन तृष्णा-क्षय पर मनन करे ॥ २ ॥

सब्बेसु कामेसु यो वीतरागो (इच्चायस्मा उपसीवो),
आकिञ्चञ्ञं निस्सितो हित्वमञ्ञं[1] ।
सञ्ञाविमोक्खे परमे विमुत्तो[2],
तिट्ठे नु सो तत्थ अनानुयायी[3] ॥३॥
सब्बेसु कामेसु यो वीतरागो (उपसीवाति भगवा)
आकिञ्चञ्ञं निस्सितो हित्वमञ्ञं
सञ्ञाविमोक्खे परमे विमुत्तो, तिट्ठेय्य सो तत्थ अनानुयायी ॥४॥
तिट्ठे चे सो तत्थ अनानुयायी, पूगं'पि वस्सानं समन्तचक्खु ।
तत्थेव सो सीति सिया विमुत्तो, चवेथ विञ्ञाणं तथाविधस्स ॥५॥
अच्ची यथा वातवेगेन खित्ता[4] (उपसीवाति भगवा),
अत्थं पलेति न उपेति संखं ।
एवं मुनी नामकाया विमुत्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखं ॥६॥
अत्थं गतो सो उदवा सो नत्थि उदाहु वे सस्सतिया अरोगो ।
तं मे मुनि साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥७॥
अत्थं गतस्स न पमाणमत्थि (उपसीवाति भगवा),
येन नं वज्जु[5] तं तस्स नत्थि ।
सब्बेसु धम्मेसु समूहतेसु, समूहता वादपथा'पि सब्बे'ति ॥८॥

उपसीवमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

६२—नन्दमाणवपुच्छा

सन्ति लोके मुनयो[6] (इच्चायस्मा नन्दो), जना वदन्ति तयिदं कथंसु ।
ञाणूपपन्नं नो मुनिं वदन्ति उदाहु वे जीवितेनूपपन्नं ॥१॥
न दिट्ठिया न सुतिया न ञाणेन मुनीध नन्द कुसला वदन्ति ।
विसेनिकत्वा अनिघा[7] निरासा चरन्ति ये ते मुनयो'ति ब्रूमि ॥२॥

---

१. हित्वा मञ्ञं—म । २. विमुत्तो—म० । ३. अनानुयायी—स्या० कं० । ४. ठिता—सी० म० ठितं—स्या । ५. वग्गु—म० । ६. मुनि नो—स्या० कं० । ७. अनीघा—म ।

उपसीव :—

जो सभी कामों से विरत है, अकिञ्चनत्व द्वारा और सब को त्याग दिया है, क्या धारणा रहित उत्तम रूप से विमुक्त वह आगे बढ़े बिना वहाँ स्थिर रहेगा ? ॥ ३ ॥

बुद्ध :—

जो सभी कामों से विरत है, अकिञ्चनत्व द्वारा और सब को त्याग दिया है, धारणा रहित, उत्तम रूप से विमुक्त वह आगे बढ़े बिना वहाँ स्थिर रहेगा॥४॥

उपसीव :—

हे सर्वदर्शी ! आगे बढ़े बिना बहुत वर्षों तक स्थिर हो शान्त और विमुक्त होगा तो उसका विज्ञान क्या होगा ? ॥ ५ ॥

बुद्ध :—

जिस प्रकार हवा की तेजी से बुझी हुई अग्नि-शिखा अस्त को प्राप्त होती है, फिर दिखाई नहीं देती, इसी प्रकार नामकाय से विमुक्त मुनि अस्त को प्राप्त होता है, फिर दिखाई नहीं देता ॥ ६ ॥

उपसीव :—

अस्त को प्राप्त वह अविद्यमान् हो गया है अथवा अपरिवर्तनशील हो शाश्वत हो गया है ? हे मुनि ! यह मुझे अच्छी तरह बतावें, यह बात आप को विदित है ॥ ७ ॥

बुद्ध :—

जो अस्त को प्राप्त होता है उसका परिमाण नहीं होता जिससे कि उस के विषय में चर्चा हो सके। सभी धर्मों के शान्त होने पर सभी वादपथ भी शान्त हो जाते हैं ॥८॥

उपसीवमाणव-प्रश्न समाप्त।

६२—नन्दमाणव-प्रश्न

नन्द :—

लोग कहते हैं कि संसार में मुनि है, सो किस प्रकार ? ज्ञान के कारण (किसी को) मुनि कहते हैं अथवा चर्य्या के कारण ? ॥१॥

बुद्ध :—

नन्द ! पण्डित जन न दृष्टि के कारण, न श्रुति के कारण और न ज्ञान के कारण यहाँ (किसी को) मुनि बताते हैं। जो शोक रहित हों, पाप रहित हों, तृष्णा रहित हों विचरते हैं मैं उन्हीं को मुनि बताता हूँ ॥२॥

ये केचि'मे समणब्राह्मणासे (इच्चायस्मा नन्दो),
विट्ठस्सुतेना'पि वदन्ति सुद्धिं ।
सीलब्बतेनापि वदन्ति सुद्धिं, अनेकरूपेन वदन्ति सुद्धिं ।
कच्चिसु[1] ते भगवा तत्थ यता चरन्ता, अतारुं जातिं च जरं च मारिस ।
पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥३॥
ये केचिमे समणब्राह्मणासे (नन्दाति भगवा), दिट्ठस्सुतेनापि वदन्ति'सुद्धिं ।
सीलब्बतेनापि वदन्ति सुद्धिं, अनेकरूपेन वदन्ति सुद्धिं ।
किञ्चापि ते तत्थ यता चरन्ति, नातरिंसु जातिजरं'ति ब्रूमि ॥४॥
ये केचिमे समणब्राह्मणासे (इच्चायस्मा नन्दो),
दिट्ठस्सुतेनापि वदन्ति सुद्धिं ।
सीलब्बतेनापि वदन्ति सुद्धिं, अनेकरूपेन वदन्ति सुद्धिं ।
सचे मुनि ब्रूसि अनोघतिण्णे, अथ को चरहि देवमनुस्सलोके ।
अतारि जातिं च जरं च मारिस, पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥५॥
नाहं सब्बे समणब्राह्मणासे (नन्दाति भगवा), जातिजराय
निवुता'ति ब्रूमि ।
येसीध दिट्ठंव सुतं मुतं वा, सीलब्बतं वापि पहाय सब्बं ।
अनेकरूपं'पि पहाय सब्बं तण्हं परिञ्ञाय अनासवासे ।
ते वे[2] नरा ओघतिण्णाति ब्रूमि ॥६॥
एताभिनन्दामि वचो महेसिना, सुकित्तितं गोतम'नूपधीकं ।
येसीध दिट्ठंव[3] पे अनासवासे ।
अहंपि ते ओघतिण्णाति ब्रूमीति ॥७॥

नन्दमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

६३—हेमकमाणवपुच्छा

ये मे पुब्बे वियाकंसु (इच्चायस्मा हेमको)
हुरं गोतमसासना 'इच्चासि इति भविस्सति' ।
सब्बं तं इतिहीतिहं सब्बं तं तक्कवड्ढनं ।
नाहं तत्थ अभिरमिं[4] ॥१॥
त्वं च मे धम्ममक्खाहि, तण्हानिग्घातनं मुनि ।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥२॥

---

१ कच्चिस्सु—म । २ दिट्ठं सुतेनापि—सी । ३ वे—म । ४ अभि-रमि—सी ।

नन्द:—

जितने भी श्रमणब्राह्मण हैं वे दृष्टि और श्रुति से भी शुद्धि बताते हैं, शील व्रत से भी शुद्धि बताते हैं और अनेक रूप से शुद्धि बताते हैं। हे भगवान्! हे महान्! क्या इस प्रकार के आचरणवाले वे जन्म तथा जरा को पार कर गये हैं? भगवान्! मैं आप से पूछता हूँ, यह बात मुझे बतावें ॥३॥

बुद्ध:—

जितने भी श्रमणब्राह्मण हैं जो कि दृष्टि और श्रुति से भी शुद्धि बताते हैं, शील व्रत से भी शुद्धि बताते हैं और अनेक रूप से शुद्धि बताते हैं, वैसा आचरण करने पर भी वे जन्म तथा जरा के पार नहीं गये—ऐसा मैं बताता हूँ ॥४॥

नन्द:—

जितने भी श्रमणब्राह्मण हैं वे दृष्टि और श्रुति से भी शुद्धि बताते हैं, शील व्रत से भी शुद्धि बताते हैं और अनेक रूप से शुद्धि बताते हैं ॥५॥

नन्द:—

मैं सभी श्रमणब्राह्मणों को जन्म और जरा से आच्छादित नहीं बताता। जो यहाँ सब दृष्टि, श्रुति, धारणा, शील-व्रत को दूर कर, अनेक प्रकार के और सबको दूर कर, तृष्णा को जानकर वासना रहित हो गये हैं, वे मनुष्य अवश्य प्रवाह के परे हो गये हैं—ऐसा मैं बताता हूँ ॥६॥

नन्द:—

महर्षि की इस बात का अभिनन्दन करता हूँ। गौतम ने मुक्ति को अच्छी तरह बताया है। जो यहाँ सब दृष्टि, श्रुति, धारणा, शीलव्रत को दूरकर, अनेक प्रकार के और सबको दूर कर, तृष्णा को जान कर वासना रहित हो गये हैं, वे मनुष्य अवश्य प्रवाह के परे हो गये हैं—ऐसा मैं भी बताता हूँ ॥७॥

नन्दमाणव-प्रश्न समाप्त

६३—हेमकमाणव-प्रश्न

हेमक:—

गौतम के अनुशासन के पहले जो लोग मुझे शिक्षा देते थे, वे बताते थे कि 'ऐसा है और ऐसा होगा।' वह सब सुनी सुनाई बात थी, वह सब संशय को बढानेवाली थी ॥१॥

मेरा मन उसमें नहीं लगता था। हे मुनि! आप मुझे तृष्णा नाश करने का धर्म बतावें जिसे जान कर स्मृतिमान् हो विचरनेवाला संसार में तृष्णा को पार करे ॥२॥

इध दिट्ठसुतमुतविञ्ञातेसु, पियरूपेसु हेमक।
छन्दरागविनोदनं, निब्बानपदमच्चुतं ॥३॥
एतदञ्ञाय ये सता, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
उपसन्ता च ते सदा, तिण्णा लोके विसत्तिकं ॥४॥

हेमकमाणवपुच्छा निट्ठिता।

६४—तोदेय्यमाणवपुच्छा

यस्मिं कामा न वसन्ति (इच्चायस्मा तोदेय्यो), तण्हा यस्स न विज्जति।
कथंकथा च यो तिण्णो, विमोक्खो तस्स कीदिसो ॥१॥
यस्मिं कामा न वसन्ति (तोदेय्याति भगवा), तण्हा यस्स न विज्जति।
कथंकथा च यो तिण्णो, विमोक्खो तस्स नापरो ॥२॥
निरासयो सो उद आससानो, पञ्ञाणवा सो उद पञ्ञकप्पी।
मुनिं अहं सक्क यथा विजञ्ञं, तं मे वियाचिक्ख समन्तचक्खु ॥३॥
निरासयो[1] सो न सो आससानो, पञ्ञाणवा सो न च पञ्ञकप्पी।
एवंपि तोदेय्य मुनिं विजान, अकिञ्चनं कामभवे असत्तंति ॥४॥

तोदेय्यमाणवपुच्छा निट्ठिता

६५—कप्पमाणवपुच्छा

मज्झे सरस्मिं तिट्ठतं (इच्चायस्मा कप्पो), ओघे जाते महब्भये।
जरामच्चुपरेतानं दीपं पब्रूहि मारिस।
त्वं च मे दीपमक्खाहि, यथयिदं[2] नापरं सिया ॥१॥
मज्झे सरस्मिं तिट्ठतं (कप्पाति भगवा), ओघे जाते महब्भये।
जरामच्चुपरेतानं, दीपं पब्रूमि कप्प ते ॥२॥
अकिञ्चनं अनादानं, एतं दीपं अनापरं।
निब्बानं इति नं ब्रूमि, जरामच्चुपरिक्खयं ॥३॥
एतदञ्ञाय ये सता दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
न ते मारवसानुगा, न ते मारस्स पद्धगूति ॥४॥

कप्पमाणवपुच्छा निट्ठिता।

---

१ निरासत्ती—म० सी। २ यथायिदं—म।

बुद्ध :—

हेमक ! यहाँ दृष्ट, श्रुत, ज्ञात, विज्ञात प्रिय रूपों के प्रति दृढ आसक्ति का जो दूर करना है, वह अच्युत निर्वाण पद है ॥ ३ ॥

जो स्मृतिमान् यह जानकर इसी जन्म में निवृत हैं, सदा उपशान्त वे संसार में तृष्णा के पार गये हैं ॥ ४ ॥

हेमकमाणव-प्रश्न समाप्त ।

६४—तोदेय्यमाणव-प्रश्न

तोदेय्य :

जिसमें कामनाएँ नहीं हैं, जिसमें तृष्णा नहीं है और जो शंका के परे है, उसकी मुक्ति किस प्रकार की है ? ॥ १ ॥

बुद्ध:—

जिसमें कामनाएँ नहीं हैं, जिसमें तृष्णा नहीं है और जो संसारके परे है, उसके लिए दूसरी मुक्ति नहीं है ॥ २ ॥

तोदेय्य :—

वह तृष्णा रहित है या तृष्णा युक्त है ? वह प्रज्ञावान् है या प्रज्ञा की प्राप्ति में है ? उत्तम सर्वदर्शी आप बतावें जिससे कि मैं मुनि को जान सकूँ ॥ ३ ॥

बुद्ध :—

वह तृष्णा रहित है न कि तृष्णा युक्त है, वह प्रज्ञावान् है न कि प्रज्ञा की प्राप्ति में है। तोदेय्य ! अकिञ्चन, कामभव में अनासक्त मुनि को इस प्रकार भी जानो ॥ ४ ॥

तोदेय्यमाणव-प्रश्न समाप्त ।

६५—कप्पमाणव-प्रश्न

कप्प :—

हे महान् ! अतीव भयावह प्रवाह के बीच रहनेवाले, जरा तथा मृत्यु के वशीभूत (प्राणियों के लिए सुरक्षित) द्वीप बतावें, आप ऐसा द्वीप बतावें जहाँ यह (दुःख) फिर न आ सके ॥ १ ॥

बुद्ध:—

कप्प ! अतीव भयावह प्रवाह के बीच रहनेवाले, जरा तथा मृत्यु के वशीभूत (प्राणियों के लिए सुरक्षित) द्वीप तुम्हें बताता हूँ ॥ २ ॥

द्वीप अकिञ्चनत्व तथा अनासक्ति है, दूसरा नहीं। जरा और मृत्यु के अन्त को निर्वाण बताता हूँ ॥ ३ ॥

यह जानकर जो स्मृतिमान् इसी जन्म में निवृत हुए हैं, वे मार के वशीभूत नहीं होते, मार के अनुयायी नहीं होते ॥४॥

कप्पमाणव-प्रश्न समाप्त ।

६६—जतुकण्णिमाणवपुच्छा

सुत्वान'हं वीरमकामकामिं (इच्चायस्मा जतुकण्णी),
ओघातिगं पुट्ठमकाममागमं ।
सन्तिपदं ब्रूहि सहाजनेत्त, यथातच्छं भगवा ब्रूहि मे तं ॥१॥
भगवा हि कामे अभिभुय्य इरियति, आदिच्चो'व पठविं तेजि तेजसा ।
परित्तपञ्ञस्स मे भूरिपञ्ञ, आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं ।
जातिजराय इध विप्पहानं ॥२॥
कामेसु विनय गेधं (जतुकण्णीति भगवा), नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो ।
उग्गहीतं[1] निरत्तं वा, मा ते विज्जित्थ किञ्चनं ॥३॥
यं पुब्बे तं विसोसेहि, पच्छा ते मा'हु किञ्चनं ।
मज्झे चे नो गहेस्ससि, उपसन्तो चरिस्ससि ॥४॥
सब्बसो नामरूपस्मिं, वीतगेधस्स ब्राह्मण ।
आसवा'स्स न विज्जन्ति, येहि मच्चुवसं वजे'ति ॥५॥

जतुकण्णिमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

६७—भद्रावुधमाणवपुच्छा

ओकंजहं तण्हच्छिदं अनेजं (इच्चायस्मा भद्रावुधो),
नन्दिंजहं ओघतिण्णं विमुत्तं ।
कप्पंजहं अभियाचे सुमेधं,
सुत्वान नागस्स अपनमिस्सन्ति इतो ॥१॥
नाना जना जनपदेहि संगता, तव वीर वाक्यं अभिकङ्खमाना ।
तेसं तुवं साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥२॥
आदानतण्हं विनयेथ सब्बं (भद्रावुधाति भगवा)
उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।
यं यं हि लोकस्मिं उपादियन्ति
तेनेव मारो अन्वेति जन्तुं ॥३॥
तस्मा पजानं न उपादियेथ, भिक्खु सतो किञ्चनं सब्बलोके ।
आदानसत्ते इति पेक्खमानो, पजं इमं मच्चुधेय्ये विसत्तं'ति ॥४॥

भद्रावुधमाणवपुच्छा निट्ठिता

---

1. उग्गहीतं—ती ।

६६—जतुकण्णिमाणव-प्रश्न

जतुकण्णिः—

निष्काम, प्रवाह के पार गये वीर के विषय में सुनकर मैं प्रश्न करने आया हूँ। जन्मसिद्ध (ज्ञान) चक्षु ! शान्ति पद को बतावें, यथार्थ रूप से भगवान् मुझे यह बतावें ॥१॥

भगवान् कामों पर विजयी हो उसी प्रकार (प्रकाशमान् हो) विचरते हैं जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से पृथ्वी को (प्रकाशित करता है)। महाप्रज्ञ ! अल्पप्रज्ञ मुझे धर्म बतावें जिससे कि मैं यहाँ जन्म और जरा को दूर करना जान लूँ ॥२॥

बुद्धः—

निष्कामता को क्षेम देखते हुए कामों की तृष्णा को दूर करो। तुम्हें अपनाने या त्यागने के लिए कुछ न रहे ॥३॥

जो सामने है उसका अन्त करो, बाद को कुछ न अपनाओ। यदि बीच में भी ग्रहण न करोगे तो उपशान्त हो विचरोगे ॥४॥

ब्राह्मण ! जो सर्वप्रकार से नामरूप के प्रति तृष्णा रहित है, उसे वासनाएँ नहीं रहतीं जिनसे कि (वह) मृत्यु के वश में आवे ॥५॥

जतुकण्णिमाणव-प्रश्न समाप्त।

६७—भद्रावुधमाणव-प्रश्न

भद्रावुधः—

घर त्यक्त, तृष्णा रहित, चञ्चलता रहित, आसक्ति-त्यक्त, प्रवाह के पार गये, विमुक्त, संस्कार-त्यक्त ज्ञानी से मैं याचना करता हूँ। श्रेष्ठ का (उपदेश) सुनकर (लोग) यहाँ से हटेंगे ॥१॥

हे वीर ! आप के वचन की आकांक्षा करते हुए जनपदों से अनेक प्रकार के लोग एकत्रित हुए हैं। आप उनको अच्छी तरह उपदेश करें, क्योंकि यह धर्म आप को विदित है ॥२॥

बुद्ध'—

ऊपर, नीचे, तिर्यक और बीच में सर्वत्र आसक्ति रूपी तृष्णा को शान्त करो। (लोग) संसार में जो-जो अपनाते हैं, उसी के कारण मार मनुष्य के पीछे पड़ जाता है ॥३॥

इसलिये तृष्णा में आसक्त, मृत्यु राज्य में लीन इस प्रजा को देखते हुए स्मृतिमान् भिक्षु सारे संसार मे किसी के प्रति आसक्ति न करे ॥४॥

भद्रावुधमाणव-प्रश्न समाप्त।

६८—उदयमाणवपुच्छा

झायिं विरजमासीनं (इच्चायस्मा उदयो), कतकिच्चं अनासवं ।
पारगुं सब्बधम्मानं, अत्थि पञ्हेन आगमं ।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूहि, अविज्जाय पभेदनं ॥१॥
पहानं कामच्छन्दानं (उदयाति भगवा) दोमनस्सान चूभयं ।
थीनस्स च पनूदनं, कुक्कुच्चानं निवारणं ॥२॥
उपेक्खा सतिसंसुद्धं, धम्मतक्कपुरेजवं ।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूमि, अविज्जाय पभेदनं ॥३॥
किं सु संयोजनो लोको, किं सु तस्स विचारणं ।
किस्स'स्स विप्पहानेन निब्बानं इति वुच्चति ॥४॥
नन्दी संयोजनो लोको, वितक्कस्स विचारणा ।
तण्हाय विप्पहानेन, निब्बानं इति वुच्चति ॥५॥
कथं सतस्स चरतो विञ्ञाणं उपरुज्झति ।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, तं सुणोम वचो तव ॥६॥
अज्झत्तं च बहिद्धा च, वेदनं नाभिनन्दतो ।
एवं सतस्स चरतो विञ्ञाणं उपरुज्झतीति ॥७॥
उदयमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

६९—पोसालमाणवपुच्छा

यो अतीतं आदिसति (इच्चायस्मा पोसालो), अनेजो छिन्नसंसयो ।
पारगुं सब्बधम्मानं, अत्थि पञ्हेन आगमं ॥१॥
विभूतरूपसञ्ञिस्स सब्बकायप्पहायिनो ।
अज्झत्तं च बहिद्धा च नत्थि किञ्चीति पस्सतो ।
ञाणं सक्कानुपुच्छामि, कथं नेय्यो तथाविधो ॥२॥
विञ्ञाणट्ठितियो सब्बा (पोसालाति भगवा) अभिजानं तथागतो ।
तिट्ठन्तमेनं जानाति, विमुत्तं तप्परायणं ॥३॥
आकिञ्चञ्ञासंभवं ञत्वा, नन्दी संयोजनं इति ।
एवमेतमभिञ्ञाय ततो तत्थ विपस्सति ।
एतं[1] ञाणं तथं तस्स ब्राह्मणस्स वुसीमतो'ति ॥४॥
पोसालमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

---

१ एवं—ब ।

६८—उदयमाणव-प्रश्न

उदयः—

ध्यानावस्थित, रज रहित, कृतकृत्य, वासना रहित, सभी धर्मों में पारङ्गत (आपके पास) प्रश्न करने आया हूँ। प्रज्ञा द्वारा मुक्ति की प्राप्ति और अविद्या का भेदन बतावें ॥१॥

बुद्धः—

काम की इच्छा तथा विमनता दोनो को त्यागना, आलस्य को दूर करना तथा अस्थिरता का निवारण (कर) उपेक्षा, शुद्ध स्मृति और धार्मिक विचार से उत्पन्न ज्ञान (द्वारा) विमोक्ष की प्राप्ति और अविद्या का भेदन बताता हूँ ॥२–३॥

उदयः—

ससार-बन्धन क्या है ? उसकी गति किसमें है ? किसका त्याग निर्वाण कहलाता है ? ॥४॥

बुद्धः—

आसक्ति ससार का बन्धन है। वितर्क में उसकी गति है। तृष्णा का त्याग निर्वाण कहलाता है ॥५॥

उदयः—

स्मृतिमान् हो विचरनेवाले के विज्ञान का निरोध किस प्रकार होता है, (यह) हम भगवान् से पूछने आये हैं, हम आपका वचन सुनना चाहते हैं ॥६॥

बुद्धः—

अन्दर और बाहर की वेदना का अभिनन्दन करते हुए जो स्मृतिमान् हो विचरता है, उसके विज्ञान का निरोध होता है ॥७॥

उदयमाणव-प्रश्न समाप्त।

६९—पोसालमाणव-प्रश्न

पोसालः—

अतीत-दर्शी, तृष्णा रहित, सशय नष्ट, सब धर्मों में पारगत आपके पास (हम) प्रश्न पूछने आये हैं ॥१॥

हे महान् ! रूप-सज्ञाओं से रहित, सभी अरूप-सज्ञाओं से मुक्त, अन्दर और बाहर 'अकिञ्चनत्व' को देखनेवाले के ज्ञान के विषय में पूछता हूँ। वैसा व्यक्ति किस प्रकार आगे बढ सकता है ? ॥२॥

बुद्धः—

विज्ञान की सभी स्थितियों के ज्ञाता तथागत, स्थिर, विमुक्त, (मुक्ति) परायण (व्यक्ति) को जानते हैं ॥३॥

'अकिञ्चनत्व' को कर्मक्षय जानकर, आसक्ति को बन्धन समझकर वह निर्वाणदर्शी होता है। पूर्णता को प्राप्त उस ब्राह्मण का यह ज्ञान यथार्थ है ॥४॥

पोसालमाणव-प्रश्न समाप्त।

७०—मोघराजमाणवपुच्छा

द्वाहं सक्कं अपुच्छिस्सं (इच्चायस्मा मोघराजा), न मे ब्याकासि चक्खुमा ।
याव ततियं च देवीसि, ब्याकरोतीति मे सुतं ॥१॥
अयं लोको परो लोको, ब्रह्मलोको सदेवको ।
दिट्ठिं ते नाभिजानामि, गोतमस्स यसस्सिनो ॥२॥
एवं अभिक्कन्तदस्साविं, अत्थि पञ्हेन आगमं ।
कथं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥३॥
सुञ्ञतो लोकं अवेक्खस्सु, मोघराज[1] सदा सतो ।
अत्तानुदिट्ठिं ऊहच्च, एवं मच्चुतरो सिया ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सतीति ॥४॥
मोघराजमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

७१—पिंगियमाणवपुच्छा

जिण्णो'हमस्मि अबलो वीतवण्णो (इच्चायस्मा पिंगियो) ।
नेत्ता न सुद्धा सवनं न फासु ।
मा'हं नस्सं मोमुहो अन्तराय ।
आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं ।
जातिजराय इध विप्पहानं ॥१॥
दिस्वान रूपेसु विहञ्ञमाने (पिंगियाति भगवा),
रुप्पन्ति रूपेसु जना पमत्ता ।
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो
जहस्सु रूपं अपुनब्भवाय ॥२॥
दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो, उद्धं अधो दस दिसता इमायो ।
न तुय्हं अदिट्ठं असुतं मुतं वा
अथो अविञ्ञातं किञ्चनमत्थि[2] लोके ।
आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं
जातिजराय इध विप्पहानं ॥३॥
तण्हा'धिपन्ने मनुजे पेक्खमाना (पिंगियाति भगवा)
सन्तापजाते जरसा परेते ।
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो
जहस्सु तण्हं अपुनब्भवायाति ॥४॥
पिंगियमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

---

१ मोघराजा—सी । २. किञ्चि नत्थि—सी० किञ्चि मत्थि—स्या ।

७०—मोघराजमाणव-प्रश्न

मोघराजः—

हे महान्! मैंने दो बार आपसे प्रश्न किया। चक्षुमान्! आपने मुझे उत्तर नहीं दिया। मैंने सुना है कि तीसरी बार देवर्षि आप उत्तर देते हैं ॥१॥

यह लोक, परलोक तथा देव सहित ब्रह्मलोक है। आप यशस्वी गौतम की दृष्टि को मैं नहीं जानता ॥२॥

इस प्रकार विशुद्धदर्शी आपके पास प्रश्न पूछने आया हूँ। संसार को किस रूप में देखनेवाले को मृत्युराज नहीं देख पाता? ॥३॥

बुद्धः—

मोघराज! सदा स्मृतिमान् हो संसार को शून्यता के रूप में देखो। इस प्रकार आत्मदृष्टि का नाशकर मृत्यु के परे होगे। इस रूप में संसार को देखनेवाले को मृत्युराज नहीं देख पाता ॥४॥

मोघराजमाणव-प्रश्न समाप्त।

७१—पिंगियमाणव-प्रश्न

पिंगियः—

मैं जीर्ण हूँ, दुर्बल हूँ और विवर्ण हूँ। (मेरे) नेत्र साफ नहीं, कान ठीक नहीं। मुझे धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ जन्म-जरा का अन्त करूँ और बीच में मोह सहित न मरूँ ॥१॥

बुद्ध—

रूपों के कारण परेशान, रूपों के कारण नाश को प्राप्त होनेवाली प्रमत्त जनता को देखकर **पिंगिय** अप्रमत्त बनो और रूप का अन्त करो जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥२॥

पिंगियः—

चार दिशाएँ, चार अनुदिशाएँ, ऊपर, नीचे—ये दस दिशाएँ हैं, इस सारे संसार में कोई ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसे आपने न देखा हो, न सुना हो, जिसके विषय में विचार न किया हो और जिसे न समझा हो। (मुझे) धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ जन्म-जरा का अन्त करूँ ॥३॥

बुद्धः—

तृष्णा के वशीभूत, सन्तप्त, जराभिभूत मनुष्यों को देखकर **पिंगिय** तुम अप्रमत्त बनो और तृष्णा का अन्त करो जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥४॥

पिंगियमाणव-प्रश्न समाप्त।

७०—मोघराजमाणवपुच्छा

द्वाहं सक्कं अपुच्छिस्सं (इच्चायस्मा मोघराजा), न मे ब्याकासि चक्खुमा ।
याव ततियं च देवीसि, ब्याकरोतीति मे सुतं ॥१॥
अयं लोको परो लोको, ब्रह्मलोको सदेवको ।
दिट्ठिं ते नाभिजानामि, गोतमस्स यसस्सिनो ॥२॥
एवं अभिक्कन्तदस्साविं, अत्थि पञ्हेन आगमं ।
कथं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सति ॥३॥
सुञ्ञतो लोकं अवेक्खस्सु, मोघराज[1] सदा सतो ।
अत्तानुदिट्ठिं ऊहच्च एवं मच्चुतरो सिया ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सतीति ॥४॥

मोघराजमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

७१—पिंगियमाणवपुच्छा

जिण्णो'हमस्मि अबलो वीतवण्णो (इच्चायस्मा पिंगियो) ।
नेत्ता न सुद्धा सवनं न फासु ।
मा'हं नस्सं मोमुहो अन्तराय ।
आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं ।
जातिजराय इध विप्पहानं ॥१॥
दिस्वान रूपेसु विहञ्ञमाने (पिंगियाति भगवा),
रुप्पन्ति रूपेसु जना पमत्ता ।
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो
जहस्सु रूपं अपुनब्भवाय ॥२॥
दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो, उद्धं अधो दस दिसता इमायो ।
न तुय्हं अदिट्ठं असुतं मुतं वा
अथो अविञ्ञातं किञ्चनमत्थि[2] लोके ।
आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं
जातिजराय इध विप्पहानं ॥३॥
तण्हा'धिपन्ने मनुजे पेक्खमानो (पिंगियाति भगवा),
सन्तापजातं जरसा परेते ।
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो
जहस्सु तण्हं अपुनब्भवायाति ॥४॥

पिंगियमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

---

१ मोघराजा—सी । २ किञ्चि नत्थि—री । किञ्चि नत्थि—स्या ।

७०—मोघराजमाणव-प्रश्न

मोघराजः—

हे महान्! मैंने दो बार आपसे प्रश्न किया। चक्षुमान! आपने मुझे उत्तर नहीं दिया। मैंने सुना है कि तीसरी बार देवर्षि आप उत्तर देते हैं ॥१॥

यह लोक, परलोक तथा देव सहित ब्रह्मलोक है। आप यशस्वी गौतम की दृष्टि को मैं नहीं जानता ॥२॥

इस प्रकार विशुद्धदर्शी आपके पास प्रश्न पूछने आया हूँ। संसार को किस रूप में देखनेवाले को मृत्युराज नहीं देख पाता? ॥३॥

बुद्धः—

मोघराज! सदा स्मृतिमान् हो संसार को शून्यता के रूप में देखो। इस प्रकार आत्मदृष्टि का नाशकर मृत्यु के परे होंगे। इस रूप में संसार को देखनेवाले को मृत्युराज नहीं देख पाता ॥४॥

मोघराजमाणव-प्रश्न समाप्त।

७१—पिंगियमाणव-प्रश्न

पिंगियः—

मैं जीर्ण हूँ, दुर्बल हूँ और विवर्ण हूँ। (मेरे) नेत्र साफ नहीं, कान ठीक नहीं। मुझे धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ जन्म जरा का अन्त करूँ और बीच में मोह सहित न मरूँ ॥१॥

बुद्ध—

रूपों के कारण परेशान, रूपों के कारण नाश को प्राप्त होनेवाली प्रमत्त जनता को देखकर **पिंगिय** अप्रमत्त बनो और रूप का अन्त करो जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥२॥

पिंगिय—

चार दिशाएँ, चार अनुदिशाएँ, ऊपर, नीचे—ये दश दिशाएँ हैं, इस सारे संसार में कोई ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसे आपने न देखा हो, न सुना हो, जिसके विषय में विचार न किया हो और जिसे न समझा हो। (मुझे) धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ जन्म-जरा का अन्त करूँ ॥३॥

बुद्धः—

तृष्णा के वशीभूत, सन्तप्त, जराभिभूत मनुष्यों को देखकर **पिंगिय** तुम अप्रमत्त बनो और तृष्णा का अन्त करो जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥४॥

पिंगियमाणव-प्रश्न समाप्त।

७२—पारायणसुत्तं

इदमवोच भगवा मगधेसु विहरन्तो पासाणके चेतिये, परिचारकसोळसानं[1] ब्राह्मणानं अज्झिट्ठो पुट्ठो पुट्ठो पञ्हे[2] ब्याकासि[3]। एकमेकस्स चे'पि पञ्हस्स अत्थं अञ्ञाय धम्मं अञ्ञाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जेय्य, गच्छेय्येव जरामरणस्स पारं। पारंगमनीया इमे धम्मा'ति; तस्मा इमस्स धम्मपरियायस्स पारायनं[4] त्वेव[5] अधिवचनं।

अजितो तिस्समेत्तेय्यो, पुण्णको अथ मेत्तगू।
धोतको उपसीवो च, नन्दो च अथ हेमको ॥१॥

तोदेय्यकप्पा दुभया जतुकण्णी च पण्डितो।
भद्रावुधा उदयो च, पोसालो चापि ब्राह्मणो।
मोघराजा च मेधावी, पिंगियो च महाइसि ॥२॥

एते बुद्धं उपागच्छुं, संपन्नचरणं इसिं।
पुच्छन्ता निपुणे पञ्हे, बुद्धसेट्ठं उपागमुं ॥३॥

तेसं बुद्धो ब्याकासि, पञ्हे पुट्ठो यथातथं।
पञ्हानं वेय्याकरणेन[6], तोसेसि ब्राह्मणे मुनि ॥४॥

ते तोसिता चक्खुमता, बुद्धेनादिच्चबन्धुना।
ब्रह्मचरियमचरिंसु वरपञ्ञस्स सन्तिके ॥५॥

एकमेकस्स पञ्हस्स, यथा बुद्धेन देसितं।
तथा यो पटिपज्जेय्य, गच्छे पारं अपारतो ॥६॥

अपारा पारं गच्छेय्य, भावेन्तो मग्गमुत्तमं।
मग्गो सो पारं गमनाय, तस्मा पारायनं इति ॥७॥

पारायनमनुगायिस्सं (इच्चायस्मा पिंगियो)
यथा अद्दक्खि तथा अक्खासि, विमलो भूरिमेधसो।
निक्कामो निब्बनो[7] नाथो, किस्स हेतु मुसा भणे ॥८॥

पहीनमलमोहस्स, मानमक्खप्पहायिनो।
हन्दाहं कित्तयिस्सामि, गिरं वण्णूपसंहितं ॥९॥

तमोनुदो बुद्धो समन्तचक्खु, लोकन्तगू सब्बभवातिवत्तो।
अनासवो सब्बदुक्खप्पहीनो, सच्चव्हयो ब्रह्मे उपासितो मे ॥१०॥

दिजो[8] यथा कुब्बनकं पहाय, बहुप्फलं काननं आवसेय्य।
एवंपहं अप्पदस्से पहाय महोदधिं हंसोरिव'ज्झपत्तो[9] ॥११॥

य 'मे पुब्बे वियाकंसु हुरं गोतमसासना 'इच्चासि इति भविस्सति'।
सब्बं तं इतिहीतिहं, सब्बं तं तक्कवड्ढनं ॥१२॥

---

१ परिचारकसोळसन्नं—स्या०। २. पञ्हे—म। ३ ब्याकासि—म। ४-५. पारायनन्तेव—म। ६. वेय्याकरणेन—म। ७. निब्बुतो—म। ८. दिजो—सी। ९. हंसोरिव अज्झपत्तो—म।

७२—पारायण-सुत्त

यह उपदेश भगवान् ने मगध मे पाषाणक चैत्य में दिया था। (बावारि के) अनुयायी सोलह ब्राह्मणो के अनुरोध से (भगवान्) उनके प्रश्नों के उत्तर दिये। जो एक एक प्रश्न का अर्थ जानकर, धार्मिक तात्पर्य जानकर धर्मानुधर्म का आचरण करेगा, वह जरामरण के पार होगा। ये धर्म पार ले जानेवाले है। इसलिए इस धर्म का नाम पारायण ही है।

अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक और मेत्तगू, धोतक और उपसीव, नन्द और हेमक, तोदेय्य, कप्प दोनों और पण्डित जातुकण्णी, भद्रावुध, उदय और पोसाल ब्राह्मण, बुद्धिमान् **मोघराजा** और महर्षि **पिंगिय**—ये आचारवान् ऋषि बुद्ध के पास पहुँचे, निपुण प्रश्न पूछते हुए श्रेष्ठ बुद्ध के पास गये ॥१-३॥

बुद्ध ने उन के पूछे प्रश्नों के यथार्थ रूप से उत्तर दिये। प्रश्नों के उत्तर देकर मुनि ने ब्राह्मणों को प्रसन्न किया ॥४॥

चक्षुमान्, आदित्यबन्धु बुद्ध से प्रसन्न उन्होंने उत्तम प्राज्ञ के पास ब्रह्मचर्य का पालन किया ॥५॥

एक एक प्रश्न के उत्तर के रूप में भगवान् ने जो उपदेश दिया है, उसका अनुयायी इस पार से उस पार पहुँचेगा ॥६॥

उत्तम मार्ग का अभ्यास करनेवाला इस पार से उस पार पहुँचेगा। यह मार्ग पार जाने के लिए है। इसलिए इसका नाम परायण है ॥७॥

पिंगियः—

मैं पारायण का वर्णन करूँगा (जिसे) निर्मल महाप्रज्ञ ने जैसा देखा वैसा बताया। नाथ निष्काम हैं, वितृष्ण हैं। वे असत्य क्यों बोले ॥८॥

मोहमल रहित, मान और शठता रहित भगवान् के मधुरस्वर का वर्णन मैं अवश्य करूँगा ॥९॥

अन्धकार को दूर करनेवाले बुद्ध सर्वदर्शी हैं, सारे ससार के ज्ञाता हैं, सारे भव के पार हो गये हैं, वासना रहित हैं, सभी दु:ख रहित हैं। ब्राह्मण! वे यथार्थ में बुद्ध कहलाते हैं और मैं उनके पास गया था ॥१०॥

जिस प्रकार पक्षी छोटे बन को छोडकर फल बहुल उद्यान में जा बसता है, उसी प्रकार मैं भी अल्प दर्शियों को छोडकर महा जलाशय में जानेवाले हंस की तरह बुद्ध के पास पहुँचा ॥११॥

पहले गौतम के अनुशासन के बाहर (धर्म के विषय में) जो लोग सुनाते थे कि "ऐसा था, ऐसा होगा" वह सब परम्पराकथा थी और शका बढानेवाली थी ॥१२॥

एको तमनुदासीनो, जातिमा सो पभंकरो ।
गोतमो भूरिपञ्ञाणो, गोतमो भूरिमेधसो ॥१३॥
यो मे धम्ममदेसेसि, सन्दिट्ठिकमकालिकं ।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥१४॥
किं नु तम्हा विप्पवससि, मुहुत्तमपि पिङ्गिय ।
गोतमा भूरिपञ्ञाणा, गोतमा भूरिमेधसा ॥१५॥
यो ते धम्ममदेसेसि सन्दिट्ठिकमकालिकं ।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥१६॥
नाहं तम्हा विप्पवसामि, मुहुत्तमपि ब्राह्मण ।
गोतमा भूरिपञ्ञाणा, गोतमा भूरिमेधसा ॥१७॥
यो मे धम्ममदेसेसि, सन्दिट्ठिकमकालिकं ।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥१८॥
पस्सामि नं मनसा चक्खुना'व, रत्तिंदिवं ब्राह्मण अप्पमत्तो ।
नमस्समानो विवसेमि[1] रत्तिं, तेनेव मञ्ञामि अविप्पवासं ॥१९॥
सद्धा च पीती च मनो सती च, नापेन्ति[2] मे गोतमसासनम्हा ।
यं यं दिसं वजति भूरिपञ्ञो, स तेन तेनेव नतो हमस्मि ॥२०॥
जिण्णस्स मे दुब्बलथामकस्स, तेनेव कायो न पलेति तत्थ ।
संकप्पयत्ताय[3] वजामि निच्चं, मनो हि मे ब्राह्मण तेन युत्तो ॥२१॥
पंके सयानो परिफन्दमानो दीपा दीपं उपप्लविं[4] ।
अथ'द्दसासि सम्बुद्धं, ओघतिण्णमनासवं ॥२२॥
यथा अहू वक्कलि मुत्तसद्धो
भद्रावुधो आळविगोतमो च ।
एवमेव त्वं'पि पमुञ्चस्सु सद्धं
गमिस्ससि त्वं पिङ्गिय मच्चुधेय्यपारं ॥२३॥
एस भिय्यो पसीदामि सुत्वान मुनिनो वचो ।
विवत्तच्छद्दो[5] संबुद्धो, अखिलो पटिभानवा ॥२४॥
अधिदेवे अभिञ्ञाय सब्बं वेदि परोवरं[6] ।
पञ्हानन्तकरो सत्था कंखीनं पटिजानतं ॥२५॥
असंहीरं असंकुप्पं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ।
अद्धा गमिस्सामि न मे' त्थ कंखा,
एवं मं धारेहि अधिमुत्तचित्तं ॥२६॥

पारायनवग्गो निट्ठितो । निट्ठितो सुत्तनिपातो
अट्ठमासवारपरियायाय पाठिता ।

---

१ वसेमि—सी । २. नामेन्ति—सी । ३ संकप्पयत्ताय—म । ४ समाहित—स्सा । ५. मच्चुधेय्यस्स पारं—म । ६ विवत्तछद्दो—म । ७ वरोवर—म ।

अन्धकार को दूर करनेवाले एक ही वे श्रेष्ठ हैं, प्रकाश देनेवाले हैं। गौतम महाप्रज्ञ हैं, गौतम महाविज्ञ हैं ॥१३॥

यहाँ तत्क्षण फल देनेवाले, तृष्णा को नाश करनेवाले और दुःख को दूर करने वाले धर्म का जिन्होंने (मुझे) उपदेश दिया है उनकी उपमा नहीं हो सकती ॥१४॥

बावरि :—

यहाँ तत्क्षण फल देनेवाले, तृष्णा को नाश करनेवाले और दुःख को दूर करनेवाले धर्म का जिन्होने तुम्हें उपदेश दिया है और जिनकी उपमा नहीं हो सकती, क्या **पिंगिय** ! मुहूर्त भर भी तुम उन महाप्रज्ञ गौतम से, महाविज्ञ गौतम से अलग रह सकते हो ? ॥१५-१६॥

पिंगिय :—

यहाँ तत्क्षण फल देनेवाले, तृष्णा को नाश करनेवाले और दुःख को दूर करनेवाले धर्म का जिन्होंने मुझे उपदेश दिया है और जिन की उपमा नहीं हो सकती, ब्राह्मण ! मैं, मुहूर्त भर भी, उन महाप्रज्ञ गौतम से, महाविज्ञ गौतम से अलग नहीं रह सकता ॥१७-१८॥

ब्राह्मण ? रात दिन अप्रमत्त हो आँख की तरह मन से मैं उनको देखता हूँ। रात में मैं उनको प्रणाम करता रहता हूँ। इसलिए मानता हूँ कि मैं उनसे अलग नही रहता ॥१९॥

मेरी श्रद्धा, प्रीति, मन और स्मृति गौतम की शिक्षा से नहीं हटतीं। जहाँ जहाँ महाप्रज्ञ जाते हैं वहाँ वहाँ मैं नतमस्तक हूँ ॥२०॥

जीर्ण, बलहीन मेरा शरीर वहाँ नहीं जा सकता। मैं नित्य मन से जाता हूँ। ब्राह्मण ! मेरा मन उनके साथ है ॥२१॥

मैं (वासना रूपी) कीचड में पडकर तडपता हुआ एक द्वीप से दूसरे द्वीप में जाता था। अन्त में मैंने भवसागर उत्तीर्ण, वासना रहित सम्बुद्धका दर्शन पाया॥२२॥

बुद्ध :—

जिस प्रकार **वक्कलि**, **भद्रावुध** और **आलविगोतम** श्रद्धा द्वारा मुक्त हुए उसी प्रकार तुम भी श्रद्धाको पेश करो। **पिंगिय** ! तुम मृत्युराजके परे हो जाओगे॥२३॥

पिंगिय :—

मुनि के वचन को सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। (आप) वितृष्ण हैं, सम्बुद्ध हैं, वासना रहित हैं और ज्ञानी हैं ॥२४॥

आप अधिदेवत्व को जानकर आर पार का सब कुछ जान गये। शास्ता संशयी, समझदार लोगों के प्रश्नों का अन्त करनेवाले हैं ॥२५॥

(निर्वाण) अजेय है, अटल है जिसकी कोई उपमा नहीं हो सकती। मैं अवश्य उसे प्राप्त करूँगा, उसके विषय में मुझे कोई शंका नहीं है। पूर्ण रूप से मुक्तचित्त मुझे इस प्रकार धारण करें ॥२६॥

समाप्त ॥

पाँच वर्गों, आठ भाणवारों तथा बहत्तर सुत्तों में
संगहीत खुद्दकनिकायान्तर्गत

सुत्तनिपात

समाप्त।

परिशिष्ट

१—उपमा-सूची

२—नामानुक्रमणी

३—शब्दानुक्रमणी

स
साधा
समाधि
समापत्ति (
समुद्र
सम्बोधि (परम
सम्बोधि पद (परम
सम्यक् दृष्टि
सम्यक् सम्बुद्ध
संघ
संसार (आवागमन)
संस्कार
सागर
सात रत्न
सोपधिशेष निर्वाण
स्थविर
स्मृति (ध्यान)
स्नेह
सुर (देव)
सुगत